CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2.5

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय

3798

बीना
(मध्य-प्रदेश)

संवत १९६३ स्थापित सन १९०६

हीरक जयंती

स्मारिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या.................. प्राप्ति-संख्या......................

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम श्री भा० वं० दि० जैन सं० विद्यापीठ

लेखक ....

पं० ...कुमार और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ श्री ॥

श्री नाभिनन्दन दिग. जैन संस्कृत विद्यालय

विनय

विद्या विवेक

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या

• बीना (मध्य-प्रदेश) •

हीरक जयन्ती स्मारिका

-शुभाशीर्वाद-

- परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज
- पूज्य क्षुल्लक सन्मतिसागर जी 'ज्ञानानन्द'
- पूज्य भट्टारक चारुकीर्ति जी महाराज, मूड़बिद्री

-परामर्शदाता-

प्रो० श्रीनन्दनलाल जी प्राध्यापक

शा० महाविद्यालय, बीना

सम्पादक

अभयकुमार जैन

व्याख्याता

एम. ए., बी. एड., साहित्यरत्न

साहित्य, जैनदर्शन, प्राकृताचार्य

१९८१

सहसम्पादक

पं. मुन्नालाल जैन शास्त्री

एम. ए. (संस्कृत), (राजनीति शास्त्र)

साहित्याच[illegible]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

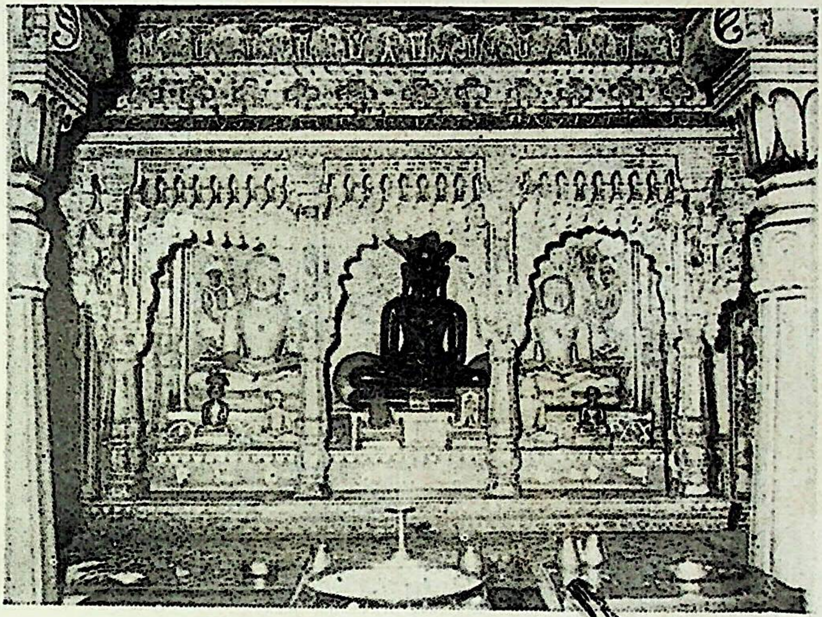

मंङ्गला चरणम्

णमो अरिहंताणं	अरिहन्तों को नमस्कार हो।
णमो सिद्धाणं	सिद्धों को नमस्कार हो।
णमो अइरियाणं	आचार्यो को नमस्कार हो।
णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को नमस्कार हो।
णमो लोए सव्व साहूणं	लोक के सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

एसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होई मंगलं ॥

—यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है, तथा सर्व मंगलों में प्रथम मंगल है।

भवबीजांकुर जलदाः रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो वा जिनो वा नमस्तस्मै ॥

—आचार्य हरिभद्र सूरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आद्य तीर्थंकर

१००८ भगवान श्री ऋषभदेवजी

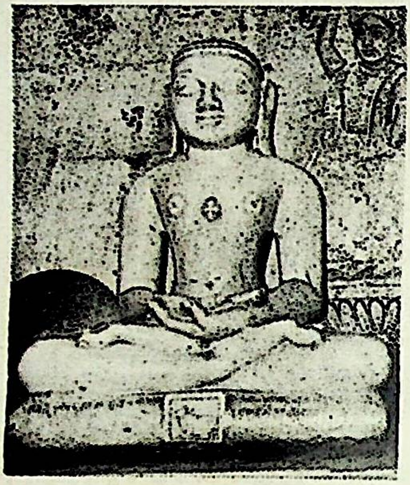

भुवनाम्भोजमार्तण्डं धर्मामृतपयोधरम् ।
योगिकल्पतरुं नौमि देवदेवं वृषभध्वजम् ॥
——आचार्य शुभचन्द्र

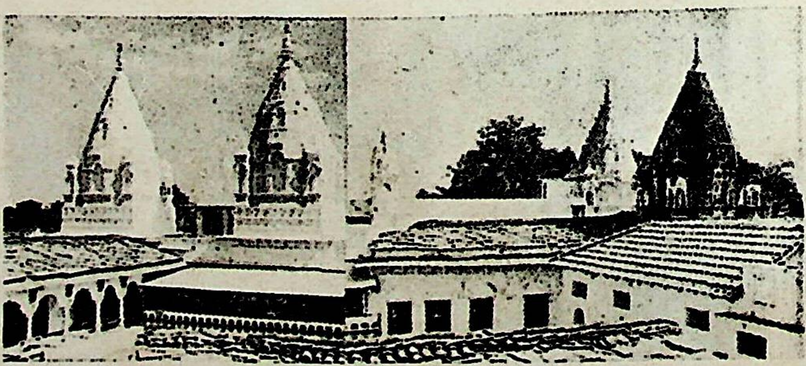

श्री दिगम्बर ज़ैन मन्दिर बीना - इटावा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सं० १९९७ में निर्मित संस्कृत विद्यालय का भवन

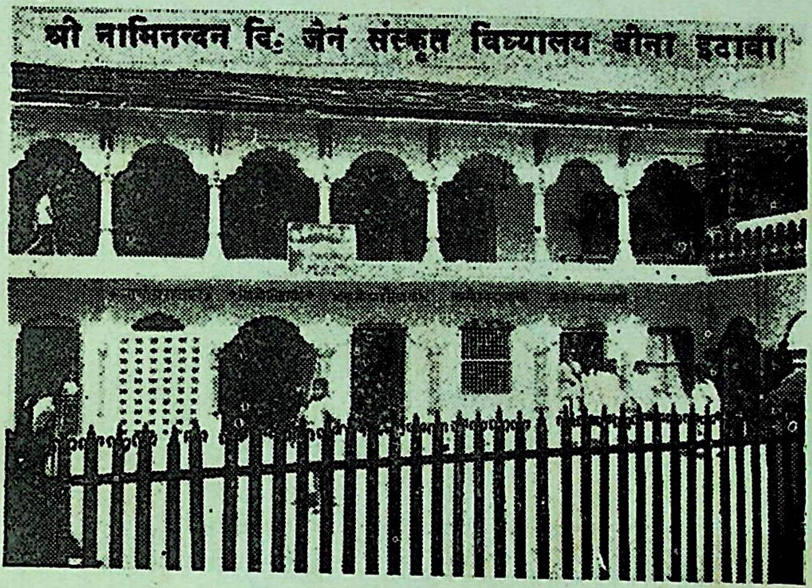

श्री फूलचन्द्र प्राचार्य महोदयादिः
सज्ज्ञानदायक सुपाठक यत्र भाति ।
विद्यालयोऽस्ति सच्छात्रसमन्वितो हि
श्री नाभिनन्दन-दिगम्बर-जैन-नामा ।।

--अभयकुमार, जैन व्याख्याता

जीवन की झंझाओं में चला जो अबाधित है
जिसकी सुरभि से पूर्ण परिकर सुवासित है ।
श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय की
हीरक जयन्ती पर यह 'स्मारिका' प्रकाशित है ।।

--सिं० नेमीचन्द जैन गेंद वाले शिवपुरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public.Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"इस विद्यालय के संस्थापक"

सिंघई नाथूरामजी 'साव'

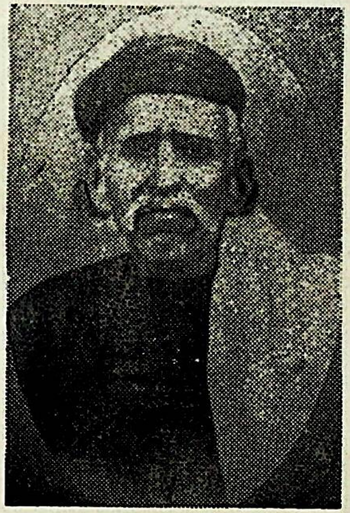

कीतिर्यस्य सुविस्तृता भुवितले, निष्ठा समाजोद्धरे,
भावा: धर्मविवर्धने खरतरा: संतापसंहारणे ।
ऐक्यं वाञ्छति सर्वदा जनकुले लोकोपयोगीं दयाम्,
नाथूराममहोदय: शिवकर: सज्ज्ञानसंबर्द्धक: ॥

उच्चाशयेन सरलेन महोदयेन
प्रख्यापितेन नगरं इति 'साब बब्बा' ।
संस्थापिता नरवरेण महामहिम्ना,
श्रीनाभिनन्दन - दिगम्बर - पाठशाला ॥

—अभयकुमार जैन, व्याख्याता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

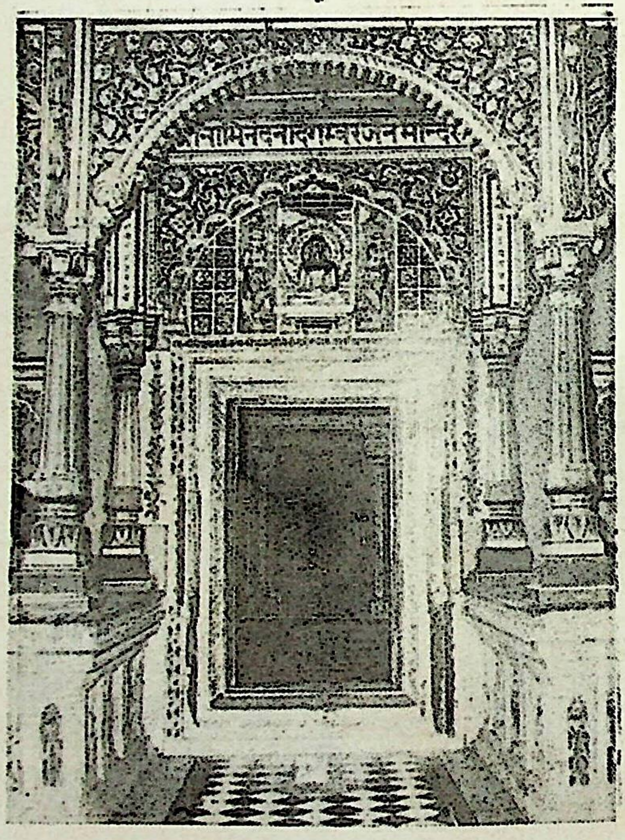

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन मंदिर बीना का भव्य प्रवेश द्वार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

आज जबकि विश्व भौतिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से दिन-प्रतिदिन समृद्धि की ओर बढ़ रहा है वहीं आध्यात्मिक नैतिक तथा मानवीय मूल्यों की दृष्टि से यह शनैः शनैः पतन की ओर जा रहा है। फलतः समाज में नाना विकृतियाँ पनप रहीं हैं और वातावरण दूषित तथा विपाक्त होता जा रहा है। भौतिक समृद्धि हेतु अर्थ की चाह ने अखिल विश्व में युद्ध कलह अशान्ति स्वार्थपरता, झूठ फरेब वैमनस्यता और छीना-झपटी का वातावरण निर्मित कर दिया है। इसका मात्र कारण धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का अभाव है। हमारे पूर्वजों द्वारा संस्थापित पोपित संस्कृत विद्यालय ज्ञान साधना एवं आदर्श जीवन-निर्माण हेतु ज्ञान साधना के पुनीत मन्दिर तथा सुसंस्कारों के बीजारोपण हेतु आदर्श केन्द्र रहे हैं जहाँ जैन वांगमय के शिक्षण के साथ-साथ नैतिक व धार्मिक शिक्षण भी होता रहा और आदर्श जीवन पद्धति का अभ्यास भी कराया जाता रहा। बचपन के वे अमिट संस्कार जीवन के अभिन्न अंग बनें। ऐसे चारित्रनिष्ठ विज्ञ स्नातकों ने बड़े लोकोपकारी कार्य किये हैं और कर रहे हैं। आज ये ही विज्ञ स्नातक धर्म समाज एवं संस्कृति के रक्षक और संस्कृति तथा संस्कृति प्रणेताओं के सजग प्रहरी भी बने हुए हैं। अतः इन संस्कृत विद्यालयों का धर्म; समाज एवं संस्कृति के संरक्षण पोषण एवं संवर्द्धन में अप्रत्यक्षतः बड़ा योगदान है। लेकिन उनकी दशा बड़ी शोचनीय बनी हुई है यही बात आज बड़ी चिन्तनीय है। अस्तु आज यदि हमें भौतिक युग के दुष्प्रभावों से विलुप्त हो रही; अपनी श्रमण संस्कृति को बचाना है तो हमें धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना होगा। जैन वांगमय जो परा और अपरा विद्याओं का मनोरम अक्षय भण्डार है के पठन-पाठन और शोध खोज हेतु उचित तथा पर्याप्त प्रयास करना होगा।

इस संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती उत्सव मनाने एवं स्मारिका का प्रकाशन करने की योजना निम्नलिखित उद्देश्यों के हेतु बनाई गई।

(१) दूरस्थ क्षेत्रों में इस विद्यालय के योगदान की जानकारी हो तथा अधिकाधिक लोग यहाँ की शिक्षण सुविधाओं का लाभ ले सकें।

(२) इस विद्यालय के संस्थापक, परम सहायक भूतपूर्व अधिकारी अध्यापक व कर्मचारी सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना, जिनके योगदान से यह विद्यालय अपनी प्रगति के ७५ वर्ष पूर्ण कर सका।

(३) स्नातकों को धार्मिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपनी उचित तथा पर्याप्त सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रेरित करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) वर्तमान तथा भावी पीढ़ी को संस्था के विगत इतिहास से परिचित कराना।

(५) ऐसे अपूर्व आयोजन द्वारा स्थानीय समाज में धार्मिक चेतना लाना तथा नूतन दिशाबोध देना।

(६) जैनेतर समाज में धार्मिक प्रभावना करना तथा जैन वांगमय के पठन-पाठन, धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना आदि।

इन विविध उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर इस विद्यालय की हीरक जयन्ती मनाने और स्मारिका प्रकासित करने का निर्णय "सभा" ने लिया जिसकी स्पष्ट तथा विस्तृत रूपरेखा बनाने के लिये निम्नलिखित महानुभावों की एक समिति बनी।

(१) प्रो. एस. एल. जैन
(२) श्री विमलकुमार सराफ
(३) श्री अभयकुमार शास्त्री
(३) शाह श्री खूबचन्द जी
(५) श्री मा० प्रेमचन्द्र जी सेमरा वाले।

उक्त समिति के निर्णयानुसार हीरक जयन्ती के कार्यक्रम निश्चित हुए और स्मारिका के प्रकाशन तथा सम्पादन हेतु यहाँ के वयोवृद्ध विद्वान आदरणीय पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य से निवेदन किया गया लेकिन अस्वस्थतावश उक्त कार्य भार वहन करने में उन्होंने असमर्थता व्यक्त की तब पत्राचार आदि का कार्य सभा के मन्त्री श्री विमलकुमार सराफ ने अपने हाथों में लिया, पर अन्ततोगत्वा इस कार्य का सम्पूर्ण दायित्व आदेश पत्र प्रेषित कर मेरे ऊपर डाल दिया। यद्यपि इस गुरुत्तर भार का वहन करना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कठिन था किन्तु मैं उनके आग्रह को ठुकरा न सका। सभा के मंत्री महोदय के आदेश का पालन अनिवार्य था। अतः गम्भीर विपन्न पारिवारिक दशाओं के बीच रहते हुए भी मैं इस कार्य को पूर्ण करने हेतु रात दिन जुटा रहा। पर 'श्रेयान्सि बहु विघ्नानि' के अनुसार विगत एक ही सत्र में दो बार मुझे यहाँ से स्थानान्तरण की अप्रत्याशित अशान्ति कारक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त १२ फरवरी ८१ को पूज्य मातेश्वरी के चिर वियोग से मैं एकदम टूट गया क्योंकि उनके शुभाशीर्वाद तथा छत्रच्छाया से हम हमेशा-हमेशा के लिए वंचित हो गये थे।

ऐसी गम्भीर अशान्त अस्थिर दशाओं में भी मैं यथा शक्ति इस कार्य को पूर्ण करने में लगा रहा। शुभाशीर्वाद, शुभकामना, संस्मरण लेखादि प्राप्ति हेतु पत्राचार किया और स्थानीय व्यक्तियों से भी सम्पर्क साधा। जिसके खट्टे मीठे अनुभवों को यहाँ लिखना व्यर्थ है। स्मारिका के लिए प्राप्त सामग्री को व्यवस्थित कर प्रेस कापी करने के कार्य को भी हमें ही सम्भालना पड़ा।

ऐसी विभिन्न कठिनाईयों के बीच यह स्मारिका तैयार होकर आपके हाथों में पहुँच रही है। स्मारिका को निम्नांकित पांच खण्डों में विभक्त किया गया है।

प्रथम शुभाशीर्वाद तथा शुभकामना नामक खण्ड में इसमें पूज्य गुरुवर्य तथा त्यागीवृन्द के शुभाशीर्वाद तथा विभिन्न महानुभावों से प्राप्त शुभकामना सन्देश संकलित हैं।

द्वितीय खण्ड में विद्यालय से सम्बन्धित महानुभावों के संस्मरण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय खण्ड में विद्यालय का प्रगति विवरण है। जिसमें इसके विगत ७५ वर्षों का संक्षिप्त इतिहास तथा वर्तमान स्थिति का विहंगावलोकन है।

चतुर्थ विज्ञान वाटिका खण्ड है। इसमें जैन वांगमय, धर्म संस्कृति, इतिहास पुरातत्व आदि विषयों के मर्मज्ञ मनीषियों की लेखनी से प्रसूत लेखों का संग्रह है।

पंचम विज्ञापन खण्ड है जिसमें विभिन्न प्रतिष्ठानों के शुभकामनाओं के साथ विज्ञापन हैं।

स्मारिका कैसी क्या बन पड़ी है? इसका निर्णय आप सभी विज्ञ पाठकों के ऊपर छोड़ता हूँ। इस विषय में आपके मन्तव्य अपेक्षणीय हैं। जो भी कमियां रही हैं वे मेरी अनुभव हीनता तथा परिस्थितियोंवश ही हो सकती है। वैसे इसे अच्छा से अच्छा सम्पूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

स्मारिका प्रकाशन में हमें श्री प्रो० श्री नन्दनलाल जी से समय-समय पर उचित परामर्श तथा मार्गदर्शन मिलता रहा उनका मैं आभारी हूँ। श्री मुन्नालाल जी शास्त्री जो कि इस विद्यालय के व्याकरण अध्यापक हैं के सहयोग से कार्य में बड़ी गति मिली है। अतः मैं इनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

सभा के मन्त्री श्री विमलकुमार जी सराफ तथा अध्यक्ष श्री राजेन्द्रकुमार जी को भी साभार धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने हमारे इस कार्य को सहज व आसान बनाने के लिए हर संभव सहयोग हमें प्रदान किया है।

उन सभी महानुभावों का तो मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपने लेख, संस्मरण शुभकामनाएँ आदि प्रेषित कर हमें अनुगृहीत किया है। श्री नरेन्द्रकुमार जी ताम्रकार संचालक "राजप्रेस" विदिशा वालों को इस समय विस्मृत नहीं किया जा सकता है, जिन्होंने बड़ी द्रुतगति व सुन्दर ढंग से स्मारिका को प्रकाशित कर हमें अनुगृहीत किया है। आदरणीय श्री नन्हेंलाल जी बुखारिया ने अपने सत्परामर्श से हमें उपकृत किया है। साथ ही उन सभी ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों का भी मैं आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा एवं मार्ग दर्शन से यह स्मारिका आप तक पहुँच सकी।

अभय कुमार जैन
सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दो शब्द........................

आद्य तीर्थंकर भगवान नाभिनन्दन (ऋषभदेव) के नाम से विख्यात स्व० श्री नाथूराम जी 'साव' द्वारा संस्थापित यह विद्यालय विगत ७५ वर्षों से अपनी वेगवान धारा के साथ प्रगति-पर बढ़ता चला आ रहा है। यह मेरा परम सौभाग्य है कि जुलाई ७६ से मुझे यहाँ व्याकरण अध्यापक के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त है। तथा मेरे ही कार्यकाल में इस विद्याल की हीरक जयन्ती मनाने और स्मारिका प्रकाशित करने का अपूर्व स्तुत्य ऐतिहासिक निर्णय लिया गया। हीरक जयन्ती स्मारिका के प्रकाशन हेतु सामग्री संकलित करने में मैंने इसके प्रधान सम्पादक श्री अभय कुमार जी जैन को यथाशक्ति सहयोग दिया है। मैं एक साथ अनेक कार्यों के भार को वहन कर रहा हूँ। इस विद्यालय के प्रधानाचार्य पं० फूलचन्द जी शास्त्री की वृद्धावस्था के कारण कार्यालयीन एवं छात्रावास सम्बन्धी सारे कार्यों का दायित्व मेरे ऊपर ही है। साथ ही श्री स्या० शि० परिषद शाखा वीना को उपमंत्री होने से धार्मिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यों में भी यथोचित सहयोग देना पड़ता है तथापि संस्था के अधिकारी वर्ग के प्रेम एवं मधुर व्यवहार से सभी कार्य बाधा रहित हो जाते हैं।

यहाँ के अधिकारी योग्य, कुशल, बुद्धिमान्, कर्मठ, उदार-हृदय और सहयोगी प्रकृति के हैं। अध्यापकों के प्रति उनमें सम्मान की भावना है। इस विद्यालय की चहुँमुखी उन्नति के लिए तत्पर भी रहते हैं। हमारे सुझाव मात्र से उन्होंने इस वर्ष यहाँ पूर्व मध्यमा की कक्षाएँ खोल दी हैं। हीरक जयन्ती मनाने और स्मारिका प्रकाशित करने का स्तुत्य निर्णय उन्हीं की सूझ-बूझ का प्रतिफल है। नहीं तो इसके पूर्व भी रजत जयन्ती और स्वर्णजयन्ती समारोह भी उन-उन समयों में आयोजित हो सकते थे। यह स्मारिका, जो आपके हाथों में है, अँधेरे में चिराग का काम करेगी।

मुझे आशा है कि अल्पकाल में ही यह विद्यालय महाविद्यालय का रूप ग्रहण कर लेगा।

मुन्नालाल शास्त्री
सह सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्त शिरोमणि चारित्रनायक परम पूज्य आचार्यरत्न

१०८ श्री विद्यासागर जी महाराज

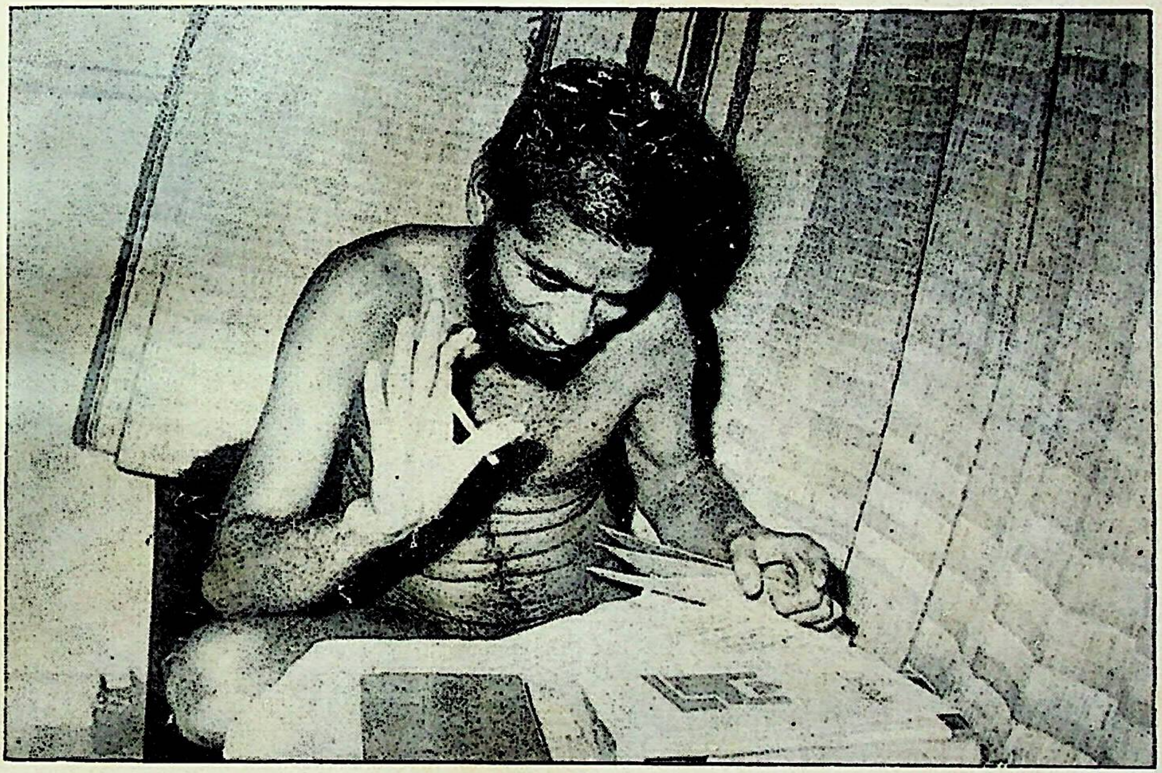

निःसंग है वायुसम, निर्लेप हैं आकाश-से,
वनराज के सम हैं निडर, जीवन न पर की आस-से।
जिनके निकट सिंहासन पशु भी, भूल जाते-क्रूरता।
उन दिव्य गुरुओं की अहो! कैसी अलौकिक शूरता।।

—कविरत्न गुणभद्र जी, अगास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'इस विद्यालय के प्रेरक"

प्रशान्तमूर्ति प्रातः स्मरणीय

पूज्य १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णी

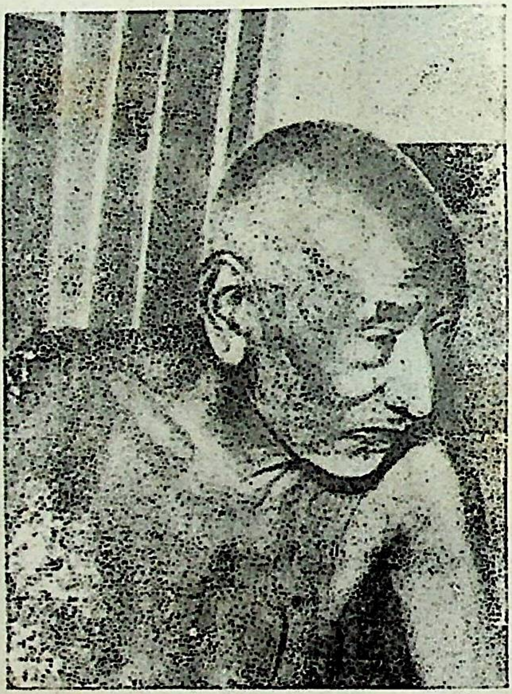

छात्राणां कल्पवृक्षाय बुधानां कामधेनवे ।
संस्थानां च सदा चिन्ता-मणये वर्णिने नमः ॥

—पं० अमृतलाल शास्त्री, अध्यापक, लाड़नूं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड प्रथम

आशीर्वाद-शुभकामनाएं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Saddharma bandhu,

Our joy knew no bound to hear that Shri. Nabhinandana Digamber Jain Sanskrita Vidyalaya, Bina is celebrating its "HIRAK JAYANTI" this year. Shri. Nabhinandana Digamber Jain Hitopadeshini Sabha whice runs the Sanskrita Vidyalaya deserves great praise by one and all for its yeoman services of 74 years-the example indeed has to be emulated by others The Managing committee especially the Secretary of the Sabha deserves congratulations and remains blessed.

We are also very happy to know that you will bring out a Souvenir on this happy occasion to commemorate the victorious event. We bless your venture for its great grand success.

We hope and wish that Shri Nabhinandana Digamber Jain Hitopadeshini Sabha will strive still better serving the pupils through Jain Sanskrit Vidyalaya so that they could become the best citizens of good world.

Peace be to all !!!
"Bhadram Bhuyat, Vardhatam Jinashasanam"
With Best of Blessings.

Swasti Sri Bhattaraka
Charukeerthi Panditacharyavarya Swamiji
MOODBIDRI

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

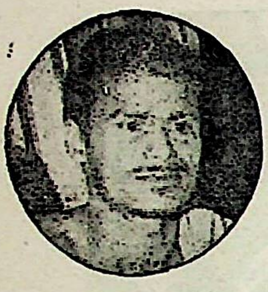

शुभाशीर्वाद

श्री नाभिनन्दन दिग. जैन संस्कृत विद्यालय के अपनी प्रगति के ७५ वें वर्ष में प्रवेश पर इसकी हीरक जयन्ती मनाये जाने का शुभ संकल्प सराहनीय है। धार्मिक नैतिक एवं लौकिक शिक्षण द्वारा ये संस्कृत विद्यालय जैन संस्कृति की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते आ रहे हैं। आज के भौतिकतावादी अर्थप्रधान युग में ऐसे विद्यालयों की महती आवश्यकता है। यह विद्यालय धार्मिक, नैतिक एवं लौकिक शिक्षण द्वारा जन-जन में जैन संस्कृति, सदाचार और सम्यग्ज्ञान का प्रचार-प्रसार एवं अभिवृद्धि करता हुआ उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर हो—यही मेरी भावना है, यही मेरा शुभाशीर्वाद है।

—क्षु० सन्मति सागर 'ज्ञानानन्द'

शुभ कामना

स्व-पर उपकार की शुभ भावना से श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय बीना की हीरक जयन्ती की ७५ वीं वर्ष गांठ पर स्मारिका प्रकाशित कराने का जो प्रयास किया है, वह सराहनीय है।

युवा वर्ग व नवबालकों में धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ नैतिक शिक्षा का पाठ्यक्रम संचालित हो जिससे समाज में धार्मिक जाग्रति हो यही हमारी शुभ कामना है।

ब्र० जिनेशकुमार जैन

वर्णी भवन, मोराजी, सागर (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राष्ट्रपति सचिवालय

राष्ट्रपति भवन

नई दिल्ली–११०००४

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी को सम्बोधित आपका दिनांक १४ अक्टूबर, १६८० का पत्र प्राप्त हुआ। श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, बीना की हीरक जयन्ती के अवसर पर राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनाएं भेजते हैं।

भवदीय,
के. सूर्यनारायण
(राष्ट्रपति के प्रेस सचिव)

मंत्री

निर्माण और आवास भारत

नई दिल्ली ११००११

यह जानकर हर्ष हुआ कि श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, बीना अपनी प्रगति के ७४ वर्ष पूर्ण कर ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर चुका है।

विद्यालय ने विगत ७४ वर्षों में शिक्षण, साहित्यिक, सांस्कृतिक व क्रीड़ा जगत में काफी प्रगति की है तथा सुसंस्कृत छात्रों के निर्माण में अपनी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मैं इस हीरक जयन्ती के अवसर पर विद्यालय की निरन्तर प्रगति और हीरक जयन्ती स्मारिका की सफलता की कामना करता हूं।

आपका,
प्रकाशचन्द सेठी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्री

भारत सरकार

सन्देश

भारतीय संस्कृति अनेक रूपेण होते हुए भी मूल रूप से एक है। इसमें सनातन, जैन, बौद्ध, यवन तथा ईसाई सभी संस्कृतियों का पुट होते हुए भी एक मौलिक वैचारिक एकता है। इस तथ्य को हमारी शिक्षा संस्थाएं भली-भांति प्रचारित तथा प्रसारित कर सकती हैं।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, बीना (मध्य प्रदेश) हमारे देश की एक ऐसी ही विशिष्ट शिक्षा संस्था है जो इस लक्ष्य की प्राप्ति में संलग्न है। इस संस्था के 'हीरक जयन्ती' के अवसर पर मैं अपनी शुभ कामना व्यक्त करता हूँ।

शंकरराव चव्हाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अटलबिहारी वाजपेयी
Member of Parliament
(LOK SABHA

६, रायसीना रोड, नई दिल्ली-१

१७ सितम्बर १९८०

प्रिय बन्धु,

आपका १५-९-८० का पत्र श्री वाजपेयी जी के नाम प्राप्त हुआ।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि नाभिनंदन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय बीना की ७५ वें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष्य में संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती मनाने का निर्णय किया गया है।

आपके प्रयासों एवं विद्यालय की उन्नति के लिए बाजपेयी जी की शुभकामनाएं

भवदीय
शिवकुमार
निजी सचिव

डॉ. प्रभाकर नारायण कवठेकर
एम. ए., पी. एच. डी., साहित्याचार्य
कुलपति
विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय बीना ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। संस्कृत विद्या के क्षेत्र में इस संस्थान ने परम्परा प्रस्थापित की है और अनेक छात्र लाभान्वित हुए हैं। इस हीरक जयन्ती के अवसर पर मेरी ओर से शुभकामना है कि भविष्य में भी नित्य-निरन्तर रूप में यह संस्था कार्य करने में अग्रसर रहे तथा भारतीय संस्कृति के लिए पोषक एवं स्वस्थ वातावरण की सृष्टि करने में योगदान करे। मैं समारोह की सफलता चाहता हूँ।

पुन: शुभकामनाओं सहित,

भवदीय

-प्रभाकर नारायण कवठेकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामनाथ पाठक
कुल सचिव
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय
वाराणसी-२२१००२

शुभाशीर्वाद

यह जानकर अतीव हर्ष एवं सन्तोष हुआ कि आपका विद्यालय विगत चौहत्तर वर्षों से संस्कृत शिक्षा में सक्रिय योगदान करते हुए अब हीरक जयन्ती समारोह मनाने तथा उसके उपलक्ष में एक स्मारिका प्रकाशित करने जा रहा है। आपकी संस्था से इसी प्रकार की आशा की जाती है।

मैं इस पुनीत अवसर पर अपनी हार्दिक शुभ कामनाएं प्रेषित कर रहा हूं।

—रामनाथ पाठक

डॉ. एम. जी. पैठणकर
कुलसचिव
भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल

शुभ कामना

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन हितोपदेशनी सभा द्वारा संचालित सस्कृत विद्यालय बीना, हीरक जयन्ती वर्ष में पदार्पण कर रहा है।

आशा है यह विद्यालय संस्कृत के प्रचार एवं प्रसार में आगे भी इस प्रकार कार्य कर दूसरों को प्रेरणा देता रहेगा।

शुभ कामनाओं के साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

एम. जी. पैठणकर

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'निर्मल' ३ री मन्जिल

नरीमन पोइन्ट

बम्बई ४०० ०२१

दिनांक १९ सितम्बर १९८१

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन हितोपदेशिनी सभा द्वारा संचालित श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय अपने यशस्वी जीवन के ७४ वर्ष पूर्ण कर ७५ वें वर्ष में पदार्पण कर चुका है और हीरक जयन्ती समारोह का आयोजन किया जा रहा है।

यह गौरव का विषय है कि विद्यालय जैन-संस्कृति के प्रचार-प्रसार कार्य में गत ७५ वर्षों से कार्यरत है और यह एक शुभ लक्षण है कि इससे विद्यार्थियों में रुचि बढ़ी है। संस्कृत-भाषा में हमारी संस्कृति निहित है और इसका साहित्य हमारी अमूल्य धरोहर है। आप इस आदर्श की ओर उन्मुख होकर रचनात्मक प्रवृतियों द्वारा समाज का उत्थान कर रहे हैं, वह सराहनीय है।

"हीरक जयन्ती के अवसर पर संस्था के पदाधिकारियों एवं विद्यालय के सभी विद्यार्थियों को अपनी शुभकामनाएं भेजता हूं। इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली "हीरक जयन्ती स्मारिका" के माध्यम से धर्म का प्रचार अक्षुण्ण होता रहे, यही मेरी मनोकामना है।

आपका

श्रेयान्सप्रसाद जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमन्त सेठ डालचन्द जैन
भूतपूर्व विधायक बीना क्षेत्र
चमेली चौक, सागर (म० प्र०)

मंगल-कामना

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय का हीरक जयन्ती समारोह मनाया जा रहा है और इसी उपलक्ष्य में स्मारिक भी प्रकाशित की जा रही है—यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

नि: सन्देह विगत छह-सात दशकों में हमारे इन संस्कृत विद्यालयों ने समाज एवं राष्ट्र को अनेक सच्चरित्र मेधावी विद्वान और सुयोग्य नागरिक तैयार कर दिये हैं। आज ये विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न गौरवपूर्ण पदों पर रहकर धर्म समाज एवं राष्ट्र के समुत्थान में लगे हुए हैं। धर्म, समाज एवं संस्कृति के संरक्षण, पोषण, संवर्द्धन प्रचार एवं प्रसार में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप में इन संस्कृत विद्यालयों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। हमारे धर्म एवं संस्कृति के मानो ये प्रकाशस्तम्भ हैं। इनके संरक्षण एवं सम्पोषण हेतु समाज को सतत सचेष्ट रहना चाहिए।

हीरक जयन्ती के मंगलमय अवसर पर मैं इस विद्यालय के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ तथा हीरक जयन्ती समारोह की सफल सम्पन्नता एवं स्मारिका के सफल प्रकाशन हेतु मैं अपनी सद्भावनाएं संप्रेषित करता हूँ।

शुभाकांक्षी:
डालचंद जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Dr. J. C. Jain
Rua Calowa, 2197-Apto. 103
o1258-SAOPAULO
SP-BRAZIL

हार्दिक शुभकामनायें

आभारी हूँ जो आपने श्री नाभिनन्दन दि० जैन संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती के अवसर पर स्मरण किया। आपका विद्यालय अपनी प्रगति के ७४ महत्वपूर्ण वर्ष समाप्त कर ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर चुका है, एतदर्थ हमारी हार्दिक प्रसन्नता और बधाई स्वीकार करें। इस अर्थ प्रधान युग में आप लोग संस्कृतविद्या को जीवित रखने के लिए प्राण पण से जुटे हुए हैं—यह जानकर प्रसन्नता होती है।

इस पुनीत अवसर पर जर्मनी के सुविख्यात भाषातत्व वेत्ता 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' के पिता 'फ्रान्त्स बॉप' (ई० १७९१–१८६७) का नाम स्मरण हो आता है जिन्होंने अपने ठोस विचारों के कारण तत्कालीन अनेक योरपीय विद्वानों का कोप–भाजन बनकर भी संस्कृत भाषा को भारतीय आर्यभाषाओं का प्रमुख अंग सिद्धकर उसके सार्वजनिक महत्व को उजागर किया। खुशी की बात है कि आपकी संस्था 'फ्रान्त्स बॉप' की परम्परा को आगे बढ़ाती चली आई है।

आपके संस्कृत विद्यालय की इस पुनीत हीरक जयन्ती के अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामनायें प्रेषित कर रहा हूँ।

शुभचिन्तक

जगदीशचंद्र जैन

साओपालो (ब्राजील)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डा० कोमलचन्द्र जैन
एम० ए०, पी-एच० डी०, नव्यव्याकरणशास्त्री
जैनदर्शनाचार्य, प्राकृताचार्य,
प्राध्यापक, संस्कृत–पालि विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

प्लाट नं० १३३-१३४ए
भेलूपुर न्यूकालोनी
वाराणसी–२२१००५

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय के ७५ वें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष्य में उसकी हीरक जयन्ती मनायी जा रही है और स्मारिका भी प्रकाशित की जा रही है। चूंकि मेरी प्रारम्भिक संस्कृत-शिक्षा इसी विद्यालय में हुई है। अतः उसकी प्रशंसा आत्म प्रशंसा कही जा सकती है, किन्तु जीवन में कभी-कभी ऐसे भी अवसर आते हैं, जब आत्म प्रशंसा क्षम्य होती है। यह भी ऐसा ही एक अवसर है।

यह विद्यालय एक मात्र ऐसा विद्यालय है जिसने सदैव दूसरों को दिया ही है, लिया नहीं। मेरे जीवन निर्माण का सारा श्रेय इसी विद्यालय को है। मैं इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना के साथ इसके हीरक जयन्ती समारोह की सफलता हेतु हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूँ।

–कोमलचन्द्र जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

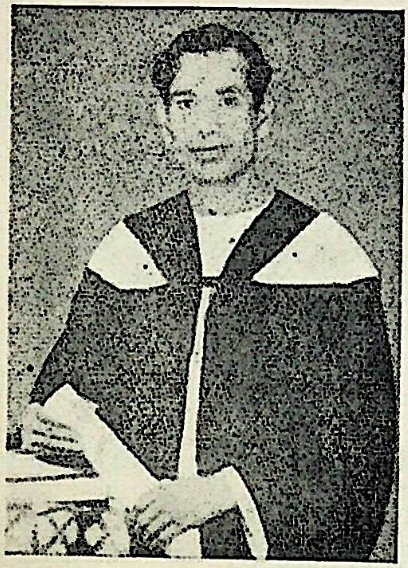

मोतीलाल जैन
एम. ए., साहित्याचार्य
प्राचार्य (भू. पू.)
श्री स्या० सं० महावि० वाराणसी–५

मंगलकामना

जो श्रीमन्नाभिराज महाराज के नन्दन थे, जिनका जेष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती न केवल छहखण्ड पृथ्वी का स्वामी था, अपितु जिसके नाम पर ही इस महान देश का नाम भारतवर्ष पड़ा था, जिन्होंने चौथे काल के आरम्भ मे संसार समुद्र में डूबते हुए मानवों का उद्धार किया था और जिन्होंने असि, मषि आदि षट्कर्म की वृत्ति का ज्ञान देकर प्रजापति और आदि ब्रह्मा के नाम को सार्थक बनाया था, उन त्रैलोक्य पूज्य भगवान ऋषभदेव (नाभिनन्दन) के पवित्र नाम को धारण करने वाला श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, बीना बालकों को बिना किसी जाति एव लिंग भेद के पारमार्थिक एवं लौकिक शिक्षा प्रदान करता हुआ अविरल गति से एक एक वर्ष के एक-एक चरण बढ़ाता हुआ आज अपनी प्रगति के ७५ वे वर्ष में प्रवेश कर अपनी हीरक जयन्ती के अधिकार को प्राप्त कर चुका है। अपने इस पुनीत कर्तव्य के बदले किसी से एक कर्दपिका की भी मांग नहीं करता। अज्ञानतिमिर का ध्वंस करता हुआ जो अपने जन्मदाता समाज के पितामह महामाननीय साव नाथूराम जी के नाम को अमर बनाने वाली अपनी उज्वल कीर्तिरुपी धवल पताका को फहरा रहा है।

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन नामा विद्यालयोऽभरगिरा किल पाठ्यमानः।
श्री नाथूरामगुणगीतकमेव मन्ये सो गायतीति सततं मधुर स्वरेण ॥

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन विद्यालय संस्कृत वाणी के माध्यम से पढ़ाता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो वह श्री सम्पन्न नाथूरामजी के गुणों को ही निरन्तर मधुर स्वर से गा रहा है–ऐसा मैं मानता हूँ।

वैसे शिक्षालय बहुत हैं, पर इस विद्यालय की शान अप्रतिम है। मैं इस विद्यालय की हीरक जयन्ती पर इसकी आचन्द्रार्क स्थिति, वृद्धि और फलोदय की मंगलकामना करता हूँ।

–मोतीलाल शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यावारिधि डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया

एम. ए , पी. एच. डी., डी. लिट्, साहित्यालंकार

प्रवक्ता तथा शोध निदेशक—हिन्दी विभाग—श्री वार्णेय कालेज,
आगरा विश्व वि०, अलीगढ़

सम्पादक — 'अहिंसा-वाणी' तथा 'वायस आफ अहिंसा'

सह-संचालक — अखिल विश्व जैन मिशन (रजि०)

अध्यक्ष — अणुव्रत समिति—अलीगढ़ जनपद

संचालक — जैन शोध अकादमी, आगरा रोड
अलीगढ़ (२०२००१)

यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री ना० नं० दिग० जैन संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती मनाई [जा] रही है। इसी अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा। स्मारिका के माध्यम से जहां एक [ओर] विद्यालय के विकास का विवरण व्यक्त-अभिव्यक्त होगा वहां दूसरी ओर जिन संस्कृति का महत्व भी शब्दा[यित] किया जावेगा।

मेरी भावना हैं कि आप अपने लक्ष्य की प्राप्ति में अतिशय सफल हों और कामना है कि आप[की] स्मारिका द्वारा विद्यालय की यशः सुरभि चतुर्दिक विकीर्ण आकीर्ण हो। सद्भावना सहित आपका हां —

विनी[त]

—महेन्द्र सागर प्रचंडि[या]

× × × ×

श्री वर्णी जैन इन्टर काले[ज]
ललितपुर (उ० प्र[०])

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपका श्री ना० नं० दि० जैन संस्कृत विद्यालय, [...] अपने प्रगतिशील जीवन के ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इस अवसर पर विधालय की ओर से प्र[का]शित होने वाली 'हीरक जयन्ती स्मारिका' की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनायें स्वीकार करें।

संस्कृत भारतीय संस्कृत की आधारशिला हैं। उसके पठन-पाठन में निरत आपका यह विद्या[लय] निश्चय ही समाज की महत्वपूर्ण सेवा कर रहा है।

भवदी[य]

अजय कुमार [...]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डा० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

प्राचार्य—श्री गणेश दि. जैन सं. महाविद्यालय

सागर [४७०००२] म.प्र.

--युगों-युगों तक अमर रहे–

प्रसन्नता है कि बीना का श्री' नाभिनन्दन दि. जैन संस्कृत विद्यालय अपने कार्यकाल के ७४ वर्ष पूर्ण कर ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है और इसके उपलक्ष्य में उसका हीरक जयन्ती महोत्सव सम्पन्न किया जा रहा है। इस विद्यालय ने प्रारम्भिक कक्षाओं के अन्तर्गत स्वर्गीय पं० महेन्द्रकुमार जी आदि कुशाग्र बुद्धि वाले अनेक छात्रों को तैयार कर उन्हें उच्च शिक्षा के लिए वाराणसी, सागर तथा इन्दौर आदि के उच्च विद्यालयों में भेजकर उनके जीवन निर्माण में प्रशस्त भूमिका का निर्वाह किया है,

वीतराग सर्वज्ञदेव की वाणी को प्रचारित करने वाला यह विद्यालय युगों-युगों तक अमर रहे—इस शुभकामना के साथ मैं समारोह की सफलता चाहता हूं।

–पन्नालाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० माणिकचन्द्र जैन
जैनदर्शनाचार्य
प्रवक्ता—श्री गणेश दि० जैन सं० महावि०

२९०, मोहननग
सागर (म० प्र

शुभकामना

यह बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि श्री नाभिनन्दन दि० जैन सं० विद्यालय लगातार ७४ वर्षों से अज्ञा को तिरोहित कर ज्ञान का प्रकाश फैलाता आ रहा है और इसने हीरक जयन्ती मनाये जाने का परम सौभा प्राप्त कर लिया है। पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के तत्वावधान में इस विद्यालय ने धार्मिक एवं संस्कृत-शिक्षा व प्रचार-प्रसार करते हुए महान् गौरव प्राप्त किया है।

शिक्षाप्रसार के क्षेत्र में ज्ञानसाधना की नींव डालने वाला, संस्कृत में उच्च शिक्षा हेतु प्रोत्साहन दे वाला और समाज के मूर्धन्य विद्वद्रत्नों को जन्म देने वाला यही विद्यालय है। प्रारम्भ से आज तक इस विद्याल ने समाज के अनेकानेक वालकों को ज्ञानदान देकर और जीवन को संस्कारित करके जो महान् उपकार किया उसे भुलाया नहीं जा सकता। बीना जैन समाज आज भी इस विद्यालय का संचालन बड़ी तत्परता और कुशल से कर रही है। अतः इसके संचालक अभिनन्दनीय हैं, प्रशंसनीय हैं।

श्री १००८ भ० नाभिनन्दन (ऋषभदेव) से प्रार्थना है कि यह विद्यालय शिक्षा-प्रचार के माध्यम धर्म एवं संस्कृति की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखे तथा संसार के समक्ष अपना श्रेष्ठतम आदर्श उपस्थित क में सक्षम हो—यह मेरी हार्दिक शुभकामना है।

—माणिकचन्द्र शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

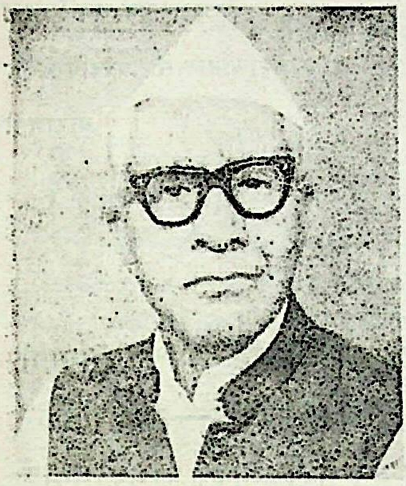

पं० दयाचन्द्र साहित्याचार्य
प्रवक्ता—श्री गणेश दि० जैन स० महावि०
सागर (म० प्र०)

शुभकामना

महान्प्रमोद का विषय है कि संस्कृत विद्यालय बीना का हीरकजयन्ती महोत्सव का शुभ अवसर उपस्थित हो गया है और उसकी योजना भी तैयार हो रही है। यह विद्यालय ७४ वर्षों से निरन्तर समाजसेवा के साथ जैनधर्म की प्रभावना एवं संस्कृतसाहित्य का प्रसार करता आ रहा है—यह प्रचुर-प्रमोद का विषय तो है ही, परन्तु आश्चर्य पूर्ण वार्ता तो यह है कि इस विद्याकल्पवृक्ष का बीना जैसे लघुक्षेत्र में जन्म, संरक्षण, संवर्द्धन और फलोदय कैसे हो गया ? इससे यह ज्ञात होता है कि इस विद्यालय का द्रव्य, क्षेत्र; काल और भाव प्रबल रहा है। इसकी इस प्रबलता का कारण स्थानीय समाज का मनसा वाचा कर्मणा वर्धमान पुरुषार्थ है उसमें भी श्री नाभिनन्दन दिग० जैन हितोपदेशिनी सभा का विशेष पौरुष है जिसने इसे अब तक सुरक्षित बनाये रखा।

उक्त हितोपदेशिनी सभा इस विद्याकल्पतरु की हीरकजयन्ती आयोजित कर रही है और उसकी स्मृति-स्वरूप स्मारिका भी प्रकाशित कर रही है—मानव-समाज को यह महाहर्ष का विषय है। मैं इस विद्यालय के शतायु जीवन के लिए शत-शत मंगलकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

मंगलाभिलाषी
—दयाचंद्र साहित्याचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डा० फूलचन्द जैन 'प्रेमी'
एम. ए., आचार्य (जैनदर्शन, प्राकृत)
पी-एच. डी.

अध्यक्ष–जैनदर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द सं. विश्वविद्यालय
वाराणसी

शुभकामना

आपके यहाँ श्री ना. नं. दिग. जैन सं. विद्यालय की 'हीरक जयन्ती' मनायी जा रही है और इसी प्रसंग में 'स्मारिका' भी प्रकाशित की जा रही है—यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। सभी कार्यों की अच्छी सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

—फूलचन्द जैन 'प्रेमी'
पी. ३/२ लेन नं० १३ रवीन्द्रपुरी (दुर्गाकुण्ड)
वाराणसी—५

पं. जयकुमार जैन शास्त्री
एम. ए., साहित्याचार्य
प्रधानाचार्य

श्री महा. दि. जैन सं. महाविद्यालय
साढ़ूमल (ललितपुर) उ. प्र.

श्री नाभिनन्दन दिग. जैन सं. विद्यालय, बीना, बुन्देलखण्ड की उन गण्यमान शिक्षण संस्थाओं में से एक है, जिन्हें संस्कृत भाषा, जैनधर्म एवं दर्शन के प्रचार-प्रसार के साथ ही अखिल भारतीय स्तर के विद्वद्-रत्न समाज को देने का श्रेय प्राप्त है। मैं इस विद्यालय के चिर-आयुष्य एवं हीरक जयन्ती महोत्सव की सफलता के लिए शुभकामना करता हूँ।

—जयकुमार शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवज्योति प्रदान करता रहे

संस्कृत विद्यालय बीना को ७५ वें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष्य में हीरकजयन्ती मनाये जाने और स्मारिका निकालने के शुभ समाचार से मुझे हर्ष हुआ। मेरी इस विद्यालय के प्रति पूर्ण श्रद्धा है; क्योंकि मेरे प्रारम्भिक जीवन का निर्माता यही विद्यालय है। इसने मेरे जैसे सैंकड़ों बालकों के अन्धकारमय जीवन में ज्ञान का दीपक प्रज्वलित कर उसे आलोकित किया है, उनका नैतिक तथा सामाजिक उद्धार भी किया है। मैं इस विद्यालय के प्रति, इसके संचालकों एवं प्रवन्धकों के प्रति आभारी हूँ व सदैव आभारी रहूँगा। मैं उन सभी प्रवन्ध-संचालकों की हार्दिक सराहना करता हुआ आशा करता हूँ कि यह विद्यालय समाज के गरीब होनहार बालकों तथा आन्गतुक पीढ़ी को नव-ज्योति प्रदान करता रहे—ऐसी मेरी मनोकामना है। हीरकजयन्ती के आयोजनों की भी सफल सम्पन्नता की अभिलाषा है।

—शुभचिन्तक
डा. चिरंजीलाल जैन
मेन रोड़ विदशा

ब्र. भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री
श्री दि. जैन वर्णीव्रती आश्रम
मढ़ियाजी, पो. गढ़ा, जवलपुर

हजारों वर्षों तक फले-फूले

श्री नाभिनन्दन दिग. जैन संस्कृत विद्यालय बीना के ७५ वें वर्ष में प्रवेश करने पर इसकी हीरकजयन्ती मनाये जाने और स्मारिका प्रकाशित किये जाने के शुभवृत्त से चित्त प्रसन्न व हृदय श्रद्धा से अभिभूत हो उठा। मेरी पुरानी स्मृतियाँ एक के वाद एक चित्र-पट की भाँति दृष्टिपथ में आने लगीं। मेरे ऊपर इस विद्यालय के, यहाँ की धर्मवत्सल समाज के अनेक उपकार हैं। मुझे इस विद्यालय में १०-११ वर्षों तक अध्यापक के रूप में सेवा करने करने का सुअवसर मिला है। इसकी हीरक जयन्ती के परम पुनीत अवसर पर समारोह की निर्विघ्न सफलता हेतु मेरी शुभकामनाएँ सेवा में प्रेषित हैं। मेरी हार्दिक भावना है कि यह विद्यालय हजारों वर्ष तक फले-फूले और वृद्धि को प्राप्त हो। इसके आश्रय में पढ़े हुए-बढ़े हुए विद्यार्थी निज के कल्याण के साथ-साथ समाज और देश का भी कल्याण करें, इस विद्यालय की विशाल कीर्ति को दिग-दिगन्त में फैलावें।

स्मारिका के सफल प्रकाशन एवं हीरक जयन्ती समारोह की मंगल कामना के साथ—

आपका
ब्र० भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रतनेश कुमार जैन
सम्पादक
अहिंसा - सन्देश

पो० बाक्स ८५
बड़ालाल स्ट्रीट
रांची—८३४००१
(बिहार)

शुभ सन्देश

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन सं० विद्यालय का हीरक जयन्ती महोत्सव मनाया जा रहा है। किसी भी संस्था के लिए यह एक महती उपलब्धि है। इस शुभावसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित कर रहा हूँ।

—रतनेश कुमार जैन

सुरेश सरल
सहा० अभियंता (सिविल)
सरल कुटी, गढ़ाफाटक
जबलपुर (म. प्र.)

विद्यालय की हीरक जयन्ती मना रहे हैं—यह जानकर प्रसन्नता हुई। आपका यह समारोह सफल हो और विद्यालय अहिनश प्रगति करे—यह ईश्वर से प्रार्थना है।

—सुरेश सरल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुलझारी लाल जैन
इलाहाबाद बैंक
विदिशा (म.प्र.)

मंगल कामना

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्री नाभिनन्दन दिग० जैन संस्कृत विद्यालय अपनी प्रगति के ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर चुका है। अतः इस वर्ष इसकी 'हीरकजयन्ती का आयोजन किया जा रहा है और स्मारिका भी प्रकाशित की जा रही है। समारोह के सफल आयोजन एवं स्मारिका के प्रकाशन की शानदार सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकारें।

यह विद्यालय अपने क्षेत्र की एक अद्वितीय संस्था है जहाँ लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ उत्तम संस्कार एवं सच्चरित्र-निर्माण की विशेष शिक्षा दी जाती है जिसके फलस्वरूप इस संस्था से निकले हुए अनेकानेक छात्र जीवन के विविध क्षेत्रों में चतुर्मुखी प्रगति करके राष्ट्रनिर्माण के रचनात्मक कार्यों में अग्रसर हैं और इस विद्यालय की यशःसुरभि सर्वत्र विकीर्ण कर रहे हैं।

आज की बदलती हुई परिस्थितियों और सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में श्री ना० नं० दिग० जैन सं० विद्यालय जैसी महान् संस्थाओं की महती आवश्यकता व महत्व है। मुझ जैसे साधन-हीन एवं दिशाविहीन अनेकानेक बालकों के जीवन-निर्माण में यह संस्था वरदान सिद्ध हुई है। यदि इस संस्थारूपी नौका का सहारा न मिला होता तो मुझे उस वक्त मेरी तत्कालीन पारिवारिक परिस्थिति के अनुसार माध्यमिक शिक्षा लेना भी सम्भव नहीं था। इस विद्यालय के ऐसे महान् उपकार के प्रति मैं आजीवन आभारी व ऋणी रहूँगा।

मुझे आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह विद्यालय अपनी गौरवशाली परम्परा एवं शानदार इतिहास को यथावत् रखते हुए समय व समाज की आवश्यकता के अनुरूप अपनी उपयोगिता को अक्षुण्ण बनाए रखेगा। मैं इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

—गुलझारीलाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभकामना

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आपके यहाँ श्री नाभिनंदन दिग० जैन संस्कृत विद्यालय के ७५ वें वर्ष में प्रवेश पर इसकी 'हीरक जयन्ती' मनाई जा रही है। इस युग में ऐसे विद्यालयों की बहुत जरूरत है। सो आप जैसे योग्य व्यक्ति ही इसे पूरा करेंगे। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। वर्तमान समय में भी जैन संस्कृत विद्यालय में संस्कृत का पठन-पाठन चल रहा है जो निश्चित ही संस्कृत के विद्वानों को प्रोत्साहित करता है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि यह विद्यालय दिनों-दिन उन्नति करता रहे। मेरी कोटि-कोटि शुभकामनाएँ हैं।

— शुभाकांक्षी
श्रावक शिरोमणि, मुनिभक्त
भागचंद पाटनी
६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता—७

वैद्य पं. उदयचन्द शास्त्री
निष्कलंक औषधालय, कुरवाई
जिला—विदिशा (म. प्र.)

अविस्मरणीय योगदान

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि श्री ना. नं. दिग. जैन संस्कृत विद्यालय बीना अपनी यशस्वी प्रगति के ७५ वें वर्ष में प्रविष्ट हो चुका है। अतः इसकी हीरक जयन्ती मनायी जा रही है और स्मारिका भी प्रकाशित की जा रही है। आज के युग में शिक्षा महत्वपूर्ण है। यह विद्यालय विगत ७४ वर्षों से लौकिक एवं पारलौकिक व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान कर समाज एवं राष्ट्र को योग्य सच्चरित्र नागरिक तैयार करता आ रहा है—यह बड़े गौरव की बात है। शिक्षा के क्षेत्र में इस विद्यालय का योगदान अविस्मरणीय है। मैं इसकी प्रगति तथा हीरकजयन्ती आयोजन की सफलता हेतु अपनी शुभकामनाएँ समर्पित करता हूँ।

—वैद्य पं. उदयचन्द शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० प्रेमचन्द्र 'दिवाकर' शास्त्री

संस्कृत अध्यापक

शुभकामना

२० वीं सदी के जैन तत्ववेत्ता प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद लोकोन्नायक श्री १०५ क्षु. गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज के अनुशास्ता युग (वि.सं. १९३१-२०१८) में उनके सदुपदेशात् संस्कृत भाषा और जैनधर्म के प्रसार बाहुल्य में वाराणसी, सागर, द्रोणागिरि, अहार और साढूमल आदि नगरों और तीर्थों में संस्कृत-विद्यालयों की स्थापनाओं की भांति बीना (सागर, म. प्र.) में भी नाभिनन्दन दि. जैन संस्कृत विद्यालय स्थापित हुआ। वी. नि. सं. २५०७, वि. सं. २०३७, गणेश वर्णी संवत् १०७ में पंचसप्तप्रति संवत्सर के प्रवेश पर अपने गरिमामय विकास के उपलक्ष्य में हीरक जयन्ती के आयोजन पूर्वक अनवरत सेवारत यह विद्यालय अपनी स्मारिका प्रकाशित कर भारत में सर्व भाषा जननी संस्कृत का प्रचार प्रसार कर रहा है।

अल्पवेतन सन्तोषी किन्तु सरस्वती आराधक, परिश्रमी, मार्गदर्शी, संस्कृतज्ञ विद्वानों के उन्नयन की ओर सर्वतः ध्यानाकर्षण हो।

समाज और सरकार को समुचित रूपेण संस्कृत भाषा को गौरव और सहयोगात्मक व्यस्था के लिए रुचिवान-प्रयत्नवान होना आवश्यक है।

आयोजन की सफलता और विद्यालय तथा संस्कृतविज्ञ आचार्यगण के हीरकोज्ज्वल भविष्य के साथ आन्तरिक शुभकामनायें ज्ञापित हों।

श्री गणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागर (म. प्र.)

मंत्री - अ. भा. श्री वर्णी स्नातक परिषद् प्रधान कार्यालय, सागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभकामना

यह जानकर हर्ष हुआ कि श्री नाभिनन्दन दिग. जैन संस्कृत विद्यालय बीना (म. प्र.) अपनी प्रगति के ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इसी उपलक्ष्य में इसकी 'हीरक जयन्ती' मनाने तथा 'स्मारिका' निकालने का निश्चय किया गया है—यह और भी अधिक प्रसन्नता की बात है। मैं हृदय से प्रस्तुत निश्चय की सराहना करता हूँ। और संस्था की प्रगति की कामना करता हूं।

—पं० अमृतलाल शास्त्री
प्राध्यापक-जैन विश्व भारती, लाडनूं (रा०)

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री नाभिनन्दन दिग. जैन संस्कृत विद्यालय ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर चुका है और उसकी हीरक जयन्ती मनाई जा रही है। किसी भी संस्था का इतने लम्बे समय तक चालू रहना बहुत बड़ी बात है। मैं संस्था के उज्जवल भविष्य की शुभ कामना करता हुँ।

—पं० अगरचन्द नाहटा
नाहटों की गली, बीकानेर (राज०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विस्मृत-सुमन

श्री दिग० जैन शिक्षण संस्थाओं में श्री नाभिनन्दन दिग० जैन संस्कृत विद्यालय बीना का स्थान गौरवपूर्ण है। इसका अतीत ऐतिहासिक दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण व गौरवमय रहा है वर्तमान भी उस महत्ता व गौरव से तथावत अभिभूत है। मुझे स्मरण है—जब मैं सन् १९२५ में प्रथमा का छात्र बनकर इस विद्यालय की रज माथे में धारण कर ज्ञान की पिपासा शान्त कर रहा था, उस समय हमारे वरिष्ठ साथी स्व० पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य श्री पं० मनोहरलाल जी, बीना, श्री सनतकुमार जी परसौन आदि प्रतिभाशाली छात्र अपने शिक्षागुरु श्रद्धेय पं० धर्मदास जी न्यायतीर्थ साढ़ूमल के चरण-सान्निध्य में अपनी ज्ञान-पिपासा पूरी करते रहते थे। इस संस्कृत विद्यालय की दैनिक सुसंस्कारित प्रवृत्तियों ने मेरे जीवन में जहाँ एक सम्यक् सदाचरण का बीजारोपण किया तो वहाँ विद्यालय की गोद में अनुभूत ज्ञानफल का आस्वाद मुझे जीवन भर मिठास देता रहा।

आशा है, इस विद्यालय की अनेकों सुशिक्षित पीढ़ियाँ देश; समाज एवं धर्म की समुन्नति में अपना योग देती हुई अपने आपको सन्मार्ग की ओर ले जाने में सक्षम होंगीं।

इस विद्यालय की गरिमा का एक ही मूलभूत प्रमाण है कि इसमें दीक्षित अनेकों बालक देशसमाज के बीच शीर्षस्थ विद्वान् बनकर धर्म, समाज एवं साहित्य की अभिभूत सेवा कर गये हैं तथा अभी कर रहे हैं।

मैं इस विद्यालय के यशस्वी उन्नतिशील जीवन की आकांक्षा रखता हुआ इसकी स्मृतिरूप प्रकाशित होने वाली हीरक जयन्ती स्मारिका की सफलता चाहता हूँ।

—पं. राजधर स्याद्वादी
साढ़ूमल (ललितपुर) उ० प्र०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विमलकुमार जैन सोंरया
एम. ए. शास्त्री

'माँ' से भी अधिक पूज्य

माँ बालक को जन्म देती है पिता पालन करता है और शिक्षालय में उसे मानवीयता के संस्कार प्राप्त होते हैं। बुन्देलखण्ड में धर्माचरण की सुगन्ध सर्वत्र पाई जाती है उसका मुख्य कारण धार्मिक विद्यालय रहे हैं। ज्ञान का आचरण से तदाकार संबंध सिखाने वाली संस्थाऐं समाज में सदैव देवत्व के रूप में वंदनीय रहीं हैं। उन्होंने अपनी अंचल में जिसे बैठाया उसमें चरित्र की सुगन्ध तो विकरित की ही ज्ञान का प्रभावक प्रकाश उसमें प्रभावान किया। ऐसी गौरवशालिनी कुछेक संस्थाऐं ही होती हैं।

हर्ष की बात है कि बुन्देलखण्ड की ऐसी ही गौरवशालिनी संस्था श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय है जिसके गर्भ से अनेकों निमन्न चारित्रशील महान विद्वानों ने जन्म लिया है। परिणामतः उसकी पूज्यता गरिमा और महानता जन्मदायिनी माँ से भी अधिक हो चुकी है।

ऐसी महान लोकोपकारी संस्था की हीरकजयन्ती पर प्रकाशित होने वाली स्मारिका इसके गौरव की प्रतीक हो—यही कामना है।

—संयुक्तमन्त्री - अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद
टीकमगढ़ (म० प्र०)

श्रीमती जयश्री शास्त्री
बी. एच. एस. सी. बी. एड, एम. ए.
जैन गली, सासनी
प्राध्यापिका - गर्ल्स कालेज, सासनी

आचार्य जिनेन्द्र
एम. ए, शास्त्राचार्य
साहित्यरत्न, जैनदर्शनाचार्य
प्राध्यापक—संस्कृत विभाग
सासनी कालेज, सासनी (अलीगढ़)

यह ज्ञात कर प्रसन्नता हुई कि आप लोग श्री ना० नं० दिग० जैन संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती मना रहे हैं और इसी उपलक्ष्य में एक स्मारिका भी प्रकाशित कर रहे हैं। मुझे इस विद्यालय में तथा मेरी धर्मपत्नी को यहाँ की माध्यमिक कन्याशाला में अध्यापक के रूप में सेवा का सौभाग्य मिला है। हम लोगों की प्रगति का सम्पूर्ण श्रेय इसी विद्यालय को है। हमारी सद्भावनाएँ हैं कि यह विद्यालय समाज के अभावग्रस्त बालकों के अज्ञानाच्छन्न हृदयों को ज्ञान-ज्योति से आलोकित करता हुआ दिनों-दिन उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होवे तथा बीना जैन समाज की कीर्ति का सुदृढ़ स्तम्भ बने। हीरक जयन्ती के शुभ अवसर पर इसके उज्ज्वल भविष्य हेतु हम दोनों की अनन्त हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल

एम० ए०, एल० एल० बी०, पी० एच० डी०

प्राध्यापक—(संस्कृत) राजा बलवन्तसिंह कालेज

आगरा—२ (उ० प्र०)

शुभकामना

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री ना नं. दिग. जैन संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती के अवसर पर 'स्मारिका' प्रकाशित की जा रही है। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

इस महान् विद्यालय ने विगत ७४ वर्षों में देश में ज्ञान का आलोक फैलाया और संस्कृत भाषा, साहित्य के अध्ययन में अपार सहयोग प्रदान किया है। आज तो पूर्ववर्ती युग से भी अधिक संस्कृत के अध्ययन की आवश्यकता है, जिससे हम भारतीयता को न भूलें। प्राचीन संस्कृति की स्मारिका–संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती स्मारिका अवश्य ही समाज एवं राष्ट्र के नव-निर्माण के दिशानिर्देशों से पूर्ण विद्वानों के लेखों से सम्पन्न होगी--ऐसा मेर विश्वास है।

जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल

डा. निजामउद्दीन

प्राध्यापक (हिन्दी) इस्लामिया कालेज

श्री नगर (कश्मीर) १९०००२

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि आप ना. नं. दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती मना रहे हैं और इसी अवसर पर 'स्मारिका' भी प्रकाशित कर रहे हैं। इस हेतु मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

—डा० निजामउद्दीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुपार्श्वकुमार जैन
महामन्त्री
अ० भा० दि० जैन युवा परिषद्

प्राध्यापक
अर्थशास्त्र विभाग
दि० जैन कालेज बड़ौत

--महाविद्यालय का रूप धारण करे--

निः सन्देह यह एक महान हर्षोत्पादक समाचार है कि अपनी प्रगति के ७५ वें वर्ष में प्रवेश के उपल में श्री ना० नं० दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, बीना के हीरक जयन्ती समारोह का आयोजन किया रहा है और उसकी स्मारिका भी प्रकाशित की जा रही है। हीरक जयन्ती का भव्य आयोजन अतीत विहंगावलोकन कर भविष्य के लिए प्रेरक व मार्ग दर्शक बनेगा तथा बीना-समाज एवं विद्यालय के स्नात को अपनी स्मृतियों को तरोताजा करने के लिए सुअवसर भी प्रदान करेगा।

इस अवसर पर 'हीरक जयन्ती स्मारिका' का प्रकाशन भी स्तुत्य है। यह स्मारिका अनेक व्य धानों के बावजूद भी प्रगतिशील इस शिक्षण-संस्था का परिचय भारतवर्षीय सकल जैन समाज को प्रद करेगी।

हीरक जयन्ती के इस मंगलमय अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामना है कि यह संस्कृत विद्या निरन्तर प्रगति करता हुआ निकट भविष्य में महाविद्यालय का रूप धारण करे और चरित्रनिष्ठ जैन वा मय के मनीषी विद्वान राष्ट्र एवं समाज के अभ्युत्थान के लिए प्रदान करे।

अनन्त शुभकामनाओं के साथ—

शुभेच्छु—
सुपार्श्वकुमार जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डा० दरबारीलाल कोठिया
भूतपूर्व रीडर–का० हि० वि०
वाराणसी
उपाध्यक्ष–श्री भा. दि. जैन विद्वत्परिषद्

चमेली कुटीर
१/१२८ डुमराव कालोनी
वाराणसी–५

मंगल प्रयत्न

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि नाभिनन्दन दिग. जैन संस्कृत विद्यालय बीना (म० प्र०) अपनी हीरक जयन्ती' मना रहा है। यह बहुत विरले विद्यालयों या संस्थाओं को ही सौभाग्य प्राप्त होता है। जो लगातार ७४ वर्ष तक निरन्तर समाज की सेवा करते हुए शिक्षादान और प्रचार–प्रसार में रत रहें। बीना के इस विद्यालय को निश्चय ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

इस विद्यालय में स्व० पं० धर्मदासजी न्यायतीर्थ, साढूमल (जि० ललितपुर) जैसे मनीषी उच्च विद्वान अध्यापक रहे और स्व० डा० पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य जैसे अनगिनत मेधावी छात्रों ने इस विद्यालय में अध्ययन कर विद्यालय का नाम उजागर किया है।

इस संस्था के भूतपूर्व प्रबन्धकों में सिंघई श्रीनन्दनलालजी, व्याकरणाचार्य पं० वंशीधरजी शास्त्री जैसे यशस्वी मानद सेवी हैं, जो समस्त समाज में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं और जिनके सुयोग्य संचालन से संस्था आज भी सप्राण है और समुन्नति पर आरुढ़ है।

वर्तमान संचालक निश्चय ही प्रशंसनीय हैं, जिन्होंने विद्यालय की 'हीरक जयन्ती' मनाने का निश्चय कर उसमें चार चांद लगाये हैं। इसी अवसर पर 'स्मारिका' के प्रकाशन का अत्युत्तम विचार है। इससे विद्यालय के शानदार अतीत पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा और उससे वर्तमान को बल मिलेगा।

हम इस मंगल अवसर पर अपनी शुभ–कामनाएं प्रेषित करते हैं और संस्था के समस्त संचालकों को धन्यवाद देते हुए उक्त आयोजन की सफलता और विद्यालय की हृदय से समुन्नति व अभ्युदय चाहते हैं।

डा. दरबारीलाल कोठिया
वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभकामना

यह ज्ञात कर प्रसन्नता हुई कि बीना (म० प्र०) का श्री ना. नं. दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय अ यशस्वी जीवन के ७४ वर्ष पूर्ण करके अब ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है और इस उपलक्ष्य में इस उपयोगी ए जनप्रिय शिक्षा-संस्था की हीरक-जयन्ती समारोह पूर्वक मनाये जाने की योजना है तथा उसी के उपलक्ष्य में उपयुक्त 'हीरक जयन्ति स्मारिका' भी प्रकाशित की जा रही है। समारोह एवं स्मारिका की सफलता के लि मेरी हार्दिक शुभकामनाएं हैं। यह संस्था उत्तरोत्तर उन्नति करती हुई शिक्षा-प्रसार करती रहे यही भावना

—विद्यावारिधि, इतिहास रत्न, डा. ज्योतिप्रसाद जैन

ज्योति निकुन्ज. चार बाग, लखनऊ २२६-०११

संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती मनाने का जो आयोजन किया जा रहा है वह प्रशंसनीय है। स्वा शिथिल होने से मैं सम्भवतः स्मारिका के लिए कुछ न लिख सकूंगा। मैं इस आयोजन की सफलता की का करता हूं।

—पं० बालचन्द जैन, सिद्धान्त शास्त्री

१-८-५२२/४; द्वितीय मंजिल, चिक्कडपल्ली हैदराबाद (आ. प्र.) ५००-

---

हीरक जयन्ती हेतु आपने जो कार्यक्रम निर्धारित किये हैं, वे सराहनीय हैं। स्मारिका एवं हीरक ज की सफलता हेतु मेरी शुभ कामना है।

—पं० नाथूलाल जैन शास्त्री

सम्पादक-'सन्मति वाणी;' शीशमहल इन्दौर (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डा० लालचन्द जैन

M. A. Ph. D. Shastracharya, Jain Darshnacharya
Lecturer Research Institute of Prakrit Jainology
& Ahimsa, Vaishali (Bihar)

मंगलकामना

श्री ना. नं. दि. जैन स. विद्यालय की ७५ वें वर्ष में प्रवेश पर हीरक जयन्ती मनाये जाने और स्मारिका प्रकाशित किये जाने के शुभ समाचार से प्रसन्नता हुई। इस सुअवसर पर मेरी हार्दिक शुभ कामना है कि यह विद्यालय विगत वर्षों की भांति भविष्य में भी जैन विद्या के मनीषी विद्वान और सच्चरित्र निष्ठावान् निःस्वार्थ समाज सेवी रत्न तैयार करता हुआ अभ्युदय की ओर अग्रसर हो।

मंगलाभिलाषी
लालचन्द जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डा० रमेशचन्द जैन

एम० ए०, पी-एच० डी०, जैनदर्शनाचार्य, सि० शास्त्री
प्राध्यापक (संस्कृत) बर्द्धमान डिग्री कालेज,
बिजनौर (उ० प्र०)

शुभकामना

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप लोग इस वर्ष श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय के ७५ वें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष में इसकी हीरक जयन्ती मना रहे हैं और स्मारिका भी प्रकाशित कर रहे हैं। निःसन्देह इस विद्यालय ने विगत ७४ वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में जैन समाज में अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। मैं इस विद्यालय की प्रगति एवं हीरक जयन्ती समारोह की सफलता हेतु अपनी हार्दिक शुभ कामनाएं प्रेषित करता हूं।

—रमेशचन्द जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड द्वितीय

संस्मरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

• विद्यार्थियों को शुभ-सन्देश

—प्रातःस्मरणीय पू० गणेश प्रसाद जी 'वर्णी'

विद्यार्थी जीवन की सार्थकता इसी में है कि वे (विद्यार्थी) अपने जीवन की रक्षा करते हुए अपनी शक्ति और बहुमूल्य समय का सदुपयोग करें। बुद्धि का सदुपयोग ही उसका सच्चा विकास है।

विद्यार्थी को सबसे पहले शिक्षा का महत्व समझना चाहिए जिसके लिए वह घर-द्वार छोड़कर यहाँ-वहाँ दौड़ा-दौड़ा फिरता है। शिक्षा से इस लोक की कथा तो छोड़ो परलोक में भी सुख मिलता है। शिक्षा का स्वरूप ही प्राणियों को सुख देना है; क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा अमोघ मन्त्र है, जो दुःखातुर संसार को सच्चा सुख प्रदान कर सकता है।

संस्कृतज्ञ विद्वान् तो अपने बालकों को अर्थकरी विद्या (अंग्रेजी) पढ़ाते हैं। सामान्य परिस्थिति वालों की धारणा होती है कि संस्कृत विद्या पढ़ने से कुछ लौकिक वैभव तो मिलता नहीं, पारलौकिक की आशा तब की जावे जब कुछ धनार्जन हो। अतः इनके बालक भी संस्कृत पढ़ने से उदासीन हो जाते हैं। धनी लोगों के विचार ये रहते हैं कि 'हमें अपने बालकों को पण्डित थोड़े ही बनाना है जो हमारे बालक संस्कृत पढ़ने के लिए दूर-दूर भटकें।' अतः वे भी वही अर्थकरी विद्या (अंग्रेज़ी) पढ़ाकर अपने बालकों को धन्धों में लगा देते हैं।

इस तरह आजकल पाश्चात्य विद्या की तरफ ही लोगों का ध्यान है और जो आत्मकल्याण की साधक संस्कृत और प्राकृत विद्या है, उस ओर समाज का लक्ष्य नहीं है, उस ओर समाज का लक्ष्य नहीं है परन्तु छात्रों को इससे निराश नहीं होना चाहिए; क्योंकि लौकिक सुख स्थायी नहीं, नश्वर है, अनेक आकुलताओं का घर है। इसलिए विद्यार्थियों का कर्तव्य है कि वे प्राचीन संस्कृत विद्या के पारगामी पण्डित बनकर जनता के समक्ष वास्तविक तत्व के स्वरूप को रखें।

छात्र जीवन को सफल बनाने के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान में रखें—

१—विद्यार्थी का स्वोपकार उसका अध्ययन है। अतः सर्व प्रथम उसी की ओर ध्यान देना चाहिए।

२—विद्यार्थी बीच में अपना पठन-पाठन न छोड़ें। जिस विषय को प्रारम्भ करें उसका गम्भीरता से तुलनात्मक अध्ययन करें। विषय पर अपना पूर्ण अधिकार प्राप्त करें।

३—ब्रह्मचर्य का दृढ़ता के साथ पालन करें।

४—सदाचार और शिष्टाचार पर पूर्ण ध्यान दें।

५—स्वप्न में भी दैन्यवृत्ति का समागम न होने दें।

६—अभिमान मर्यादातीत न हो। साथ ही साथ स्वाभिमान जैसे धन को भी सुरक्षित रखें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७—गुरु के प्रति भक्ति हो, अभिप्राय निर्मल हों।

८—मनोवृत्तिदूषक साहित्य और सिनेमा से दूर रहें।

९—उत्तम पुरुषों के जीवन चरित्र अधिकांश पढ़ें और उनसे प्रेरणा लें।

१०—'सन्तोष सबसे बड़ा धन है' और 'सादगी सबसे अच्छा जीवन है' इन बातों को सदैव स्मरण रखें।

—वर्णी-वाणी, पृ० १३९-१४१

सदाचार

'सदाचार मानव जीवन के नन्दन-कानन का वह कल्पतरु है, जिसमें श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की तीन शाखाएं निकलती हैं और उन शाखाओं में से दया, नम्रता, शुभाकांक्षा, कर्तव्यशीलता, दृढ़प्रतिज्ञा, इन्द्रिय-विजय, परोपकार-परायणता, अध्यवसाय, सुस्वभाव, उदारता और प्रामाणिकता की उपशाखाएं निकलती हैं जिनमें विवेक के पल्लव, सद्भावना के सुमन और स्वपर-कल्याण के फल लगते हैं।'

—वर्णी-वर्णी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्मरण

(अ)

श्री नाभिनन्दन दि. जैन संस्कृत विद्यालय बीना में
मेरे चौबीस वर्ष

● पं० मोतीलाल जैन, एम. ए., साहित्याचार्य

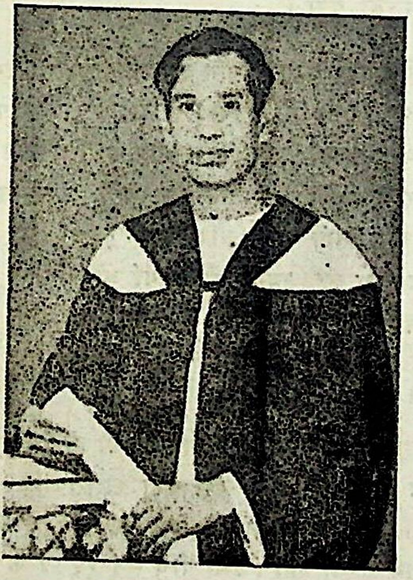

सन् १९४७ के ग्रीष्म में अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् ने सागर में शिक्षण-शिविर का आयोजन किया था, जिसमें मैं भी सम्मिलित हुआ था। वहाँ प्रायः रोज ही विद्वज्जनों के भाषण होते थे। एक दिन अहिंसा विषय पर मेरा भी भाषण हुआ, जो विद्वत्तापूर्ण तो नहीं था, किन्तु सभी को रुचिकर लगा था। भाषणोपरान्त आयुर्वेदाचार्य माननीय पं० चन्द्रशेखर जी जबलपुर वालों ने मुझे अपने पास बैठा कर कहा—'आप हमारी जबलपुर-समाज में बोलने लायक हैं। वहाँ विद्वान् की आवश्यकता है। अतः आप जबलपुर चलिए।' माननीय पं० नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य ने भी मुझे जैन संस्कृत विद्यालय राजाखेड़ा में प्रधानाचार्य के रूप में जाने के लिए बहुत प्रेरित किया एवं वहाँ सभी सुविधाएं देने का भी आश्वासन दिया लेकिन माननीय पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य एवं मा० पं० बंशीधर जी व्याकरणाचार्य बीना की नेक सलाह तथा आग्रह से मैं बीना चला आया। इस तरह १९७४ में मैंने सर्वप्रथम इस विद्यालय में संस्कृत अध्यापक और सुपरि० का पद-भार सम्भाला।

मैं विद्यालय के सम्पूर्ण दायित्वों को बड़ी लगन और परिश्रम से निर्वाह करता था। संस्कृत विश्वविद्यालय की परीक्षा में यहाँ के छात्र प्रायः प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ करते थे और माणिकचन्द्र दि० जैन परीक्षालय बम्बई की परीक्षा में खूब पारितोषिक प्राप्त करते थे। एक वर्ष मा० दि० जैन परीक्षालय बम्बई ने इस विद्यालय को सर्वश्रेष्ठ घोषित कर इसे 'धर्मवीर' शील्ड भी प्रदान की थी। कुछ दिनों बाद इस विद्यालय को सरकारी मान्यता भी मिल गई थी। चौबीसों घन्टे मैं विद्यालय की उन्नति के श्रमशील व सचेष्ट रहता था। साथ ही अध्ययन भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता था। सन् १९६२ में मैंने साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी।

इस विद्यालय से निकले हुए छात्रों ने स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, सर हुकमचन्द सं० महा विद्यालय इन्दौर तथा गोपाल सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेना में अपनी योग्यता की अच्छी धाक जमा रखी थी। वहाँ के छात्र बहुत व्युत्पन्न माने जाते थे। अतः वहाँ इन्हें प्रथम स्थान दिया जाता था। इस स्थिति के निर्माण में मेरा चौबीस घन्टों का श्रम ही प्रधान था।

सन् १९६२ मेरी नियुक्ति सर हुकमचन्द सं० महाविद्यालय इन्दौर में हो गई और मैं वहाँ चला गया। अपने अध्यवसाय से वहाँ इन्दौर विश्वविद्यालय से मैंने एम. ए. परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। मुझे चार ही वर्ष वहाँ हुए थे कि बीना के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने मुझे पुनः बीना आने के लिए आग्रह किया। कहा गया कि 'बीना-विद्यालय की सरकारी मान्यता समाप्त हो चुकी है और वह रसातल को पहुँच चुका है। आपकी आवश्यकता महसूस की जा रही है।

यद्यपि उस वर्ष में पी-एच० डी० के लिए प्रयत्नशील था तथापि अपने खून-पसीने से सिंचित तथा पल्लवित बीना-विद्यालय की उक्त दयनीय दशा ज्ञातकर मैंने पुनः बीना आना स्वीकृत कर लिया। मैंने संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर के पदाधिकारियों के पास अपना त्याग पत्र प्रस्तुत कर दिया जिसे स्वीकृत करने में उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त की और मुझसे कहा—'त्यागपत्र कैसा ? मन-माफिक वेतन वृद्धि हो जायगी।' तब मैंने उन्हें अपनी स्थिति से अवगत कराते हुए कहा—'मेरे सामने वेतन के प्रश्न से कर्तव्य का प्रश्न बड़ा है।' उत्तर में संयुक्त मन्त्री जी ने यही कहा कि 'आपकी इच्छा का विघात भी हम नहीं कर सकते, परन्तु महाविद्यालय की उन्नति के लिए हम आपका योगदान वहाँ से भी चाहते रहेंगे। पर दरअसल बात तो यह है कि हम अपने यहाँ से विद्वानों को अन्यत्र जाने देना पसन्द नहीं करते।' मैंने कहा—'श्रीमन् ! आपका विचार तो श्रेष्ठ है; पर मैं विवश हूँ; इतना कहकर वापिस मैं अपने कमरे पर आ गया।

जिस समय मेरे त्यागपत्र में उक्त झमेला पड़ा, उस समय बीना-विद्यालय के तत्कालीन अध्यक्ष श्रीमान् सि० आनन्दकुमार जी इन्दौर में ही थे। जब उन्हें यह सब ज्ञात हुआ तो वे बोले—'पं० जी अब क्या होगा ?' मैंने कहा—'चिन्ता की कोई बात नहीं। कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता है।'

सन् १९६६ के सत्रारम्भ में मैं पुनः बीना आ गया। आते ही विद्यालय की छात्रसंख्या में वृद्धि हेतु मैंने अखबारों में विज्ञापन दिये। फलतः छात्र-संख्या फिर बढ़ने लगी। बाद में तो छात्र संख्या इतनी बढ़ने लगी कि छात्रों का और अधिक प्रवेश सुविधाओं के अभाव में बन्द करना पड़ा।

विद्यालय बहुत प्रगति कर चुका था। इसी बीच दिसम्बर १९७० में डिलिवरी के बाद मेरी धर्मपत्नी का स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया और मैं चिकित्सा हेतु उन्हें इन्दौर ले गया। बहुत प्रयत्न करने के उपरान्त भी मैं उसे बचा नहीं सका और मार्च १९७१ में म० य० अस्पताल में वह स्वर्गवासी हो गई और चार ही दिन बाद वह हमारा बच्चा भी, जिसने लगभग तीन माह ही अपनी सांसें ले पायीं थीं, सदा-सदा के लिए विदा हो गया।

इस घटनाचक्र से मैं प्राणरहित-सा हो गया; क्योंकि मैं इस आघात को सह नहीं सका था तथापि दुःख के साथ दिन काटता हुआ भी बीना-विद्यालय में मैं पूर्ववत् ही कार्य करता रहा। इसी बीच सन् १९७५ के सितम्बर माह में मेरी नियुक्ति स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी में प्राचार्य के पद पर हो जाने से मैं वहाँ चला गया।

इस तरह मैंने श्री ना० नं० दि० जैन सं० वि० बीना में सन् १९४७ से १९६२ तक १५ वर्ष तथा १९६६ से १९७५ तक ९ वर्ष कुल २४ वर्ष अपनी सेवाएं अर्पित कर चौबीसों घन्टों के अथक श्रम से इस विद्यालय को खूब पल्लिवित किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ब)

• मेरे समय की कतिपय प्रतिभाएं

मेरे कार्यकाल में वीना विद्यालय से निकले छात्र आज बड़े-बड़े पदों पर कार्यरत हैं। उन सबकी सूची बहुत बड़ी है। इनमें अनेक का पता अज्ञात है, अनेक स्मृति के बहिर्भूत हैं। अनेक अध्ययन-अध्यापनरत हैं तो कई अपने स्वतन्त्र व्यवसाय में संलग्न हैं। जिनका कुछ स्मरण है, वे प्रतिभाएं निम्नलिखित हैं—

१. श्रीचन्द धनगौल	—	जलगांव कालेज में प्राव्यापक
२. पद्मचन्द वीना	—	हा० से० स्कूल, देवरी में लेक्चरार
३. कुन्दन लाल—पिपरा	—	भिलाई प्रोजेक्ट में कार्यरत (विदेश वापिस)
४. डा० कोमलचन्द - वीना	—	का० हि० वि० वाराणसी—प्राध्यापक
५. लालचन्द किशलवाल	—	पता अज्ञात किन्तु लेक्चरार
६. शीलचन्द - लागौन	—	हायर सेकेण्ड्री स्कूल में लेक्चरार
७. भगवानदास - रौंड़ा	—	हायर सेकेण्ड्री स्कूल मुंगावली में लेक्चरार
८. शीलचन्द - गुरसोरा	—	हायर सेकेण्ड्री स्कूल दरियागंज दिल्ली—लेक्चरार
९. प्रो० सुपार्श्वकुमार - वीना	—	जैन डिग्री कालेज, बड़ौत में प्राव्यापक
१०. व्या० अभयकुमार - वीना	—	हायर सेकेण्ड्री स्कूल, वीना में लेक्चरार
११. व्या० लालचन्द - वालावेहट	—	जैन गुरुकुल खुरई में लेक्चरार
१२. महेन्द्रकुमार - ककड़ारी	—	सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेना में प्राचार्य
१३. ताराचन्द - हिरावल	—	संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर में अध्यापक
१४. महेन्द्रकुमार - वीना	—	हायर सेकेण्ड्री स्कूल में व्याख्याता
१५. धन्नालाल - पड़रिया	—	उज्जैन बैंक में अधिकारी
१६. जीवनलाल	—	होल्कर कालेज, इन्दौर में प्राध्यापक
१७. मिट्ठूलाल - वासौदा	—	गंजवासौदा में एडवोकेट
१८. कोमलचन्द - ललितपुर	—	भोपाल के सरकारी संस्थान में
१९. डालचन्द - वीना	—	फूड इन्सपेक्टर, वड़ा मलहरा (छतरपुर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२०. अमृतलाल - बीना — शिक्षा संचालनालय, भोपाल में सेवारत

२१. अमृतलाल - बिलौदा — अमृत मेडीकल स्टोर्स, बजरिया में

२२. उदयचन्द — उदयपुर कालेज में प्राध्यापक

२३. कैलाशचन्द्र - सिलावन — पता अज्ञात किन्तु इन्जीनियर

२४. जयकुमार - लागौन — मिर्जापुर (उ० प्र०) में इन्जीनियर

२५. भगवानदास - एरोरा — नमिसागर इन्टर कालेज सरधना में

२६. खेमचन्द - पड़रई — हायर सेकेण्ड्री स्कूल जीन (बैतूल) अध्यापक

२७. अजित कुमार - कुरवाई — हा० से० स्कूल कुरवाई में व्याख्याता

२८. कोमलचन्द - जरावली — कार्यालय महालेखाकार ग्वालियर में

२९. ताराचन्द - पीकलौन — मंडी बामोरा में—अध्यापक

३०. नरेन्द्रकुमार - बीना — हा० से० स्कूल विदिशा अध्यापक

३१. हेमचन्द - भौंती — इन्दौर में मेडिकल रिप्रिजेन्टेटिव

३२. भागचन्द - मल्हारगढ़ — जैन स्टोर्स, बजरिया बीना में

इस विद्यालय से निकले ऐसे अनेक छात्र आज अपनी तथा इस विद्यालय की गरिमा को बढ़ा रहे हैं। यदि इस विद्यालय में इनका प्राथमिक शिक्षण नहीं हुआ होता तो पता नहीं आज वे कहाँ किस स्थिति में होते? जिन्होंने इस संस्था की स्थापना की थी उन महामाननीय स्वर्गीय साव नाथूराम जी की पुनीत आत्मा स्वर्ग से इन सबकी झांकी देखकर कितनी आल्हादित नहीं होती होगी? उस पुण्य पुरुष को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम !

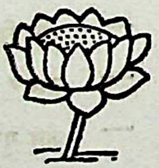

भगवद्-भक्ति

'प्रातः उठकर भगवद् भक्ति करो। चित्त में शान्ति आना ही भगवद्-भक्ति का फल है। यदि शान्ति का उदय न हुआ तब केवल पाठ मे कोई लाभ नहीं।'

— वर्णी-वाणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख)

अविस्मरणीय संस्मरण एवं व्यक्तित्व

(१) बीना—विद्यालय में प्रथम नियुक्ति के समय समाज में स्व० गटोलेलाल जी भायजी प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे मन्दिर में स्वाध्याय-शाला चलाते थे, प्रवचन सुनने - सुनाने में बड़ा रस लेते थे। उनका पुत्र सुमतचन्द्र इसी विद्यालय में पढ़ता था। वह चञ्चल था। एक दिन भायजी साव उसे लेकर मेरे पास आये और बोले—'पण्डित जी, यह (सुमतचन्द्र) कहता है कि लघु सिद्धान्त कौमुदी की कारिकायें हमारी समझ में नहीं आईं।' मैंने कहा—'यदि समझ में नहीं आईं तो पुनः समझाये देता हूँ।' और मैंने वे कारिकायें भायजी के सामने ही उसे पुनः समझा दीं। जिसे सुनकर भायजी साव ने सुमतचन्द्र को डांटते हुए कहा—'ये कारिकायें तो हमारी तक समझ में आ गईं जो संस्कृत बिल्कुल ही नहीं जानते।' फिर मुझसे बोले—'पंडित जी यह लड़का बड़ा नालायक है।' मैंने कहा—'नालायक नहीं कोमलमति है।' आगे चलकर यही बालक बनारस की परीक्षा में अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। आजकल यह अहमदाबाद में किसी कम्पनी में प्रतिष्ठित पद पर कार्य करता है जिसे कार-बंगले की सुविधायें प्राप्त हैं।

(२) उन दिनों जब धर्मशाला बन रही थी तब मजले कक्का श्री शाह अर्जुनलाल जी और पुजारी श्री गम्भीरचन्द्र जी निर्माण कार्य में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। चूना पोतने की चक्की विद्यालय के परिसर में लगी थी। किन्हीं छात्रों ने उस चक्की का एक पाट तोड़ा डाला। गम्भीरचन्द्र जी पुजारी तुरन्त विद्यालय पहुँचे और छात्रों से उसके बारे में पूछा कि 'पाट किसने तोड़ा?' लेकिन फटकारने पर भी किसी ने अपराध स्वीकार नहीं किया। तभी मैं भी वहाँ पहुँचा। वे मुझसे बोले—'देखो, ये आपके लड़के यहाँ कैसा ऊधम मचाते हैं; चक्की का पाट ही इन्होंने तोड़ डाला पूछने पर बताते भी नहीं हैं।' मैंने कहा—'आप क्यों कष्ट उठा रहे हैं? यह काम तो मेरा है, सो मैं ही पूछ ताछ किये लेता हूँ।' मैंने सभी छात्रों को पंक्तिबद्ध खड़ाकर आदेश दिया 'जिन छात्रों ने चक्की को तोड़ा है, वे पंक्ति से दो कदम आगे आ जावें। तुरन्त दो छात्र पंक्ति से दो-दो कदम आ गये। मैंने उनसे पूछा—'तुम लोगों ने चक्की का पाट क्यों तोड़ डाला? वे बोले—'हम यहाँ खेल रहे थे। चक्की को हटाया तो पाट टूट गया।' उनकी बात सुनकर उन्हें समझाया गया और चेतावनी देकर अपराध क्षमा कर दिया गया। पुजारी जी यह सब देख-सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'ये लड़के केवल आपको मानते हैं। मेरे पूछने पर तो इन्होंने कुछ भी नहीं बताया।' मैंने कहा—'इन पर अनुशासन करना मेंढकों को तौलने जैसा है।' मैंने बीना में मेंढकों को तौलने में सफलता पाई थी।

(३) एक समय जब माणिकचन्द्र दिग० जैन परीक्षालय बम्बई की परीक्षायें चल रही थीं जिसमें मिडिल स्कूल के एक अध्यापक भी परीक्षा दे रहे थे। मैं केन्द्राध्यक्ष था। सभी पञ्च महानुभाव भी विराजमान थे। परीक्षार्थी अध्यापक बार-बार नीचे देखकर उत्तरकापी लिख रहे थे। मैं अपने दायित्व से कभी विमुख नहीं होता। अतः व्यवस्था में चौकन्ना रहता था। मैंने उनके पास जाकर देखा कि वे नकल कर रहे हैं। मैं पुस्तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेना चाहता था और वे देना नहीं चाहते थे। अतः मैंने बलपूर्वक वह पुस्तक छीन ली। सभी पञ्च महानुभाव, जिनमें मिडिल स्कूल के एक वयोवृद्ध अध्यापक श्री लालजू प्रसाद जी भी थे, यह सब देखकर बहुत विस्मित हुए।

उसी दिन शाम को जब मैं घूमने जा रहा था, श्री लालजूप्रसादजी श्रीमान् सिं० आनन्दकुमार जी के चबूतरे पर बैठे अध्यक्ष महोदय को इसी घटना का विवरण सुनाते हुए कह रहे थे—'आपने बड़ा जोरदार अध्यापक ढूंढ़ा है जो व्यवस्था को स्वच्छ रखने में बड़ा सक्षम है।' यह सुनकर मुझे लगा कि मैं अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह ठीक तरह से कर रहा हूँ।'

अपनी प्रशंसा सुनकर मनुष्य समुद्र में भी कूदने को तैयार हो जाता है। सो मैं भी दूने उत्साह से कार्य करने लगा।

(४) उस समय जब अ० भा० विद्वत्परिषद् के मंत्री माननीय पं० वंशीधर जी व्यकरणाचार्य थे, मैं कार्यालय मन्त्री था। परिषद् का कार्यालय पंडितजी की दुकान में था। मैं वहाँ रोज जाकर कार्यालय का कार्य करता था। उसी समय की यह एक घटना है। उन दिनों देश में कपड़े की बहुत कमी थी। शायद राशन कार्ड पर कपड़ा मिलता था। माननीय पंडित जी की दुकान में उस दिन सागर से कपड़ा आया ही था, जिसका मिलान भी नहीं हो पाया था कि ३—४ पुलिस आफीसर मय अपने अनुचरों के दुकान पर आये। पंडित जी ने उन्हें उनके अनुरूप कुर्सी पर बैठा दिया। बैठते ही वे बोले—'हमें अमुक-अमुक कपड़ा इतना-इतना चाहिए, दे दो।' पंडित जी ने बड़ी शान्ति से कहा—'कपड़ा अभी-अभी आया है। आज इसका मिलान कर रहे हैं। आपको जो भी कपड़ा चाहिए है, हम कल दे देवेंगे। वे बोले—'कपड़ा आज ही अभी दो।' यह कैसे हो सकता है ? इसका मिलान करके कीमत वगैरह भी अभी निश्चित करना है।' पंडित जी ने कहा। तो वे आफीसर अपने अनुचर से बोले—'देखो सायन बोर्ड पर दुकान का क्या नाम अंकित है ?' पंडित जी ने सायन बोर्ड देखने के पूर्व ही कहा—'दुकान वंशीधर सनतकुमार के नाम पर है।' इसी बीच पं० जी के शाहजी (शाह मौंजीलाल जी) बोले—'लाला दे दो कपड़ा।' पंडित जी ने कहा—'कैसे दे दें, आ कपड़ों का मिलान तो हुआ ही नहीं है।' आफीसरों में एक ने, जो शायद सबसे बड़ा था, एक कागज पर लिख कि 'मैंने कपड़ा देने से इन्कार किया' और पंडित जी कहा —'इस पर हस्ताक्षर करिये।' पंडित जी ने उ कागज को पढ़ा और उसी के पीछे लिखा कि 'मैंने कपड़ देने से इन्कार नहीं किया है, मिलान कर कल से बि करूंगा।'—(द: वंशीधर)

जब यह उन आफीसर सा० ने पढ़ा तो उसे तत्का फाड़ फेंका और कहा—'अच्छा कल ले जावेंगे।' और स पुलिस आफीसर अपने घर चले गये। पंडित जी के विवे और दृढ़ता की यह घटना कभी विस्मृत नहीं होती।

(५) माणिकचन्द्र दिग० जैन परीक्षालय की परीक्षा का अन्तिम दिन था। उस समय के मन्त्री जी ब व्यवस्थाप्रिय थे। ठीक समय पर आकर प्रश्नपत्र खोल और वितरित कराते थे। जैसे ही प्रश्नपत्र वितरि किये एक छात्र ने पूछा—'अमुक प्रश्न के अमुक वाक्य क्या खण्डाकार (ऽ चिह्न) है ?' मैंने कहा—'सन्धि तोड़कर पढ़ो, समझ में आ जायगा।' छात्र व्युत्पन्न था अन्तिम वर्ष का अन्तिम पेपर था उसका। चुप हो गय और पेपर करने लगा। परन्तु मन्त्री जी बोले—'प्रश्न को बताना नहीं चाहिए।' मैंने कहा—प्रश्नपत्र छपने त्रुटि (मिसप्रिंट) हो गई है। खण्डाकार छपना चाहिए जो छपा नहीं है।' तो मन्त्री जी गम्भीर होकर बोले— 'आपने तो स्पष्ट ही कर दिया।' यद्यपि मन्त्री जी क अभिप्राय मेरी स्थिति को साफ रखने का था। वे मे श्रम को जानते थे; परन्तु उन्हें यह नहीं मालूम था पेपर मेरा ही निकाला हुआ है और उसमें खण्डाका अंकित था, जो छापने में छूट गया है, जिसे स्पष्ट कर हमने अनुचित नहीं किया है। मैं आरम्भ से ही छा की कुशाग्रबुद्धि से परिचित था और जानता था कि 'य छात्र किसी वाक्य के जानने का मुहताज नहीं है।' मैं सोचा कि मन्त्री जी महोदय को क्या मालूम कि य छात्र भविष्य में क्या बनेगा ?'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह जानने योग्य है कि वही छात्र आज इस विद्यालय की 'हीरक जयन्ती स्मारिका' का भार वहन कर रहा है। नाम है उसका—अभयकुमार व्याख्याता।

(६) मैं बीना विद्यालय में प्रधानाचार्य और सुपरिन्टेन्डेन्ट के दायित्वों को सम्भालता था। सुपरि० के कार्य में अधिकारियों और छात्रों की नाराजी सहनी पड़ती है। दोनों को राजी रखना सम्भव नहीं होता। परन्तु मुझे यह निर्वाह करना पड़ता था।

हमारा प्रान्त दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा धर्मप्राण समझा ही नहीं जाता है, वस्तुतः है। छात्रों के अभिभावक बड़े ही विश्वास के साथ अपने बालकों को विद्यालय में प्रविष्ट करा जाते थे। अतः उस समय छात्रों की स्थिति और विद्यालय की अनुशासन व्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेदारी मेरी ही रहती थी। छोटी-छोटी बातों को बड़े अधिकारियों तक ले जाना उचित नहीं होता अन्यथा अध्यक्ष एवं मन्त्री को, जो संस्था के ऑनरेरी अधिकारी होते हैं, विद्यालय एक प्रकार का सिर दर्द हो जाय—ऐसा सोचकर मैं चौबीसों घन्टे उत्तरदायी बना रहता था।

एक बार कार्यवश मैं ३ दिन अवकाश पर बाहर चला गया। फलतः इधर विद्यालय तथा छात्रावास—दोनों की व्यवस्था गड़बड़ा गई। तीन छात्र उस अवसर का लाभ उठाकर सिनेमा चले गये। विद्यालय में आते ही मुझे यह पता लग गया। अनुशासन में ढील न देकर मैंने उन छात्रों से एक-एक रुपया लेकर रसीद काट दी; परन्तु विचार के इस प्रवाह को भी न रोक सका कि 'ये छात्र बड़ी दयनीय स्थिति के हैं।' अतः मैंने तीन दिन के बाद इस चेतावनी के साथ कि 'भविष्य में ऐसे अपराध पुनः न दुहराये जांय' उनके तीन रुपये उन्हें वापिस कर दिये। चूंकि रसीद कट चुकी थी। अतः तीन रुपये मैंने ही संस्था में जमा करा दिये।

(७) एक बार बजरिया समाज के प्रमुख ने अपने साथियों के साथ आकर मन्त्री जी से पर्यूषणपर्व में शास्त्र प्रवचनार्थ मेरी मांग की। मन्त्री महोदय पं० बंशीधर जी व्याकरणाचार्य ने उनसे कहा—'भाई, उनसे पूंछकर ही हम आपको बतला सकेंगे।' शाम का वक्त था। मैं घूमने जा रहा था। पंडित जी ने बुलाकर मुझसे उक्त बात कही और मेरी इच्छा जाननी चाही। मैंने भी वहाँ जाने की अपनी स्वीकृति दे दी। तब मन्त्री जी ने बजरिया वालों से कहा—'पंडित जी को ले जाने और वापिस भेजने के लिए प्रतिदिन सवारी की व्यवस्था आपको करनी होगी। ऐसा नहीं सोचना कि पंडित जी तो घूमने रोज बजरिया आते ही हैं; सो प्रवचन को भी चले आयेंगे।' बजरिया वालों ने मन्त्री जी की बात सहर्ष स्वीकार कर ली।

तदनुसार बजरिया में दोनों वक्त सानन्द प्रवचन होता रहा। बजरिया-मन्दिर के निर्माण हेतु मेरी प्रेरणा से उस वर्ष लगभग तेरह सौ रुपयों का चन्दा हो गया। सब लोग खूब प्रसन्न हुए, केवल एक बात से उदास हो गये कि मैंने कुछ भी भेंट विदाई स्वीकार नहीं की।

माननीय पं० बंशीधर जी व्याकरणाचार्य का यह गुण मननयोग्य है कि वे विद्वान् का अनादर नहीं देख सकते। वाहन की व्यवस्था कराना इसका प्रमाण है। यह घटना सन् १९५५ की है।

(८) सन् १९४७ में जब मैं बीना आया तब संस्था के मन्त्री श्रीमान् शाह अमृतलाल जी थे। वे बहुत कर्तव्य-निष्ठ थे। हमारे तो वे मन्त्री के साथ-साथ परम सहायक भी थे। हमारी संस्थागत एवं व्यक्तिगत अनेक विपत्तियों के निवारण करने म वे सबसे अग्रणी थे। अपने सौजन्य, वात्सल्य और कर्तव्यपरायणता से उन्होंने हमारे सगे भाईयों, कुटुम्बियों, रिश्तेदारों एवं अन्य मित्रों को भी पीछे कर दिया था। ऐसे हैं बड़े भैया श्रीमान् शाह अमृतलालजी। उनके अगणित उपकारों को भूल जाना भारी कृतघ्नता होगी।

(९) इस वर्ष जिस विद्यालय की हीरक जयन्ती मनाई जा रही है, उसकी स्थापना स्व० साव नाथूराम जी ने की थी। इसकी उचित व्यवस्था हेतु वे इस विद्यालय को एक गांव और बहुत से मकानात भी दे गये थे। इस विद्यालय की सारी सम्पत्ति उनही की दी हुई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। वे विद्यालय को ऐसा दृढ़स्वरूप प्रदान कर गये कि कभी भी उसका कोई भी प्रचारक किसी के आगे चन्दा के लिऐ हाथ फैलाते नहीं देखा गया। न कोई इसका प्रचारक है और न कोई इसका प्रचार ही। इसकी सेवा का कोई डिंडोरा भी अखवारों में नहीं पीटा जाता है। केवल अपनी मूक सेवा के लिए यह विद्यालय निरन्तर कटिवद्ध और सन्नद्ध रहता है। इसी के संस्थापक महा-माननीय स्व० साव नायूराम जी थे।

स्व० साव नायूराम जी के उत्तराधिकारी स्वनाम-धन्य श्रीमान् सिंघई श्री नन्दनलाल जी न केवल वीना नगर के अपितु आसपास के अनेक गांवों के जमींदार रहे हैं। स्वतन्त्र भारत में यद्यपि अब मालगुजारी प्रथा का अन्त हो चुका है; तथापि अपने गांवों में वे आज भी मालगुजार की तरह मान्यता को प्राप्त हैं। माननीय सिंघई जी विशाल हृदय हैं। अपन कर्तव्य के प्रति वे सतत जागरूक रहते हैं। जैन गुरुकुल खुरई को आपने ६० एकड़ भूमि उपजाऊ भूमि दान में दी है; लेकिन इनके मुख से इस विषय की कभी चर्चा तक भी नहीं सुनी गई। वे अपने प्रभाव व यश का प्रचार पसन्द नहीं करते। इस संस्कृत विद्यालय की उन्नति की कामना वे सदैव किया करते हैं। उनमें स्वाभिमान को छोड़ अहंकार की गन्ध भी नहीं है। ऐसे हैं, श्रीमान् सिंघई श्री नन्दनलाल जी।

मैं उन्हीं के विशाल भवन के एक छोटे से हिस्से में रहता था। मेरी धर्मपत्नी की डिलेवरी का समय आसन्न था। मैं व्यवस्था के लिए चिन्तित था। २४ दिसम्वर सन् १९७० की शाम को मा० सिंघई जी की काकी द्वारा दद्दा जी (मान० सिं० श्री नन्दनलाल जी) को खवर दी गई कि 'पण्डितानी जी की डिलेवरी का समय आसन्न है, उन्हें हास्पिटल ले जाना चाहिए।' उस समय ७५ वर्षीय सिंघई जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था, डाक्टरों ने उन्हें कार चलाना निषिद्ध कर दिया था, फिर भी उन्होंने अपनी कार को गैरिज से निकाला और काकी जी को मेरी पत्नी के साथ कार में बैठाकर स्वयं कार चलाते हुए हास्पिटल ले गये। काकाजी रातभर वहीं रहीं। २५ दिस० के प्रातः शिशु का जन्म हुआ।

ऐसी उदारता के धनी श्रीमान् सिं० श्री नन्दनलाल जी हैं, जो समाज की शोभा के मूर्तिमान् प्रतीक हैं। किसी मंगलावसर पर वे न दिखें तो वह अवसर श्रीहीन-सा दीखता है।

इन्होंने छात्रों की सहायतार्थ अपनी स्व० धर्मपत्नी श्रीमती सिंघेन रुक्मणीबाई के नाम पर एक छात्रवृत्ति फंड भी खोल रखा है, जिससे प्रतिवर्ष विना किसी भेद-भाव के छात्रों को सहायता पहुँचाई जाती है। इनके सुपुत्र श्री सिंघई राजकुमार जी (भैया जी) भी इनकी ही प्रतिमूर्ति हैं।

माननीय सिं० श्रीनन्दन लाल जी के सहोदर श्रीमान् बुखारिया नन्हेंलाल जी हैं जो चलते-फिरते ग्रन्थागार हैं। ऐसा कोई विषय नहीं, जिसे आप सविस्तर नहीं जानते। शास्त्रों की बारीक गुत्थियों का विश्लेषण वे वड़ी सूक्ष्मता से करते हैं। वे दया की मूर्ति हैं। कोई इनके पास अपनी व्यथा लेकर आवे तो तत्काल उसका निराकरण करने के लिए आतुर हो उठते हैं। स्वतन्त्रता-आन्दोलन में आपने जेल यात्रा भी की है। स्वतन्त्रता-सैनानियों को कुछ जमीन तथा २५०) मासिक आजीवन पेन्शन देने का जो निर्णय भारत-सरकार ने किया है उसके तहत कई वड़े-वड़े सरकारी आफीसर्स इनके पास आये और विनय एवं आदर के साथ इनसे आग्रह कर चुके हैं कि वे भारत—सरकार की उक्त योजना का लाभ प्राप्त करें।

लेकिन मान० श्री बुखारिया जी का कहना है कि 'जव हमने गांधी जी के आह्वान पर देश की स्वतन्त्रता के लिए काम किया और जैल गये तव हमारा ऐसा कोई विचार नहीं था कि देश के स्वतन्त्र होने के वाद इसका लाभ हम सरकार से लेवेंगे। इसलिए इसे आय का साधन वनाना उचित नहीं है। दूसरे, हमारे पास कोई कमी भी नहीं है कि जिससे हम इसका लाभ उठाने का विचार करें।' ये है उनकी देश के प्रति निःस्वार्थ सेवा भावना और उच्च विचार।

प्रकृति में सरलता, अत्यन्त सहनशीलता, उच्च विचारों की अतुल्यता, अहंकार का अत्यन्ताभाव, ...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूषा में सादगी-इत्यादि गुणों से विभूषित यदि कोई व्यक्ति वीना में चलता-फिरता दिखे तो समझिये कि यह शान्तिमूर्ति और सबसे भले बुखारिया नन्हेंलाल जी हैं। जो सदा खादी पहिनते हैं और गांधीवादी विचारधार के कांग्रेस के यथार्थ नेता हैं।

—भूतपूर्व प्राचार्य;स्याद्वाद महा वि०, काशी
सन्मति जैन निकेतन, वाराणसी—५

'सभ्यता'

'सभ्यता और असभ्यता विद्या से नहीं जानी जाती। चाहे संस्कृत भाषा का विद्वान् हो, चाहे हिन्दी, अंग्रेजी या और किसी भाषा का विद्वान् हो, जो सदाचारी है, वह सभ्य है और जो असदाचारी है, वह असभ्य है। प्रत्युत विना पढ़े-लिखे भी जो सदाचारी हैं, वे सभ्य है और बुद्धिमान् भी यदि सदाचारी नहीं है तो असभ्य है।'

—वर्णी-वाणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छात्र जीवन की कतिपय स्मृतियाँ

● दीपचन्द जैन, निवारी

अति हर्ष का विषय है कि जिस विद्या मन्दिर में आज से लगभग ३० वर्ष पूर्व प्रवेश लेकर मैंने ज्ञाना-राधना की थी, जहाँ धार्मिक, नैतिक एवं व्यावहारिक शिक्षण के साथ-साथ लौकिक शिक्षण लेकर मुझे अपने जीवन को संस्कारित और परिमार्जित करने का परम सौभाग्य मिला था तथा जिसमें अनवरत ज्ञान साधना द्वारा अपने जीवन को परिष्कृत एवं सुसंस्कारिता कर अनेकानेक छात्रों ने अपने जीवन को उन्नत तथा श्रेष्ठ बनाया है, उसी विद्या मन्दिर के ७५ वें वर्ष में प्रवेश करने पर यहाँ के उत्साही संचालक इसकी हीरक जयन्ती का अपूर्व आयोजन करने जा रहे हैं तथा उसकी स्मृति स्वरूप एक भव्य स्मारिका भी प्रकाशित कर रहे हैं। आज मेरी दृष्टि में चित्रपट की नाईं मेरा वह छात्र जीवन झूल रहा है। कतिपय स्मृतियाँ इस प्रकार हैं—

सन् १९५४ की वात है। मैं इस विद्यालय का सबसे छोटा छात्र था। उम्र में, कक्षा में और ऊंचाई में भी। श्रद्धेय पूज्य पं० मोतीलाल जी साहित्याचार्य के कुशल लेकिन सख्त प्रवन्धकत्व में विद्यालयीन दिनचर्या का पालन छात्रों को अनिवार्यतः करना पड़ता था। मैं पढ़ने और सोने में तेज था। मुझे प्रायः रोज प्रातः ४ वजे उठने पर नींद आ जाती थी। अतः मेरे सोने की शिका-यत तत्कालीन गृहप्रवन्धक पं० मोतीलाल जी से की जाती थी। वही मेरे अध्यापक भी थे। तीन दिन लगातार मेरी शिकायत हुई और तीनों दिन मुझे इसकी सजा मिली। चौथे दिन जव फिर शिकायत हुई तो पंडित जी ने शिकायत कर्ता को ही डांटते हुए कहा — 'अब दीपचन्द की शिकायत मुझसे नहीं करना। यदि करोगे तो तुम सजा पाओगे। वह सोता है, पर रोज अपना सबक सुना देता है। तुम जागकर पढ़ते हुए भी अपना सवक नहीं सुना पाते हो। लगता है, तुम्हें दूसरों के दोष ही देखने की आदत बन गई है, अव अच्छाईयाँ देखना सीखो।'

इससे मुझे यह बोध हुआ कि मनुष्य को सदैव अपने लक्ष्य की सिद्धि हेतु सचेष्ट रहना चाहिये। यदि उसमें कहीं कोई त्रुटि होती है तो ईश्वर भी उसे क्षमा कर देता है।

मेरे छात्र जीवन की दूसरी अविस्मरणीय घटना है जब मैं प्रथमा का छात्र था। वार्षिक परीक्षा के कुछ समय पूर्व हम सभी प्रथमा के छात्रों से कहा गया कि 'जांच परीक्षा में जो छात्र अनुत्तीर्ण होंगे उन्हें वार्षिक परीक्षा हेतु सागर नहीं भेजा जायेगा।' दुर्भाग्य से हम दो छात्र दो विषयों में अनुत्तीर्ण हो गये। हम लोगों ने गुरुजनों से काफी अनुनय विनय की। उन्होंने सख्त नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा—'कमजोर छात्र परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर इस विद्यालय की छवि को धूमिल करेंगे। यदि तुम परीक्षा देने जाना ही चाहते हो तो तीन दिन वाद पुनः परीक्षा दो और उत्तीर्ण होकर दिखलाओ।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बस, फिर क्या था। मैंने न दिन देखा और न रात। लग गया पढ़ाई करने। खूब याद किया। परीक्षा दी और द्वितीय श्रेणी में जांच परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त कर ली। मुझे जाने की अनुमति मिल गई। वहाँ के प्रथमा के छात्रों से मिलकर मुझे पता चला कि हमारे गुरुजन हम छात्रों को पढ़ाई में क्यों कमजोर नहीं रहने देते थे? अच्छी तैयारी के साथ जाने से एक तो सागर में किसी प्रकार की कठिनाई हम लोगों को नहीं हुई। दूसरे, अनेक विषयों में सागर के छात्रों की मदद करने से उनसे मेल-मिलाप और सौहार्द भाव भी हमें अच्छा मिला। वार्षिक परीक्षा में भी हम लोगों को प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी में अच्छे अंकों में उत्तीर्णता प्राप्त हुई।

प्रथम श्रेणी में प्रथमा पास कर जब मैं उच्च-शिक्षा हेतु संस्कृत महाविद्यालय, इन्दौर में प्रवेश लेने पहुँचा तो सबसे पहले वहाँ पूज्य पं० बंशीधर जी न्यायालंकार से भेंट हुई। उनका पहला प्रश्न था—कहाँ से आये? मैंने कहा—बीना विद्यालय से। यह सुनते ही उनके चेहरे पर मन्द-मन्द हास्य के साथ प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। वे बोले—'तुम्हें अवश्य प्रवेश मिलेगा। बीना के छात्र होशियार होते हैं।' मुझे उनके श्रीमुख से उक्त सुनकर अन्तरंग में बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे बीना विद्यालय में पढ़ाई के प्रति बरती जाने वाली गुरुजनों की सख्ती का रहस्य और अच्छी तरह स्पष्ट हो गया।

निःसन्देह श्री ना० नं० दिग० जैन सं० विद्यालय बीना का अतीत बड़ा गौरवमय रहा है। इस विद्यालय ने अनेक नररत्नों को जन्म दिया है जिन्होंने इस विद्यालय कीर्ति को चतुर्दिक् में विकीर्ण कर इसके गौरव को बढ़ाया है। स्व० पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य इसी विद्यालय के व्युत्पन्न छात्र थे। श्री प्रकाश हितैषी जी शास्त्री, सम्पादक—सन्मति—सन्देश इसी विद्यालय ने अभावग्रस्त अनेक बालकों का जीवन-निर्माण किया है।

मुझे भी जीवन-यापन हेतु जो सुसंस्कार और ठोस आधार इस विद्यामन्दिर में मिले, जो ज्ञान का प्रकाश मेरे जीवन में हुआ, उस सबके लिए मैं इस विद्यालय का तथा अपने पूज्य गुरुजनों का बड़ा कृतज्ञ व ऋणी हूँ और आजीवन रहूँगा।

हीरक जयन्ती के पावन प्रसंग पर इस विद्या-मन्दिर के उज्ज्वल भविष्य एवं दीर्घजीवन की मंगल-कामना करता हूँ तथा सभी आयोजनों की सफल सम्पन्नता के लिए भी मैं हृदय से शुभकामनाएँ अर्पित करता हूँ।

—दीपचन्द जैन, निवारी
(भूतपूर्व छात्र)

'सदाचार के बिना सुख पाने का यत्न करना आकाश के पुष्पावचयन के सदृश है।'

—वर्णी-वाणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीना की संस्कृत शाला है-
जिनवाणी की वीणा !!

○ फूलचन्द पुष्पेन्दु शास्त्री

सन् १९४७ ई० में श्री नाभिनन्दन दि० जैन पाठशाला बीना में न जाने कैसे व्यवस्थापक पद पर मेरी नियुक्ति हो गई। कम से कम वेतन लेने के कारण ? अपने भोलेभाले व्यक्तित्व के कारण ? श्रद्धेय सिं० श्री नन्दनलाल जी तथा श्री नन्हेंलाल जी बुखारिया की अहैतुकी कृपा के कारण ?.........कुछ भी स्मरण नहीं। इतना स्मरण अवश्य है कि मेरी नियुक्ति की बाट जोहते पं० दयाचन्द जी साहित्याचार्य ने तुरन्त ही अपने व्यवस्थापकत्व के काँटों का ताज मेरे सिर पर पहिनाया और आप शीघ्र ही वहाँ से सेवा निवृत्त हो सागर विद्यालय चले आए। प्रधानाध्यापक एवं धर्माध्यापक के रूप में विराजमान सोम्यमूर्त्ति पं० धर्मदास जी शास्त्री की छत्रच्छाया में रहकर इस नए रंगरूट ने व्यवस्थापन के नाम पर जो अटपटे कार्य किये उसकी सूची तो बहुत लंबी है परन्तु उनमें से एक प्रेरणा इस विद्यालय ने ऐसी दी कि जिसने मुझे जैन वाङ्मय का कट्टर भक्त और साहित्यसेवी बना दिया। यही नहीं, मुझे जीवन भर के लिये एक ऐसे पुल पर लाकर खड़ा कर दिया जो कि आज युगानुरूप "संस्कृत विद्यालयों और अंग्रेजी स्कूलों के बीच में "गुरुकुल" के नाम से सर्व विश्रुत है।

मेरी अवस्था उस समय लगभग २० वर्ष की थी। संस्कृत विद्यालय, छात्रावास, धर्म शिक्षा, विद्वद् संपर्क आदि से मेरा दूर का भी नाता नहीं था क्योंकि मैं तो सीधा हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर पाश्चात्य सभ्यता का चश्मा चढ़ाए हुए यहाँ आ धमका था। व्यवस्थापक और अध्यापक तो अवश्य बन गया था मैं संस्कृत विद्यालय का परन्तु सच पूछा जावे तो मुझे इ[illegible] विद्यालयों के छात्र जीवन का भी अनुभव नहीं था। भोजनशाला की व्यवस्था, छात्रों की अनुशासनिक दिन[illegible] चर्या और संलग्न मिडिल स्कूल में अध्यापन बस इतना ही मेरा उत्तरदायित्व था।

उसी वर्ष पर्यूषण पर्व आए। पूजन पाठ, व्रत उपवास, शास्त्रश्रवण मनन और संध्या-सामायिक [illegible] छात्रावासीय चर्या ने अध्ययन-अध्यापन के कार्य १० दि[illegible] के लिये गौण कर दिये और मेरे जीवन को मोड़ दे[illegible] के लिये चिंतन के भरपूर क्षण दिये। जिन छात्रों का अनुशासन गुरु बनकर यहाँ आया था वे ही शिष्य [illegible] उच्छृंखल जीवन के सदाचार गुरु से प्रतीत हुए। छा[illegible] पदमकुमार एवं पंचमलाल उमरिया तथा कपूरचन्द बामोरा ये तीन छात्र मुझे बड़े प्रिय थे। तीनों ही पू[illegible] मध्यमा के अन्त्य परीक्षार्थी थे। उन्होंने मुझे भक्तामर सहस्रनाम और रत्नकरंड श्रावकाचार इसलिये मौखि[illegible] याद करा दिये कि उनके पाठों को प्रतिदिन सुनना मेरी ड्यूटी में शामिल था। अतः उनके साथ मैं भी [illegible]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परीक्षाओं में बैठकर उत्तीर्ण हुआ। भक्तामर मुझे इतना प्रिय लगा कि ग्रीष्म ऋतु की छुट्टियों में मैंने उसका ललित पद्यानुवाद भी कर लिया। संस्कृत के प्रति रुचि पैत्रिक वरदान था और काव्य की प्रतिभा मुझमें जन्म-जात ही थी। मेरे इस पद्यानुवाद पर मुग्ध होकर पं० कमलकुमार शास्त्री ने इसे तभी प्रकाशित करवा दिया था जब मेरी अवस्था केवल २० वर्ष ही थी।

हाँ! तो पर्युषण पर्व में पं फूलचन्द जी सिद्धान्ताचार्य, पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य तथा पं० धर्मदास जी के शास्त्र प्रवचन क्रमशः अन्तराल से हो रहे थे। सुगन्ध दशमी के दिन नवयुवक आयोजकों को न जाने क्या सूझा कि उन्होंने मेरे लाख मना करने पर भी मुझे शास्त्र की गद्दी पर बैठने के लिये मजबूर कर दिया। कदाचित् अपमानित करने की भावना हो। नहीं, ऐसा नहीं था; संस्कारवश ही मैं ऐसा सोच रहा था। गद्दी पर बैठते ही मेरे नीचे की धरती खिसकने लगी, माथे पर पसीना आ गया, बोल ही न फूटें। रात्रि का प्रवचन था; कथा कहानी में ही वह समेटा जा सकता था परन्तु मुझे तो मंगलाचरण तक नहीं और रहा था। पाँच दस मिनट तक तो मैं नीचा मुँह किये बैठा भर रहा। मेरे समने गुरु तुल्य तीनों ही विद्वान् श्रोता बनकर बैठे हुए थे। तभी पं० बाबूलाल जी टोपी वालों ने न जाने कहाँ से भक्तामर की वह मुद्रित प्रति गद्दी पर रख दी जिसमें मेरा पद्यानुवाद भी छपा था। बस फिर क्या था? मेरी चीज मुझे मिल गई और फिर मैंने उसी के प्रथम श्लोक को मंगलाचरण बनाकर धारावाह २० श्लोकों की विशद व्याख्या अपने अनुवाद के आधार पर कर दी तथा १॥ घंटा कैसे व्यतीत हो गया? कुछ भी पता नहीं पड़ा। मुझे अच्छी तरह याद है कि जितनी मंत्रमुग्धता और सन्नाटा मेरी उस शास्त्र सभा में था उतना गोम्मटसार के तात्विक प्रवचनों में मैंने नहीं देखा था। समयसार जी का तो उस समय इतना प्रचलन ही नहीं था। भक्तामर सर्व साधारण श्रद्धालुओं के लिये एक ऐसा जाना माना काव्य है कि उसका अर्थ सभी सुनना चाहते थे क्योंकि ज्ञात से अज्ञात की ओर वह हमें ले जाता है।

क्षमावणी के दिन आदरणीय सिं० श्री नन्दनलालजी के यहाँ स्थानीय विद्वानों के साथ मुझे भी घर पर निमंत्रित किया गया। और सत्कार स्वरूप एक श्रीफल, शाल तथा २१ रु० मुझे भी भेंट में दिये गए। परन्तु मेरा यह सत्कार मिडिल विभाग में कार्यरत मेरे सहयोगी शिक्षकों को अखर गया और तभी से मैं उनकी ईर्ष्या का लक्ष्य बिंदु बन गया। फलस्वरूप उन्होंने मेरी जड़ें काटना शुरू कर दीं। रसोइये को भड़काया गया, रजिस्टर गायब किये गये, छात्रावासियों का अपहरण किया गया, और तत्कालीन विद्यालय मंत्री श्री गुलझारी लाल जी को मेरे विरुद्ध खड़ा किया गया। वह कहानी बहुत लम्बी है। सार इतना ही है कि मुझे दो सत्रों के बाद ही स्तीफा देकर खुरई वापिस आना पड़ा। तभी यहाँ पर कुम्भोज बाहुबलि स्थित खुरई गुरुकुल के तत्कालीन अधिष्ठाता पू० क्षु० (संप्रति आचार्य) समंतभद्र जी महाराज का यहाँ चातुर्मास संपन्न हो रहा था। महाराज श्री लौकिक शिक्षा के समानांतर चलने वाली धार्मिक शिक्षा के तथा गुरुकुल प्रणाली के कट्टर हिमायती हैं। जब सिं० श्री नंदनलाल जी द्वारा उन्हें मेरे विषय में अवगत कराया गया कि मैं संस्कृत, अंग्रेजी और धर्म विषय पर स्तरानुसार समान अधिकार रखता हूँ तो शीघ्र ही उन्होंने मेरे पिता जी को वचन बद्ध कर लिया कि मैं आजीवन इस संस्था को समर्पित हो जाऊँ। वह दिन है कि आज भले ही सारी दुनियाँ बदल गई हो; मैं जहाँ का तहाँ हूँ। संस्कृत विद्वानों के प्रति मेरा वही श्रद्धा भाव है जैसा कि पौराणिक युग में रहा है। आज धर्म तत्व की जितनी भी पूँजी मेरे पल्ले में है वह सब उसी बीना के संस्कृत विद्यालय का प्रदेय है जो कि भक्तामर और रत्नकरंड श्रावकाचार के रूप में मेरे अधीनस्थ छात्र ने, द्रव्यसंग्रह के रूप में पं० धर्मदास शास्त्री ने, मोक्ष शास्त्र व सर्वार्थ सिद्धि के रूप में निजी स्वाध्याय ने विद्यालय का सुप्रि० बनाकर मुझे दिया है। वही बीजांकुर अब पनपकर जैनदर्शन शास्त्री की परीक्षोत्तीर्णता का कल्पवृक्ष बन गया है। यह बात दूसरी है कि मेरे इस संक्षिप्त धर्मज्ञान के वृक्ष को वीतराग विज्ञान शिक्षण शिविरों से अमृत सिंचन मिला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीना के संस्कृत विद्यालय की मधुर वीणा के स्वर ही आज मेरे धार्मिक जीवन में निरन्तर गूँज रहे हैं। उन्हें मरणपर्यंत मैं भूल नहीं सकता। लेखन की सशक्त प्रतिभा भी मुझे इसी विद्यालयीन सरस्वती की से प्राप्त हुई है।

दानी

पन्ना नरेश अच्छे दानी थे। एक बार उनकी माता ने उनसे पूँछा—'बेटा ! यदि ये हीरों की खदान वाला पहाड़ हीरों का ढेर बन जावे तो तू इसे कितने दिनों में दान कर देगा ?' पन्ना-नरेश ने उत्तर दिया—'माँ, लेने वाला चाहे जितनी बार में ले जावे, मैं तो एक ही जबान में दान कर दूँगा।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहयोगिओं की याद आती है

● श्री पं० फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, वाराणसी

मध्यप्रदेश में सागर मण्डल के अन्तर्गत वीना एक कस्वा है। अब यह एक नगर का आकार ग्रहण करता जा रहा है। इसका पुराना नाम 'इटाए' है। दोनों नामों को मिलाकर इसे 'वीना-इटावा' भी कहते हैं। इस कस्वे के थोड़ी दूर दक्षिण में 'बीना' नाम की एक नदी बहती है। इसलिए रेलवे स्टेशन का नाम बीना पड़ने से कस्वे को भी वीना कहा जाने लगा है।

यहाँ स्थायीरूप से वसने वाले जैनियों के लगभग २००-२५० घर होंगे। इटावा में एक शिखरवन्द जिन-मन्दिर है। यह मन्दिर विशाल और रमणीक है। इसी मन्दिर के अहाते में श्री नाभिनन्दन दिग० जैन पाठशाला है। उसकी स्थापना में स्वर्गीय सिंघई नाथूराम जी का विशेष योगदान रहा है। यदि यह कहा जाय कि प्रारम्भ में उन्हीं के उदारता पूर्वक दिये गये दान से इसकी स्थापना हुई थी तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसके वाद जिन महानुभावों ने इसमें उदारता पूर्वक सहयोग किया है उनमें स्व० सिंघई परमानन्द जी प्रमुख हैं। इन दोनों महानुभावों का अपने-अपने काल में पूरे समाज पर अक्षुण्ण प्रभाव रहा है।

मैं स्व० सिंघई नाथूराम जी का साक्षात्कार तो नहीं कर सका लेकिन अनेक महानुभावों से उनकी अक्षुण्ण कीर्ति सुनने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त हुआ है। वे बड़े बुद्धिमान थे। नगर के सभी छोटे-बड़े भाई-वहिन उन्हें 'वव्वा जी' कहकर पुकारते थे। वर्तमान में उनके उत्तराधिकारी श्री सिंघई श्री नन्दनलाल जी हैं। वातावरण की अनुकूलता होने पर उनसे भी उनकी यह संस्था विशेष लाभान्वित हो सकती है; क्योंकि जव उनके उदार सहयोग से खुरई गुरुकुल की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है ऐसी अवस्था में उन्हीं के पूर्वज के उदारतापूकर्व सहयोग से स्थापित इस संस्था को सहयोग मिलना कठिन नहीं दिखाई देता।

मैं सन् १९२८ में पाठशाला का प्रधान अध्यापक वनकर गया था और सन् १९३२ तक वहाँ रहा। मेरी वहाँ की पाठशाला में कैसे नियुक्ति हुई इसके मूल में स्व० सिंघई परमानन्द जी का ही विशेष हाथ है। जव तक वे जीवित रहे, पाठशाला और मन्दिर संस्था का संचालन उन्हीं की सलाह से ही होता था। समाज को एक सूत्र में वांधे रखने में वे सिद्धहस्त थे। उनके जीवन-काल तक जो भी व्रती त्यागी व पण्डित जन नगर में आते रहे उनके आहार आदि की पूरी व्यवस्था प्रायः उनके यहाँ ही होती थी। किसी को मालूम न पड़े — इस विधि से उनका अन्य प्रकार से सत्कार करना भी वे अपना धर्म समझते थे। वे व्यवहार कुशल बहुत थे। सायंकाल उनके निवास स्थान के सामने अथाई लगी रहती थी। वर्तमान में श्री सिंघई आनन्दकुमार जी उनके उत्तराधिकारी हैं। स्व० सिंघई जी के पद चिन्हों पर चलना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। उनके जीवनकाल में जिसके साथ स्व० सिंघई जी का जैसा सम्वन्ध रहा उसका भले प्रकार वे निर्वाह करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरे अध्यापन काल में लगभग दो या तीन वर्ष श्री पं० गोपाल जी शास्त्री मेरे सहयोगी तो थे ही साथ ही वे अध्यापन कार्य में बड़े ही निपुण थे। उस समय जो भी छात्र अध्ययन करते रहे उनमें से कुछ प्रमुख छात्रों के नाम हैं—श्री पं० श्यामलाल जी न्यायतीर्थ आदि ललितपुर, स्व० श्री पं मनोहरलाल जी काव्यतीर्थ बीना, श्री पं० सुरेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ बीना, श्री पं गुलझारी लाल जी डिब्रूगढ़—आसाम, श्री पं० कुन्दनलाल जी न्यायतीर्थ इन्दौर एवं श्री पं० जीवन्धकुमार जी शास्त्री बीना।

जैसा कि मैंने संकेत किया है—श्री पं० मनोहरलाल जी का स्वर्गवास हो गया है। वे बुद्धिमान और व्युत्पन्न विद्वान् थे। मेरे अध्यापन काल के अन्तिम समय में जब सहाध्यापक नहीं रहा तब समय-समय पर उसकी पूर्ति में मुझे इनका पूरा सहयोग मिलता रहा, जिससे सह-अध्यापक का अभाव मुझे कभी नहीं खटका।

उस काल में मंत्रीपद का कार्य श्री बाबू मूलचन्द जी सम्भालते थे। अपने इस कार्य में वे जितने कुशल थे उतने ही वे रौबदार भी थे। उनमें मिलनसार का गुण कम था। जीवन के अन्त में उन्हें ऐसे खराब दिनों का सामना करना पड़ा जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। 'संकट के काल में भी अपने ही कार्यकर्ता या जनसेवी की सहायता नहीं करनी चाहिए'—इसे इस समाज की विशेषता ही समझनी चाहिए। कर्मभूमि में भी वाह्य अनुकूलता के साथ जो पुण्य-पाप को जोड़ा गया उसी का यह नतीजा (परिणाम) है। समाज अपने दुर्बल साधर्मी भाइयों के प्रति भी उत्तरोत्तर न केवल असहिष्णु होती जा रही है. अपितु इसे पाप का फल मानकर सन्तोप की सांस लेना भी वह नहीं भूलती। इस काल में किसी भी दृष्टि से विचार-भेद ने जो विप घोला है—उसकी कथा करना ही व्यर्थ है।

इस संस्था के संस्थापकों ने प्रारम्भ में ही ऐसी व्यवस्था कर दी थी जिससे इसके कार्यकर्ताओं को कभी भी इसके संचालन के लिए दान के नाम पर समाज के सामने हाथ नहीं पसारना पड़ा। फिर भी उस समय पाठशाला और श्री जिनमन्दिर के खर्च आदि की सम्मिलित व्यवस्था न होने से मेरे अध्यापन काल में एक समय ऐसा अवश्य आया था जब अवकाश के बाद सह-अध्यापक के आ जाने पर भी प्रवन्धकारिणी ने संस्था की आर्थिक आमदनी कम होने के कारण उनको संस्था से स्थायी अवकाश लेने के लिए बाध्य कर दिया था। गर्मी के अवकाश के बाद प्रवन्धकारिणी का यह निर्णय अदूरदर्शितापूर्ण था। इसलिए किसी प्रकार मैंने पुनः प्रवन्धकारिणी की बैठक आमन्त्रित कराकर इस आश्वासन पर कि 'एक अध्यापक के वेतन का प्रवन्ध मैं कर दूंगा,' उक्त निर्णय को बदलवाने में सफलता पूर्ण करली थी। इस प्रसंग में मुझे यह संकेत करते हुए प्रसन्नता होती है कि स्व० सवाई सिंघई श्री गनपतलाल जी गुरहा की सामयिक समझदारी के कारण खुरई के कतिपय प्रतिष्ठित धर्मबन्धुओं ने एक घण्टे के भीतर ही इस समस्या को सुलझाकर मुझे चिन्तामुक्त कर दिया था।

संस्था के आज तक के जीवन में इसे ही एक अपवाद कहा जा सकता है। कालान्तर में मेरे ही विशेष प्रयत्न करने पर ऐसी व्यवस्था कर दी गई जिससे इस पाठशाला को मन्दिर संस्था का सहयोग मिलने लगा और फिर मेरे ख्याल से आज तक के जीवन में कभी भी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने का प्रसंग उपस्थित नहीं हुआ।

यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सन् १९३... में मेरे बीना संस्था से मुक्त हो जाने पर भी बीना समाज में मेरा स्थान सदा अक्षुण्ण बना रहा और इस स्थिति का लाभ उठाकर कालान्तर में प्रवन्धकारिणी में ... परिवर्तन कराया गया था वह उत्तरकाल में विशेष सफल तो नहीं हो सका, इसके विपरीत अपने एक ऐसा वातावरण छोड़ गया जिससे बीना जैन समाज की वह एकता पुनः देखने को मिलेगी—इसकी आशा बहुत कम है। फिर भी मैं आशावादी हूँ और कभी न कभी पूरे दिगम्बर समाज को एक सूत्र में अवश्य ही बँधना होगा—इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

जब मैं वहाँ था, तब वहाँ एक सुदृढ़ युवामण्डल था। वह एक वाचनालय भी चलाता था। उसका दृष्टिकोण ...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदात्त तथा विशाल था। यदि यह कहा जाय कि इस कारण मुझे सब प्रकार से वहाँ अपना स्थान बनाने में सहायता मिली तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

मैं तो प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत रहा हूँ। इस संस्था का राष्ट्रीय जीवन भी सराहनीय था। इसमें पूरे समाज और संस्था के कार्यकर्ताओं की भी पूरी अनुकूलता मिली हुई थी। स्थानीय कांग्रेस के जो जुलूस निकलते थे उनमें इस संस्था के छात्र ही कांग्रेस का झंडा लेकर सबसे आगे चलते थे। प्रसंग से १—२ विशिष्ट व्यक्तियों का उल्लेख कर देना भी मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। प्रथम पंक्ति में पं० धर्मदास जी हैं। वे इस समय हमारे बीच नहीं हैं। इनकी शिक्षा-दीक्षा इन्दोर विद्यालय में हुई थी। वे प्रधान अध्यापक होकर वहाँ आये थे और अध्यापन कार्य से निवृत्त होने पर यहाँ के ही निवासी हो गये थे। आज भी इनका परिवार यहाँ ही निवास करता है और अच्छी स्थिति में है।

पं० धर्मदास जी वड़े गम्भीर और सहनशील व्यक्ति थे। एक वार आर्थिक स्थिति अनुकूल न रहने पर ये पुनः प्रधानाध्यापक होकर अध्यापन कार्य करने लगे थे। किसी उचित-अनुचित का विचार किये विना उस काल की प्रवन्धकारिणी ने इनके साथ जो भी व्यवहार किया था उसे जानते हुए भी वे गम्भीर बने रहे। इसी से उनकी विशेषता को समझा जा सकता है। 'उनकी मान रक्षा बनी रहे'—इसके लिए मेरे बीना आने पर मुझे जो प्रयत्न करना पड़ा और समाज का उस कार्य में जैसा सहयोग मिला उसका मोटे तौर से विवरण संस्था की प्रवन्धकारिणी के प्रस्ताव—रजिस्टर में कभी भी देखा जा सकता है।

दूसरे प्रमुख व्यक्ति श्री नन्हेलाल जी बुखारिया हैं। राष्ट्रीय धारा में ये एकरस तो रहे ही हैं। इनके जीवन को एक विचारक का जीवन कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इस कारण ये सामाजिक जीवन में जितने असफल हैं व्यक्तिगत जीवन में उतने ही सफल हैं। समय-समय पर ये उन व्यक्तियों की चुपचाप सहायता भी करते रहते हैं जिसकी उनको वे आवश्यकता समझते हैं। इस कार्य में उनका पूरा परिवार उनके साथ है। इसकी हमें प्रसन्नता है। यह वस्तुस्थित है. मात्र इसलिए मैंने यहाँ पर इसका संकेत किया है।

तीसरे व्यक्ति सिंघई भैयालाल जी हैं! स्थानीय अनेक कार्यों में ये मेरे सहायक रहे हैं। यदि ये व्यक्तिगत दृष्टिकोण को भूलकर एक कार्यकर्ता के रूप में संस्था के कार्यों में योगदान करना प्रारम्भ कर दें तो एक सफल कार्यकर्ता वन सकते हैं।

जिस संस्था और समाज की उज्ज्वल परम्परा को मैंने देखा और अनुभव किया है, वह पुनः उसी प्रतिष्ठा को प्राप्त हो—यह मेरी मंगल—कामना है।

—बी० २/२४९, निर्वाण भवन
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी—५

त्याग

'जिस त्याग से निर्मलता की वृद्धि होती है वही त्याग कहलाता है। जिस त्याग के अनन्तर कलुषता हो, वह त्याग नहीं दम्भ है।'

—वर्णी-वाणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्था के वे चिरस्मरणीय दिन

● श्री प्रकाश हितैषी जी शास्त्री

मेरी स्मृति के आधार पर सम्भवतः सन् १९२६ से १९३१ तक मैं श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला बीना-इटावा का छात्र रहा हूँ। उस समय श्रीमान् विद्वद्वर पं० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री छात्रों को अपने पुत्रों की तरह शिक्षा - दीक्षा दे रहे थे। साथ में पं० कमल कुमार जी तीर्थत्रय तथा अन्य विद्वान् भी अध्यापन में उनके सहयोगी थे। मैं ११ वर्ष की आयु में वहाँ भरती हुआ था। मैंने विशारद प्रथम खण्ड तक वहाँ पर अध्ययन किया है। यद्यपि छात्रावास में उस समय कुल १८ छात्र ही रहते थे; किन्तु उनमें से अधिकांश अच्छे प्रतिभाशाली छात्र थे। उस समय शास्त्री कक्षाओं में श्यामलाल जी (वर्तमान में तीर्थत्रय होकर ललितपुर में स्वतन्त्र व्यवसायी हैं) गुलझारी लाल जी (वर्तमान में विजयनगर—आसाम में अध्यापन के साथ-साथ स्वतन्त्र व्यवसाय भी करते हैं) भद्रबाहु जी (अज्ञात वास) नाथूराम जी डोंगरीय (वर्तमान में इन्दौर में व्यवसायी एवं अच्छें कवि तथा सुलेखक हैं) आदि अच्छे सुयोग्य उच्च कक्षाओं के छात्र थे।

पाठशाला में पढ़ाई एवं भोजनादि की बड़ी सुन्दर व्यवस्था थी। सबको घर की तरह अच्छा भोजन दिया जाता था। पर्वों में विशिष्ट मिष्ठान और खीर सबको यथेष्ट प्रेम से खिलाई जाती थी। २॥ सेर चावलों में एक मन दूध, खोपरा, किसमिस आदि मेवा डाल खीर तैयार की जाती थी। व्याकरण और न्याय की शासकीय परीक्षा देने जब हम लोग दतिया या झांसी जाते थे तो वहाँ सबको रवड़ी और दूध का नास्ता दिया जाता था। यह सब खर्च संस्था ही वहन करती थी।

पं० फूलचन्दजी सि० शास्त्री सुधारवादी एवं राष्ट्रीय विचारधारा के विशिष्ट व्यक्तियों में से एक थे। मुझे स्मरण है कि मृत्युभोज का बहिष्कार करने पर उन्हें समाज के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा था। मैंने भी उसी समय से मृत्युभोज का बहिष्कार कर दिया था। आदरणीय पं० जी राष्ट्रीय आन्दोंलनों में प्रथम पंक्ति के कार्यकर्ताओं में से थे।

उस समय के सुयोग्य मंत्री श्री मूलचन्द जी सा० का अनुशासन बड़ा कड़ा पर सुन्दर था। साथ ही वे बड़े उदारचरित पुरुष थे। अनुशासन के विषय में मेरे साथ घटी एक घटना बड़ी प्रमाणीभूत है—

एक छात्र श्री धन्नालाल जी से मेरी लड़ाई हो गई थी जिसमें उन्हें खून निकल आया था। जब मंत्री जी के पास शिकायत पहुँची तो उन्होंने पूरी छानवीन करके मुझे दोषी ठहराया और विशारद-परीक्षा का समय निकट होने पर भी मुझे पाठशाला से निष्कासित कर दिया किन्तु पं० फूलचन्द जी के समझाने पर परीक्षा तक मुझे रहने की स्वीकृति दे दी गई। यह थी उनकी अनुशासनप्रियता। अगले वर्ष मैं सागर विद्यालय में पढ़ने चला गया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन दिनों पं० फूलचन्द जी एवं पं वंशीधरजी में घनिष्ट मित्रता थी। वे दोनों राष्ट्रीय, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में एक साथ मिलकर कार्य करते थे। श्री नन्हे लाल जी बुखारिया उपमंत्री थे। श्री भायजी गटोले-लाल जी के साथ वे बड़ी तन्मयता से पूजन और सामायिक करते थे। राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं श्री भायजी भी प्रमुख थे। श्री सिंघई आनन्द कुमार जी ने भी इस पाठशाला में कुछ समय तक अध्ययन किया है।

मेरे अपने विचार में पाठशाला के वे सर्वोत्कर्ष के दिन थे; क्योंकि नाम पाठशाला होते हुए भी काम विद्यालयों से भी ऊँचा था। घर जैसा साफ-सुथरा वातावरण उन दिनों इस पाठशाला का था। ऐसा वातावरण अन्यत्र कम देखने को मिला है। क्योंकि व्यक्ति विशेष ही संस्था होता है, किसी भवन आदि का नाम संस्था नहीं है।

सम्पादक—'सन्मति-सन्देश' ६३५

गांधी नगर: दिल्ली

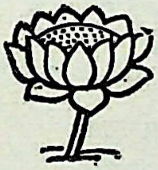

सदाचार

'सदाचार के बिना सुख पाने का यत्न करना आकाश के पुष्पावचयन के सदृश है।'

—वर्णी - वाणी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा जीवन-निर्माता

● डा० श्री चिरंजीलाल जी जैन

मैं श्री नाभिनन्दन दिग० जैन संस्कृत विद्यालय का विद्यार्थी रहा हूँ। मेरे जीवन-निर्माण का सम्पूर्ण श्रेय इसी विद्यालय को है।

खुरई के पास सिलौदा ग्राम का मैं निवासी हूँ। बचपन में ही पिता जी का स्वर्गवास हो जाने से शिक्षा हेतु मुझे खुरई जाना पड़ा; किन्तु गरीबी और बेसहारा होने से मेरी मां की बेबशी के कारण कक्षा ८ वीं तक ही मैं यहाँ शिक्षा पा सका। परिस्थितियों से परेशान, विवश व लाचार होकर अन्त में मैं बीना आया। सौभाग्य से यहाँ मुझे श्री बुखारिया नन्हेंलाल जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ और उनकी कृपा से बीना-विद्यालय में मुझे प्रवेश मिल गया।

इस विद्यालय में शिक्षा के दौरान मुझे नाना विपत्तियों का सामना करना पड़ा। गांधी जी के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन से भी मेरी शिक्षा में व्यवधान हुआ; क्योंकि यह विद्यालय मात्र शिक्षा का ही केन्द्र नहीं था अपितु शिक्षा के साथ-साथ राष्ट्रीय आन्दोलनों का भी यह प्रमुख स्थल था। राष्ट्रीय आन्दोलनों की अनेक योजनाएँ यहाँ बनती थीं और इनमें यहाँ के अध्यापक एवं छात्र भी सक्रिय भाग लेते थे। कांग्रेस के जुलूसों में तिरंगा झंडा लेकर यहाँ के छात्र ही सबसे आगे रहते थे।

विपत्तियों और झंझावातों के बीच मुझे इस विद्यालय ने, इसके प्रबन्ध-संचालकों ने तथा अध्यापकों ने भारी साथ दिया। क्वीन्स कालेज बनारस की प्रथमा-परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कराने का श्रेय इन्हीं सबको है। मैं अपने भविष्य के विषय में अनभिज्ञ था और बार-बार शिक्षा छोड़कर प्रारम्भिक नौकरी या रोजगार की तलाश में था; किन्तु मुझे आदरणीय पं० बंशीधर जी की प्रेरणा से प्रथमा परीक्षा पास करनी पड़ी। मेरे प्रारम्भिक जीवन निर्माण की यही शुरूआत थी।

अग्रिम उच्च अध्ययन को कहाँ किस ढंग से चालू रखा जाय ?—इस हेतु मैं पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णी के समक्ष उपस्थिति हुआ। उन्होंने बीना के नाभिनन्दन विद्यालय के छात्रों के प्रति गहरी सहिष्णुता प्रदर्शित करते हुए सागर महाविद्यालय में प्रवेश दिला दिया; किन्तु मेरा मन वहाँ नहीं लगा।

इसी बीच मेरी मुलाकात खुरई में पं० देवकीनन्दन जी कारंजा वालों से तथा श्री मानकचन्द जी मुल्ला से हुई। इन्होंने मुझे सरसेठ हुकमचन्द सं० महाविद्यालय इन्दौर में प्रवेश दिला दिया, जहाँ मैंने संस्कृत मध्यमा और इण्टर तक अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त की। मेरी विद्याध्ययन की विशेष लगन और प्रतिभा को देखकर भैय्या साहब श्री राजकुमारसिंह जी ने मेरा प्रवेश राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज में करा दिया और अध्ययन हेतु सभी सुविधाएँ दिला दीं। फलतः ५ वर्ष में योग्य चिकित्सक बनकर कार्यक्षेत्र में आया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रारम्भ में मैंने असि० मेडिकल आफीसर पद पर रहकर शासकीय सेवा की; लेकिन सन्तोष न मिलने पर नौकरी छोड़कर मैं विदिशा (म० प्र०) में प्राइवेट प्रैक्टिस करने लगा, जिसमें मुझे पूर्ण सफलता मिली। आज मैं सम्पन्न एवं अच्छी स्थिति में हूँ।

मेरे प्रारम्भिक जीवन निर्माण का सम्पूर्ण श्रेय बीना की इसी विद्यालय को है। इसने मेरे जैसे सैकड़ों असहाय, गरीब, बेसहारा बालकों को ज्ञान का प्रकाश देकर जीवन निर्माण किया है तथा उनका नैतिक एवं सामाजिक उद्धार किया है। मैं इस विद्यालय के सत्कर्ताओं के प्रति आभारी हूँ और सदैव आभारी रहूँगा। इसकी सब प्रकार की उन्नति की मनोकामना मैं करता हूँ।

—मैनरोड, विदिशा (म० प्र०)

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः
हृल्पश्च कालो, बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं,
हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

—शास्त्र अनन्त हैं, विद्याएँ भी बहुत हैं; किन्तु जीवन का समय अल्प है और वह भी विघ्न-बाधाओं से भरा हुआ है। इसलिए आत्मकल्याण में सारभूत ग्रन्थों का अध्ययन करना उपयुक्त है। जैसे—हंस दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्याकल्पतरु (श्री ना. नं. दि. जैन सं. विद्यालय) का

उद्भव एवं विकास

पं. श्री दयाचन्द जी साहित्याचार्य, सागर

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय विगत ७४ वर्षों से निरन्तर समाज सेवा के साथ जैनधर्म की प्रभावना एवं संस्कृत साहित्य का प्रचार-प्रसार करता आ रहा है। इस विद्याकल्पतरु के बीना जैसे लघु क्षेत्र में उद्भव और विकास में बीना की स्थानीय समाज और वहाँ की जैन हितोपदेशिनी सभा का विशेष पौरुष रहा है।

सौभाग्य से सन् १९४४ से १९४७ तक इस विद्यालय में सेवा करने का शुभ-अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ। उस समय यहाँ की छात्र संख्या अधिक थी। यहाँ की पठन व्यवस्था का सम्बन्ध श्री दिगम्बर जैन महासभा परीक्षालय इन्दौर तथा काशीस्थ राजकीय संस्कृत कालेज (वर्तमान में स० सं० विश्वविद्यालय) वाराणसी रहता था। इस का छात्रावास भी था। परीक्षा-स्तर प्रवेशिका तृतीय खंड तथा संस्कृत प्रथमा तक ही सीमित था। इसके बाद छात्र श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी को अध्ययन हेतु चले जाते थे। इस विद्यालय में छात्रों के विद्याकल्पतरु का अंकुर पैदा किया जाता था और वाराणसी में गंगा के भदैनी घाट पर यह फलित होता था। इस विद्यालय में अनेक छात्रों ने विकास कर लौकिक एवं पारलौकिक विषयों में विद्वत्ता प्राप्त की है। आज वे स्नातक शासकीय, सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रों में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

मेरे कार्यकाल में इस विद्याकल्पतरु को बीना
विनोवा बुखारिया श्री नन्हेंलाल जी ने अनुशासन
सम्बद्ध किया। बीना के जवाहर पं० श्री वंशीधर
व्याकरणाचार्य ने इसकी शिक्षा-प्रणाली को उज्जी
किया। इस विद्यातरु के मूल में सिंघई श्रीनन्दन
जैसे लक्ष्मीपुत्रों ने अपने उदारभावों से सिंचन किया
श्री सिंघई आनन्दकुमार जी ने इस विद्याकल्पतरु
सुरक्षा कर प्रफुल्लित किया है। श्री शाह अमृतलाल
ने इसका सिंचन कर अमृतफल लगाये हैं। पं० श्री
दास जी शास्त्री ने इसमें शिक्षा-सुरभि का संचार
है। समाज के बाल श्री वालचन्द कठरया ने इसे
सेवा से हरा-भरा बनाया है। समाज के भैया श्री
लाल जी ने विघ्न बाधाओं से बचाकर इसे सुरक्षित
है।

आत्मा की पूजा का आदर्श व्यक्त करने में
पुजारी वंश ने इस विद्याकल्पतरु की अर्चना कर
का महत्व समाज में प्रसारित किया है।
है। समाज की शिखर पर शोभित सांस्कृतिक
की सुरक्षा में तत्पर पं० श्री बाबूलाल जी ने इस
तरु की सुरक्षा में सदैव अपना सहयोग दिया है
पं० श्री मुन्नालाल जी साहित्य शास्त्री एवं पं० श्री
चन्द जी शास्त्री अपने मनोयोग से इस का
उन्नत करने में संलग्न हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान में कुशल प्रशासकीय क्षमता वाले युवारत्न श्री राजेन्द्रकुमार जी कंजिया वालों की अध्यक्षता वाली श्री ना. नं. दि. जैन हितोपदेशिती सभा के सभी सभासद एवं पदाधिकारी अपने कर्तव्य जल से सिंचन कर इस विद्याकल्पतरु को हरा-भरा व फला-फूला बना रहे हैं। इस विद्यातरु के संरक्षण सम्पोषण सम्वर्द्धन एवं विकास में इन सबकी सेवाएँ अभूतपूर्व हैं। इस कारण इस विद्याकल्पतरु की हीरक जयन्ती महोत्सव को रचनात्मक रूप देने का आयोजन इस सभा ने किया है—यह बड़े हर्ष का विषय है।

इस मंगलमय अवसर पर इस विद्यातरु के दीर्घ जीवन एवं उज्ज्वल भविष्य हेतु मैं शत-शत शुभकानाएँ सर्मपित करता हूँ।

प्रवक्ता—श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागर (म. प्र.)

जब गंध अधिक बढ़ती, तब बाग उजड़ जाता है।
आवाज अधिक बढ़ती, तब राग उखड़ जाता है॥
हर चीज की सीमा है, फिर भी 'सरस' मानो।
जब स्वार्थ अधिक बढ़ता, व्योहार बिगड़ जाता है॥

—आशुकवि 'सरस' जैन, सकरार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे दिन आज भी याद आते हैं

● डा० श्री कोमलचन्द जी जैन, वाराणसी

जब कभी मैं अपने जीवन के सबसे अधिक सुखद क्षणों की याद करता हूँ तो मुझे श्री नाभिनन्दन दि० जैन संस्कृत विद्यालय में छात्र के रूप में व्यतीत वे दिन आज भी याद आते हैं। मैं इस विद्यालय की प्रवेशिका प्रथम खण्ड की कक्षा में जुलाई १९४५ में प्रविष्ट हुआ था। उस समय पं० धर्मदास जी विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे तथा पं० दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य अध्यापक एवं छात्रावास—व्यवस्थापक थे।

पं दयाचन्द्र जी अध्यापन के साथ-साथ व्यायाम, खेल-कूद आदि सिखाने में अभिरुचि लेते थे। छात्रों की दैनिकचर्या व्यस्त रहती थी तथा उसका सही ढंग से पालन होता था। प्रातः ७ बजे से ८ बजे तक व्यायाम के लिए समय निर्धारित था। पं० दयाचन्द जी अपनी सीटी लेकर ठीक ७ बजे विद्यालय के प्रांगण में आ जाते थे। सीटी बजते ही सभी लड़के मैदान में उपस्थित होते थे। व्यायाम में दण्ड-बैठक एवं आसनों के अतिरिक्त खेल-कूद भी होता था। सप्ताह में एक बार सायंकाल छात्र हितकारिणी सभा होती थी। उसमें पं० दयाचंद्र जी नियमित रूप से आते थे और छात्रों को भाषण देना सिखाते थे। यदा-कदा वे विद्यालय के प्रधानाध्यापक जी को आमन्त्रित करते थे और उनकी उपस्थिति में व्यायाम आदि का प्रदर्शन कराते थे। इन सब क्रिया-कलापों से छात्रों का स्वास्थ्य अच्छा रहता था। शारीरिक स्थिति ठीक होने से छात्रों का मेधावी होना भी स्वाभाविक था।

दूसरी विशेषता यह थी कि दोनों अध्यापक न केवल छात्रों से पुत्रवत् स्नेह रखते थे अपितु अधिकारी-वर्ग के अनुचित अधिकार प्रयोग पर वे छात्रों का खुलकर समर्थन करते थे। १९४८ में एक बार तत्कालीन मंत्री जी महोदय ने साधारण-सी बात पर जब विद्यालय के ८ छात्रों को विद्यालय से निष्कासित कर दिया तो प्रधानाध्यापक जी ने अपनी तीखी नाराजगी व्यक्त की और अन्य छात्रों को भी उन ८ निष्कासित छात्रों के समर्थन में विद्यालय से चले जाने की सलाह दे दी। परिणाम स्वरूप निष्कासन-आदेश वापिस ले लिया गया।

सन् १९४७-४८ का समय तो बीना-विद्यालय का स्वर्णकाल था। उस समय विद्यालय में ४१ छात्र थे। जब बीना विद्यालय के छात्र बीना का अध्ययन समाप्त कर अन्य विद्यालयों में प्रवेश लेते थे, तो उनको बीना विद्यालय का छात्र होने के नाते ही नये विद्यालय में सम्मानजनक स्थिति प्राप्त होती थी। मैं जुलाई १९४९ में जब बीना विद्यालय से प्रथमा-परीक्षा उत्तीर्ण करके श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी आया तो यहाँ के व्याकरण विभागाध्यक्ष स्व० पं० दिवाकर जी जोशी ने अपनी कक्षा में यही कहा कि 'यह छात्र बीना से आया है, इसलिए बुद्धिमान होगा।'

आज जब दूसरे विद्यालयों के अध्यापकों को देखता हूँ तो समझ में आता है कि पं० धर्मदासजी एवं पं० दयाचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जी अध्यापकरत्न रहे हैं। आज संस्कृत विद्यालय के अध्यापकों में अधिकांश का व्यवहार छात्रों के प्रति अत्यन्त घृणित रहता है। वे अपने लड़कों को 'जीव' तथा विद्यालय में पढ़ने वाले लड़कों को 'अजीव' समझा करते हैं। छात्रों के सन्मुख तरह-तरह की कठिनाईयाँ उपस्थित करने में उन्हें आनन्दानुभूति होती है। ऐसी स्थिति में मुझे अपने समय के वीना — विद्यालय में सेवारत अध्यापकों की याद बरबस आ जाती है। उन्हीं अध्यापकों के व्यवहार की मेरे जीवन पर ऐसी छाप पड़ी है कि मैं विश्व— विद्यालय में सबसे अधिक स्नेह अपने छात्रों से करता हूँ। यदि कभी कदाचित् किसी छात्र की परेशानी मुझसे दूर हो जाती है तो उस समय मुझे अपार हर्ष होता है। अपने छात्रों के हित में अपनी पूरी शक्ति लगा देने का स्वभाव मुझे अपने उक्त अध्यापकों से ही विरासत में मिला है।

—प्राध्यापक-पालि-प्राकृत विभाग
काशी हिन्दू वि० वि०, वाराणसी

कोऽहं कीदृग्गुणः क्वत्यः, किंप्राप्यः किंनिमित्तकः ।
इत्यूहः प्रत्यहं नो चेदस्थाने हि मतिर्भवेत् ।। १—७८ ।।

मैं कौन हूँ ? मुझमें कौन-कौन गुण हैं ? मैं पूर्व किस पर्याय से आया हूँ ? मुझे इस पर्याय में क्या प्राप्त करना है ? और मैं किस लिए पैदा हुआ हूँ ?—ऐसा विचार यदि प्रतिदिन न करे तो मनुष्य अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होकर कुमार्ग में लग जाता है।

—क्षत्र चूड़ामणि १—७८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीना विद्यालय का मेरे ऊपर उपकार

● ब्र० पं० भुवनेन्द्रकुमार जी शास्त्री

विद्यालय में नियुक्ति—

सन् १९३३ के लगभग, जब मैं सागर संस्कृत विद्यालय में शास्त्री कक्षा का छात्र था, श्री ना० नं० दिगम्बर जैन सं. पाठशाला बीना के लिए एक अध्यापक की आवश्यकता प्रकाशित हुई। अध्यापन का कुछ भी अनुभव और अभ्यास न होते हुए भी गुरुवर्य पूज्य दयाचन्द्र जी न्यायतीर्थ से पूंछकर मैंने उक्त पद हेतु आवेदन कर दिया। जब साक्षात्कार हेतु बीना से आमन्त्रण मिला तो प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गणेशप्रसाद जी वर्णी (जिन्हें उस समय पंडित जी कहते थे) और पं० दयाचन्द्र जी न्यायतीर्थ से सिफारिशी पत्र लेकर मैं बीना पहुँचा।

यहाँ सौभाग्य से मेरा प्रथम परिचय पं० धरमदास जी से हुआ। इन्होंने बीना-समाज की सारी परिस्थितिओं का सिंहावलोकन कराते हुए कार्य करने की रूपरेखा मुझे भलीभांति समझा दी। मैं सागर से लाये पंडितद्वय के सिफारिशी-पत्रों के साथ बीना पाठशाला के तत्कालीन मंत्री बाबू मूलचन्द जी की सेवा में साक्षात्कार हेतु उपस्थित हुआ। ऊपर से नीचे तक मुझे बड़े गौर से देखते हुए बाबू जी ने सामने बैठने का इशारा किया और मैं बड़े संकोच के साथ डरते-डरते उनके सामने चुपचाप बैठ गया। कुछ प्रश्नों के उपरान्त उन्होंने मुझसे तनख्वाह के बारे में पूंछा कि क्या लोगे ?

मैंने बिना किसी लपेट के कह दिया कि 'पंडित जी ने कह दिया है कि २५ रुपये माँगना और २० रुपये तक में रह जाना।' मेरे इस सरलता-भरे उत्तर को सुन बाबू जी मुस्कराये और मुझे जाने का आदेश दे दिया— 'जाओ'। मुझे मेरी नियुक्ति बिल्कुल असम्भव सी दिखी, क्योंकि बड़े-बड़े उपाधिधारी अनुभवी लोगों के आवेदन-पत्र उनके समक्ष उस समय रखे हुए थे।

तत्कालीन स्थानीय परिस्थितिओं को देखते हुए बाबू जी विद्यालय में किसी सीधे-साधे पर सेवा-भावी लगनशील, निष्पक्ष विद्वान् को नियुक्त करना चाहते थे। अतएव अपने सहयोगियों से उचित परामर्श के बाद २० रुपये प्रतिमाह पर उन्होंने मुझे ही पाठशाला में नियुक्ति दे दी और मैं उसमें लगन से अपना कार्य करने लगा।

इसके कुछ ही समय बाद पाठशाला के प्रबन्ध संचालकों में परिवर्तन हुआ और श्री फूलचन्द जी सर्राफ मंत्री और श्री पन्नालाल जी रोकड़या उपमंत्री चुने गये। इसी समय रजवांस से श्री खुमान लाल जी मुनीम यहाँ आकर विद्यालय एवं मन्दिर का काम सम्भालने लगे।

दिनचर्या एवं समाज प्रमुखों से सम्पर्क तथा परिचय—

इस समय विद्यालय रात्रि-पाठशाला के रूप में रात्रि में ७॥ से ९॥ बजे तक केवल दो घंटे ही लगता था जिसमें स्थानीय समाज के बालक आकर बालबोध, छहढाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि पढ़ते थे। पाठशाला के दो घंटों के समय को छोड़कर शेष समय मैं पूजा, स्वाध्याय, अध्ययन और स्थानीय समाज-प्रमुखों के साथ सम्पर्क तथा परिचय वृद्धि में व्यतीत करने लगा। फलतः सिंघई श्रीनन्दनलाल जी, बुखारिया नन्हेलाल जी, श्री मौंजीलाल जी, अर्जुनलाल जी, सिं० भैयालाल जी, श्री पन्नालाल जी टड़ैया, सराफ मुन्नालाल जी रामलाल जी, श्री धन्नालाल जी कठरया, पुजारी खेतसिंह जी, पं० वंशीधर जी शास्त्री आदि से मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया।

तत्कालीन मेरे समवयस्क युवकों में प्रमुख थे खेमचन्द जी घित्रा, नायूराम जी सेमरा, पं० भैयालाल जी दाऊ, सिं० आनन्द कुमार जी, अमृतलाल जी शाह, कठरया पन्नालाल जी, बुद्धूलाल जी सराफ गुलझारी लाल जी भायजी, परमानन्द बाबूलाल समैया, बालचन्द रतनचन्द कठरया, बाबूलाल गुलाबचन्द बजाज आदि। इन सबसे भी मेरे अच्छे सम्बन्ध हो गये। इनके सिवाय स्थानीय जैनेतर बन्धुओं के भी निकट सम्पर्क में मैं आया। इनमें भैयालाल जी पुरोहित, सिद्धनाथ जी तिवारी, भैंरोप्रसाद जी पाठक, वैद्य नारायणदत्त तिवारी आदि प्रमुख हैं। मेरी सरलता एवं प्रेमपूर्ण सद-व्यवहार से आकृष्ट हो वैद्य श्री तिवारी जी ने अपने एक भतीजे को इस पाठशाला में संस्कृत पढ़ने के लिए भरती कर दिया था।

दिनचर्या में परिवर्तन—

अब मेरी दिनचर्या में कुछ परिवर्तन हुआ। प्रातः २—२।। घन्टे सामूहिक वाद्य संगीत के साथ पूजन, दिन में स्वाध्याय एवं लेखन तथा रात्रि में पाठशाला के अध्यापनोपरान्त तत्वचर्चा में मेरा समय व्यतीत होने लगा। आदरणीय भायजी गटोलेलाल जी, पं० धर्मदास जी, पं० वंशीधर जी, बुखारिया नन्हेलाल जी आदि महानुभाव तत्वचर्चा हेतु पाठशाला में बैठते और विभिन्न प्रकार की आगम एवं अध्यात्म सम्बन्धी चर्चायें करते थे, जिन पर मनन-चिन्तन और विचार-विमर्श किया जाता था। भाया जी गटोले लाल जी एक बड़े ही सत्यनिष्ठ सदाचारी और स्वाध्यायी श्रावक थे। आपकी शंकाओं का उत्तर विषय के अधिकारी विद्वान् ही दे पाते थे।

समाज से वात्सल्यपूर्ण सम्बन्ध—

शनैः शनैः बीना नगर की समाज से मेरा वात्सल्यपूर्ण सम्बन्ध बन गया। पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक समारोहों में सब प्रकार के सहयोग के साथ-साथ मैं बिना किसी भेदभाव के पूरी समाज के सुख-दुःख में भी शामिल होने लगा। बीमार की खबर लेना, दवा-दारू की व्यवस्था कर देना, अस्पताल दिखा लाना आदि समाज-सेवा मेरे स्वभाव का अंग बन गई। मेरे मृदु भाषण, सद्-व्यवहार और बिना किसी भेदभाव के समाज सेवा के कार्यों के फलस्वरूप बीना जैन-समाज से मुझे प्रेम, सहयोग और सहानुभूति प्राप्त होने लगी इसीसे महावीर जयन्ती से लेकर शादी-विवाह आदि कार्यों में मेरी उपस्थिति अब अनिवार्य होने लगी। संस्थाधिकारियों और समाज की ओर से मेरे इन कार्यों में कोई रोक-टोक या बाधा नहीं डाली गई।

मन्दिर के दरवाजे के ऊपर वाले हाल में नव-युवक मंडल की बैठकें होती थी तथा बाहर से पधारे धार्मिक, राष्ट्रीय या साहित्यिक विद्वानों के भाषण तथा प्रवचन भी यहाँ होते थे। इनके ठहरने तथा भोजन आदि की व्यवस्था का दायित्व मेरे ऊपर रहता था। यह सब खर्च विद्यालय वहन करता था। मंत्री जी की ओर से मुझे इसमें कोई बाधा नहीं थी।

विद्यालय की उन्नति हेतु चिन्ता एवं प्रयत्न

इस तरह अध्यापन, स्वाध्याय, पूजन, तत्वचर्चा तथा समाज सेवा में मेरा समय यद्यपि शान्ति से बीत रहा था, पर पाठशाला की उन्नति के बिना मुझे सन्तोष न था। अतएव रात्रि में पं० धर्मदास जी, वंशीधर जी, बाबू मूलचंद जी, एवं बुखारिया नन्हेंलाल जी आदि महानुभावों की तत्वगोष्ठी में मैं अपनी यह मनो-व्यथा सभी के सामने रखता था। शिक्षा में अभिरुचि और पाठशाला की उन्नति की भावना होते हुए भी ये लोग कुछ करने में असमर्थ थे; क्योंकि हितोपदेशिनी सभा के ये अब अधिकारी नहीं थे। इसके अधिकारी तो अब श्री फूलचन्द जी, चौधरी पन्नालाल जी प्रभृति अन्य महानुभाव थे। चौधरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जी कानून विद् होते हुए भी शिक्षा के अनुभव से शून्य थे और श्री फूलचन्द जी, जो सभा के मंत्री थे, पुराने विचारों के भोले-भाले व्यक्ति थे। शिक्षा के क्षेत्र में इन्हें भी कोई विशेष अनुभव नहीं था। अतएव सारा कार्य पन्नालाल जी के निर्देश पर ही होता था। चौ० पन्नालाल जी दृढ़ संकल्पी थे और विद्यालय की उन्नति की भावना भी उनमें थी लेकिन इसकी कोई स्पष्ट योजना उनके सामने नहीं थी। कुछ स्थानीय परिस्थितियों के कारण भी वे आगे बढ़कर कुछ करने में मजबूर थे।

चुनाव एवं नई कमेटी का गठन—

अन्ततोगत्वा पाठशाला के शुभचिन्तकों ने (गुलझारी लाल भायजी, पं० धर्मदास जी, अर्जुनलाल जी, मौंजीलाल जी, नन्हेलाल जी, बुखारिया जी आदि ने) प्रबन्ध एवं कार्यकारिणी का पुनः चुनाव कराने का निर्णय किया। पूरी समाज की बैठक बुलाकर चुनाव कराया गया। नई कमेटी बनी, जिसमें सिं० श्रीनन्दन लाल जी सभापति, बुखारिया नन्हेलाल जी मंत्री और भैयालाल जी उपमंत्री चुने गये। इन्होंने संस्था का रजिस्ट्रेशन कराने हेतु सदस्यों की सूची के साथ नागपुर आवेदन-पत्र प्रेषित कर दिया।

हितोपदेशिनी सभा का यह चुनाव बड़े संघर्ष और प्रयत्न से हुआ था। नई कमेटी का गठन भी बहुमत के आधार पर किया गया था तथापि कुछ पुराने लोगों का ख्याल था कि संस्था के जमीन जायजाद और अदालती मामलों को निपटाने में यह नई कमेटी समर्थ नहीं है। यह काम तो सिर्फ चौ० पन्नालाल ही कर सकते हैं।

वास्तव में भारत की समस्त जैन संस्थाओं की अपेक्षा बीना-विद्यालय और मन्दिर की स्थिति भिन्न थी। आर्थिक दृष्टि से यह पूर्ण आत्म निर्भर थी। आदरणीय दानवीर सिं० नाथूराम जी बीना (जिनकी समाज की उन्नति में बड़ी लगन थी और जो बहुत ही प्रतिष्ठित, दूरदर्शी वात्सल्यभावी तथा दानी युग पुरुष थे) ने अपनी अचल सम्पत्ति में से बहुत से मकान, जमीन एवं ढुरढुरु गांव की पूरी पट्टी संस्था को दानस्वरूप देकर समाज को सौंप दी थी। सिं० नाथूराम जी के परम सहयो[gi] स्व० सिं० परमानन्द जी भी थे। ये भी प्रकृति से [बड़े] उदार और निःस्वार्थ सेवाभावी महामानव थे। इन्होंने भी अपने कई मकान इस संस्था को दान स्वरूप दिये थे। अतः इस संस्था के आय के स्रोत अच्छे थे। इस तरह संस्था बिना किसी से दान लिए निराबाध गति से चल रह सकती थी।

पुनः चुनाव और उसकी अवैधानिकता—

उक्त उभय सिंघई जी महानुभावों द्वारा प्रदत्त दान से यह संस्था आर्थिक दृष्टि से पूर्ण आत्म निर्भर होते हुए भी जायजाद के कुछ झगड़ों के कारण मतभेद का शिकार बनी हुई थी। अतएव उक्त चुनाव चौ० पन्नालाल जी, फूलचन्द जी और उनके सहयोगियों को पसन्द नहीं आया। फूलचन्द जी ने कुछ मेम्बरों के हस्ताक्षर लेकर प्रबन्धकारिणी का पुनः चुनाव कराया और इस कमेटी के रजिस्ट्रेशन हेतु नागपुर आवेदन पत्र भेज दिया। वहाँ इस कमेटी की कार्यवाही को अवैधानिक बताकर निरस्त कर दिया गया। फलतः सिं० श्रीनन्दन लाल जी के सभापतित्व वाली कमेटी ही कानूनी रूप से मानी गई। इस कमेटी को चार्ज मिलने में कई महीनों का समय लगा; लेकिन मैं श्री नन्हेलाल जी बुखारिया और मुनीम जी खुमानलाल जी को यथावत् पूर्ण सहयोग देता रहा। इतना सब होते हुए भी चौ० पन्नालाल एवं फूलचन्द के साथ हमारे प्रेम व्यवहार में कोई कमी नहीं आयी।

विद्यालय की सुव्यवस्था हेतु प्रयास—

श्री बुखारिया जी के मन्त्रित्व वाली कमेटी को जैसे ही संस्था का कार्यभार मिला, उसने आमदनी के सभी स्रोतों को व्यवस्थित किया, हिसाब-किताब व [?] आदि की व्यवस्था सम्भाली और पाठशाला में सुवि[धा] युक्त छात्रावास चालू करने का निर्णय लिया।

छात्रावास चालू होने पर नगर के बाहर के [छात्रों] को इसमें प्रवेश मिलने लगा। सभारम्भ में करीब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छात्र यहाँ आ गये। बनारस की व्याकरण प्रथमा और परीक्षालय बम्बई के कोर्स के अनुसार धर्मशास्त्र की पढ़ाई यहाँ विधिवत् चालू हो गई। इस समय विद्यालय में केवल मैं अकेला ही अध्यापक था। अतः पढ़ाई एवं छात्रावास की व्यवस्था आदि का प्रबन्ध अधिकारियों ने मुझे ही सौंप दिया। छात्रों की दिन-चर्या निश्चत कर दी गई जिसका पालन छात्र बराबर करते थे। संस्था के मंत्री श्री बुखारिया जी तथा अन्य प्रमुख लोगों को ध्यान विद्यालय की उन्नति की ओर रहने लगा।

छात्राओं के अध्ययन के लिए एक कन्याशाला की भी शुरूआत की गई। इसमें पढ़ाने के लिए महात्मा भगवानदीन की धर्मपत्नी श्रीमती भाग्यवती बाई की नियुक्ति की गई। यह कक्षा मन्दिर के दरवाजे के ऊपर वाले हाल में लगाई जाती थी। रात्रि में नगर के बालकों के लिए रात्रि-पाठशाला चलती ही थी। अब बीना-समाज की छत्रच्छाया में विद्यालय उन्नति की ओर जाने लगा।

विद्यालय सम्बन्धी कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता—

वेतन भोगी कर्मचारी होते हुए भी मुझे विद्यालय के सभी कार्य करने की स्वतन्त्रता थी। विद्यालयीय आवश्यक खर्च में भी मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता थी। छात्र, रसोईया, चपरासी या कर्मचारी को रखने में मैं स्वतन्त्र था। संस्थाधिकारियों की मेरे ऊपर यह विशेष कृपा थी कि उन्होंने मुझसे किसी भी काम में कोई कैफियत नहीं ली। जैनेतर छात्रों को भी मैंने अपनी हिम्मत पर विद्यालय के छात्रावास में भरती किया तो भी कोई विरोध नहीं हुआ। वृन्दावन पटवा नाम का एक अजैन लेकिन प्रतिभाशाली छात्र छात्रावास में रहकर विद्याध्ययन करता था। यह बीना-समाज और संस्था की समभाववृत्ति का अच्छा उदाहरण था।

अन्य कार्यों में भी सहयोग—

विद्यालय के काम के अलावा कभी-कभी गांव या खुरई आदि के अदालती कार्य में भी मैं सहयोग देता था। मैं और खुमानलाल मुनीम सदा एक जुट होकर लगन से काम करते थे। चाहे मन्दिर का, चाहे गांव का, चाहे पाठशाला या विद्यालय का, चाहे मुकद्दमा मामला या प्रवन्ध का कार्य हो बराबर हम एक दूसरे के सहयोग का ख्याल रखते थे। इन्हीं कार्यों से मुझे कभी-कभी गांव-ढुरुढुरु या खुरई भी जाना पड़ता था।

संस्था के तत्कालीन मन्त्री श्री बुखारिया जी के साथ भी सहयोग की यही स्थिति थी। उनका और मेरा नौकर-अधिकारी का सम्बन्ध होते हुए भी व्यवहार में वह बिल्कुल नहीं था, अपितु हम दोनों एक गाड़ी के दो चक्र के समान समाज का अभिन्न अंग बनकर संस्था चलाते थे।

विशिष्ट अभ्यागतों का आतिथ्य, एवं सेवा-सत्कार—

बीना रेलों का जंक्शन है। अतः यहाँ बाहर के अनेक प्रतिष्ठित गणमान्य महापुरुष, विद्वान्, श्रीमान्, राष्ट्रीय पुरुष, व्रती-त्यागी आदि महापुरुषों का शुभागमन होता रहता था, जिनके ठहरने आदि की व्यवस्था विद्यालय में ही की जाती थी और उनके प्रबन्ध तथा स्वागत-सत्कार का दायित्व मेरे ऊपर ही रहता था। इन महानुभावों के स्वागत-सत्कार और सेवा से जो आनन्द मुझे होता था, वह अवर्णनीय है। इन विशिष्ट महानुभावों में कुछ इस प्रकार हैं—

पं० नाथूराम जी प्रेमी, गणेशप्रसाद जी वर्णी, मक्खन लाल जी शास्त्री, कैलाशचंद जी शास्त्री, सेठ पद्मराजजी कलकत्ता, अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय, देवकीनन्दन जी, कौशलप्रसाद जी, खुशालचन्द जी गोरावाला, जैनेन्द्रकुमार जी दिल्ली, तन्सुखराय जी, बाबा भगवानदीन जी, पं० रविशंकर शुक्ल प्रभृति। इन सबका सान्निध्य और साक्षात्कार मेरे भावी जीवन-निर्माण में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ।

लौकिक शिक्षा हेतु अँग्रेजी मिडिल स्कूल की स्थापना—

विद्यालय के शुभचिन्तकों को संस्कृत और धर्म की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढ़ाई के साथ लौकिक शिक्षा का अभाव खटकता था। अतएव बुखारिया श्री नन्हेंलाल जी ने प्रबन्धकारिणी के परामर्श से यहाँ अंग्रेजी शिक्षा के लिए मिडिल स्कूल भी खोल दिया। यहाँ की कन्याशाला में अब महिलाओं और छात्राओं की संख्या भी काफी बढ़ गई थी। अतः यहाँ की अध्यापिका श्रीमती भाग्यवती बाई धार्मिक शिक्षण के साथ-साथ उन्हें कढ़ाई-बुनाई भी सिखाने लगीं।

विद्वद्गोष्ठी एवं समाज-सुधार—

इसी बीच नाते-पुते से आदरणीय पं० फूलचन्द जी सिद्धांतशास्त्री बीना आ गये। उनके नेतृत्व में अब विद्वद्गोष्ठी भी खूब जमने लगी। उस समय बीना में पंडितों की एक बड़ी जमात थी। उनमें परस्पर संगठन भी अच्छा था। इनमें पं० फूलचंद जी, पं० वंशीधर जी, पं० भैयालाल जी, पं० धर्मदासजी बीना, पं० धर्मदास जी ललितपूर, पं० जीवन्धर जी, भायजी गटोलेलाल जी. भदईंलाल जी नायक आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

इस विद्वद्-गोष्ठी में समाज-सुधार हेतु 'सन्मार्ग-प्रचारिणी समिति' नामकी ठोस संस्था का गठन किया गया, जिसमें पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य को मन्त्री चुना गया। इससमिति के कार्य की रूपरेखा बनने के बाद यह तय हुआ कि समाज में व्याप्त कुरीतियों के निवारणार्थ सक्रिय कार्य किया जाय। समाज की आर्थिक स्थिति को देखते हुए गजरथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आज अनावश्यक है। अतः ये जहाँ हों, उनका आगम की अनुकूलता अनुसार तीव्र विरोध किया जाय और समाज को इसके बदले जनहितकारी कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया जाय। इन कार्यों में मुख्य हैं—शिक्षण संस्थाएँ खोलना, असमर्थ व दुर्बलों की सहायता करना, सत्साहित्य का प्रकाशन प्रचार व प्रसार करना आदि।

इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु 'देवगढ़' व 'केवलारी' में होने वाले गजरथ महोत्सवों का तीव्र विरोध किया गया। बड़े लोगों के प्रभाव के कारण प्रथम स्थान के महोत्सव को रोकने में सफलता नहीं मिल सकी, लेकिन दूसरे स्थान का महोत्सव तीव्र विरोध के फलस्वरूप रोक दिया गया। इसके बाद बुन्देलखण्ड में ८-९ वर्ष तक [कोई] गजरथ महोत्सव नहीं हुआ।

दूसरा कार्य 'सन्मार्ग-प्रचारिणी समिति' का धर्म[...] वंचित धार्मिक व्यक्तियों को (लुहरीसेन, विनेकया, द[...] आदि को) धार्मिक (पूजा-जिनदर्शन आदि का) अधि[कार] दिलाने का था। इन्हें जैन धर्म की मर्यादानुसार धा[र्मिक] अधिकार दिलाने के लिए जोरों से आंदोलन चलाया ग[या] जिसका स्थिति पालक रूढ़िवादियों ने काफी वि[रोध] किया। पर यह आंदोलन बड़ा प्रभावी था। इ[सके] फलस्वरूप अधिकांश स्थानों में समाज ने विनैका[...] दस्सा कहाने वाले जैनियों को जिनदर्शन आदि [की] छूट दे दी।

राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भाग एवं कारावास——

सन् १९४२ के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी विद्या[लय] में रहते हुए मैंने सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन [में] भाग लिया। इस आन्दोलन में मुझे ५ माह तक [...] जैल में सजा काटनी पड़ी। श्री नन्हेंलाल जी बुखा[रिया] भी ५ माह मेरे साथ जैल में रहे।

यहाँ यह सब लिखने का प्रयोजन यही है कि [...] विद्यालय उस समय केवल विद्यार्थियों के पठन-पाठ[न] केन्द्रमात्र ही न था, अपितु सामाजिक धार्मिक सु[धार] राष्ट्रीय चेतना की जागृति आदि का भी यह प्रमुख [...] था। इस विद्यालय के भीतर ही सब प्रकार की [...] होती, चर्चायें होतीं, प्रस्ताव पास होते और उन्हें [...] में लाने की विधियाँ भी लिखाई-बताई जाती थीं। [...] बीना के बाहर के व्यक्ति भी आया करते थे। वे [...] सहयोग देने के साथ-साथ इन राष्ट्रीय आन्दोलनों [में] स्वयं भी भाग लेते थे। पं० वंशीधर जी, पं० फू[लचन्द] जी, बुखारिया नन्हेंलाल जी धार्मिक सामाजिक सुधा[र के] प्रमुख नेता होने के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना में [...] मार्गदर्शक व प्रेरक भी थे। इन सब आंदोलनों का [...] केन्द्र यही बीना-विद्यालय ही था। विद्यालय ने [...]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन सब कार्यों में पूरी स्वतन्त्रता देकर अपनी महती उदारता का परिचय दिया ।

विद्यालय हितार्थ कई संकटों का सामना—

विद्यालय एवं मन्दिर की सम्पत्ति के संरक्षणार्थ यदा-कदा मुझे कई संकटों का भी सामना करना पड़ा, पुलिस द्वारा गिरफ्तार होना पड़ा, मुकद्दमा लड़ना पड़ा और गवाही देने खुरई अदालत में जाना पड़ा ।

अन्य सहयोगी—

इस विद्यालय के अन्य सहयोगियों में एक रामपुर-सिरौंजीपुर-निवासी श्री भदईंलाल जी नायक हैं । ये प्रसन्नचित्त, मनमौंजी और उदारवृत्ति के व्यक्ति थे । आपको सैकड़ों कविताएँ, लतीफे, कहानियाँ, व्याख्यान मौखिक याद थे । ये अपनी कविताओं आदि में जीवन में नई उमंगे भर देते थे । आपके बिना बीना-समाज का कोई भी उत्सव सम्पन्न नही होता था । नृत्य और गान के भी आप बड़े शौकीन थे । धार्मिक उत्सवों में घुघुरू बांधकर बेझिझक नृत्य कर आप धार्मिक प्रभावना में सहायता करते थे । आप एक अच्छे अतिथि-सत्कार करने वाले भी थे । आपने विद्यालय की उन्नति में सदैव अपना सहयोग दिया है ।

इस विद्यालय के सहयोगियों में दूसरे व्यक्ति हैं श्री रामचन्द्र जी नवाल । जैन न होते हुए भी ये सेवा-भाव से विद्यालय के छात्रों को ड्रिल और एक्सरसाईज कराने प्रतिदिन ठीक समय पर यहाँ के प्रांगण में आकर अपना अमूल्य समय देते थे । आपके सम्पर्क से मुझे पं० नेहरू, ठक्कर बप्पा आदि प्रमुख भारतीय नेताओं से प्रत्यक्ष मिलने और बातचीत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ ।

मेरे समय के कतिपय प्रतिभाशाली छात्र—

मेरे कार्यकाल में बीना-विद्यालय से निकले हुए विद्यार्थियों में दर्शनाचार्य श्री गुलाबचन्द जी जबलपुर, मोतीलाल जी इन्जीनियर, डा० चिरंजीलाल जी विदिशा, गुलाबचन्द जी डालमिया नगर, डा० क्षमाधरजी पिड़रुआ अदि प्रमुख हैं । ये सब प्रकार से संपन्न होकर समाज-सेवा कर रहे हैं ।

अविस्मरणीय यादें—

मैं बीना में करीब १०-११ वर्ष बड़े गौरव व आनन्द से रहा । इन वर्षों में विभिन्न उतार-चढ़ाव खट्टे-मीठे अनुभव और सुख-दुःख के अवसर मुझे प्राप्त हुए । सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय संस्कारों से बीना-विद्यालय और बीना-समाज की छत्रच्छाया में संस्कारित हुआ, पनपा और उन्नति को प्राप्त हुआ । बीना-समाज ने मुझे जो स्नेह व वात्सल्य दिया है वह सर्वसुलभ नहीं है । मुझे जो सहारा, सम्मान, अपरिमितप्रेम-प्रकाश देकर मेरा स्थितिकरण, उपबृंहण और परिवर्धन किया है, उसे मैं जीवनभर नहीं भूलूँगा ।

ऐसा नहीं कि बीना-समाज में उस समय पार्टी-बन्दी न थी, पर मैं इसका पूरे समय अपवाद रहा । पूरी जैन-समाज ने मुझे बिना किसी भेदभाव के अपनाया । जब कभी मैं अकेला रहा तो महीनों मुझे घर पर भोजन नहीं बनाना पड़ा । किसी न किसी मित्र के यहाँ से भोजन का आमन्त्रण आता ही रहता था । कभी-कभी तो आग जलाने या आटा गूंथे जाने पर भी लोग जबरदस्ती बड़े अनुग्रह से भोजनार्थ अपने घर लिवा ले गये । मेरी बीमारी या अर्थाभाव के समय में भी मुझे सब प्रकार का सहयोग यहाँ मिला है ।

यहाँ के प्रेरक अमिट संस्कार—

पाठशाला या विद्यालय के कार्यों में भी मुझे सभी से सब प्रकार का सहयोग सदैव मिला । यह सब बीना विद्यालय का मेरे ऊपर महान् उपकार है । यहाँ के संस्कार ही मुझे आगे बढ़ने में प्रेरक बने । इन्हीं संस्कारों के बल पर मैंने अपने जीवन का लक्ष्य सदा पवित्र और शुद्ध बनाया । फलतः इस कार्य में आज भी मैं सफल हूँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और जीवन के अन्तिम भाग में उन धार्मिक संस्कारों की प्रेरणा से व्रत लेकर आत्म-कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण में निरत हूँ ।

वीना-विद्यालय पवित्र पुण्य तीर्थ——

किसी के लिए बीना-विद्यालय कुछ भी रहा हो; किन्तु मेरे लिए तो आज भी वह पवित्र तपोभूमि है, पुनीत तीर्थ है, जहाँ का एक-एक कण शुचिता-पवित्रता की प्रेरणा आज भी मुझे वह दे रहा है । जब भी मैं बीना जाता हूँ तो वह पवित्र स्थान देखकर श्री जिनेन्द्र भगव[ान्] के चरणों के दर्शनों के साथ-साथ इस विद्यालय की पवि[त्र] भूमि के समक्ष मेरा मस्तक श्रद्धा और विनय से न[त] हो जाता है ।

इस परम उपकारी विद्यालय की हीरक जयन्ती के पुनीत अवसर पर समारोह की निर्विघ्न सम्पन्नता हे[तु] मेरी शुभकामनाएँ प्रेषित हैं ।

—श्री वर्णीव्रती आश्रम, मढ़िया जी, जबलपु[र]

हेयोपादेयविज्ञानं नो चेद् व्यर्थः श्रमः श्रुतौ ॥

विद्या (शास्त्र) पढ़ने का फल हेय और उपादेय का परिज्ञान होना ही है; किन्तु यदि शास्त्रों को पढ़कर हेय और उपादेय का ज्ञान नहीं हुआ—किसमें हमारा (आत्मा का) हित है और किसमें अहि[त] है—यह समझ पैदा नहीं हुई तो श्रुताभ्यास में परिश्रम करना व्यर्थ हुआ ।

क्षत्रचूड़ामणि—२-...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुसंस्कारों का बीजारोपण

● श्री विनोद कुमार जैन

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन सं० विद्यालय में रहकर पढ़ने का सौभाग्य यद्यपि मुझे मात्र दो वर्षों का ही मिला तथापि मेरे दिशाहीन ज्ञानहीन जीवन के लिए सन्मार्ग-दर्शन व जीवन शक्ति एवं ज्ञानज्योति प्रदायक यही विद्यालय सिद्ध हुआ। उस समय सौम्य, सरल एवं मृदु-स्वभावी पं० धर्मदास जी धर्माध्यापक थे। कठोर अनुशासनप्रिय पर उदारहृदय पं० मोतीलाल जी साहित्याचार्य साहित्य एवं व्याकरण का अध्यापन करते थे। अँग्रेजी का शिक्षण श्री सन्तोष कुमार जी करते थे। इन सभी ने मेरे अन्धकाराच्छन्न हृदय में ज्ञान-चेतना का जागरण कर मुझे उन्नत स्वावलम्बी जीवन की ओर प्रेरित व अग्रसर किया। एतदर्थ मैं इन सबका बड़ा ऋणी हूँ।

उस समय विद्यालय में रहने-पढ़ने, भोजन, व्यायाम तथा खेलकूद का अच्छा प्रबन्ध था। दिनचर्या बड़ी सुव्यवस्थित थी, जिसका पालन सभी छात्र करते थे। गुरुजन निःस्वार्थभाव से ज्ञानदान देकर छात्रों को उन्नति की ओर बढ़ने की प्रेरणा और मार्ग दर्शन दिया करते थे। योग्य. मेधावी तथा सच्चरित्र बनकर अपना तथा विद्यालय का नाम रोशन करने के लिए उत्साहित किया करते थे। लेकिन कतिपय पारिवारिक कठिनाईयों के कारण मैं इस विद्यालय में अपना अध्ययन काल पूर्ण नहीं कर सका। इसका मुझे आज भी पश्चाताप है और जीवन भर वह रहेगा।

पर मेरे उस छात्र जीवन में जिन अच्छाईयों, सद्गुणों और संस्कारों का बीजारोपण हुआ वे आज भी अमिट है। उसी छात्र जीवन में मुझे अपूर्व प्रेरणा शक्ति, अदम्य उत्साह और नव-ज्योति का प्रकाश प्राप्त हुआ है, जो हमारे जीवन का ठोस आधार बना। जिसके फलस्वरूप मैं अपने जीवन में आज भी सफल हूँ। इस विद्यालय की हीरक जयन्ती के पावन प्रसंग पर मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि यह विद्यालय समाज के बालकों का जीवन-निर्माण करता हुआ उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होकर महाविद्यालय का रूप धारण करे। अनन्त शुभकामनाओं के साथ—

अध्यक्ष (संगठक) अ० भा० कांग्रेस
सेवादल, ब्लाक अशोक नगर (म.प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करे देश – कल्याण यह

—पं० प्रेमचन्द्र "दिवाकर" शास्त्री

नाभिनंदन जैन दिगम्बर विद्यालय संस्कृत ये नाम ।
ऐसे सोहे स्नातक मण्डल नभ में जैसे तारा धाम ॥
वर्ष पचहत्तर पूर्व स्थापित तब से अब तक कार्य निरत ।
भारत में संस्कृत के ज्ञाता फैले जैसे तारा शत ॥
कार्य दक्षता भाषा विज्ञता से सोहे स्नातक - मण्डल ।
हीरक जयन्ती आज मनाकर हर्षाया है भू - मण्डल ॥
इस विद्यालय विद्या - तरु से उपकृत है यह देश समाज ।
हमें आज गौरव है इस पर ज्ञान - सूर्य का बनकर ताज ॥
संस्कृत भाषा ही जननी है भारत - भाषा मानकी ।
इसे सीखना और सिखाना बच्चों के कल्याण की ॥
जिसने इसे संवारा देकर तन. मन अपना नेकी धन ।
उसका नाम यशो गाथा से याद किया जाए निशदिन ॥
संस्कृत विद्या के मंदिर को दान करो तो धन रक्षित ।
वारि - प्रवाह से जैसे सर का मूल तोय हता रक्षित ॥
केवल शब्दों भावों से मैं करूँ भावना शुभ की यह ।
सदा विकासी प्रातोदय सा करे देश कल्याण यह ॥

—मंत्री - अ भा. श्री वर्णी स्नातक परिषद्
वर्णी स्मारक भवन, बाहुबलि नगर,
सागर (म. प्र.) ४७०००२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड तृतीय

विद्यालय प्रगति विवरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय वक्तव्य

● राजेन्द्र कुमार जैन, अध्यक्ष

ज्ञान समाज न आन जगत में सुख को कारण ।
इहि परमामृत जन्म-जरा-मृत-रोग निवारण ।।'
—पं० दौलतराम जी

'इस संसार में ज्ञान जैसा सुखदायी पदार्थ अन्य कोई दूसरा नहीं है । यह परम अमृत है, जन्म बुढ़ापा और मृत्यु को रोकने वाला है ।' पर इसकी प्राप्ति सहज नहीं है । दुनियाँ में और सभी कुछ तो बड़ी सरलता से पाया जा सकता है—धन भी, सोना भी, जमीन भी, जायजाद भी, राज्य-सुख और सम्पदा भी; लेकिन यथार्थ ज्ञान पाना बड़ा दुर्लभ है । कहा भी है—

'धन कन कंचन राज-सुख सबहि सुलभ करि जान ।
दुर्लभ है संसार में एक यथारथ ज्ञान ।।'

सम्यग्ज्ञान की महिमा अचिन्त्य है । यह जन हितकारी व आत्मोद्धारक है । इसकी प्राप्ति हेतु हमारे पूज्य तीर्थंकरों ने कठोर आत्मसाधना की और दुर्द्धर तप तपे तथा जन-जन के हृदयों तक पहुंचाने के लिए देश के विभिन्न अंचलों में बिहार कर धर्मोपदेश दिए । आचार्यप्रवरों साधुओं तथा मनीषियों ने भी विभिन्न कालों और समयों में इसी हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निवाही है, तथापि २० वीं शताब्दी के पूर्व देशकाल की परिस्थितियों के कारण इस ज्ञानदीप का प्रकाश मद्धिम पड़ गया था । लोग निविड़ अज्ञानान्धकार में पथभ्रष्ट हो रहे थे । ऐसे समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे परम सौभाग्य से १९ वीं शताब्दी के अन्त और २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ ऐसे महापुरुषों का उदय इस भारत-वसुन्धरा पर हुआ, जिन्होंने टिमटिमाते हुए उस ज्ञानदीप को ज्वलन-शक्ति प्रदान की। फलतः कई गुणित वृद्धिगत हुई उसकी ज्योत्सना के आलोक से देश-विदेश के कई अंचल आलोकित हो उठे। ऐसे पुण्य-पुरुषों में गुरु गोपालदास जी वरैया एवं प्रातः स्मरणीय पूज्य गणेश प्रसाद जी 'वर्णी' प्रभृति विशेष उल्लेखनीय हैं।

सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से पूज्य 'वर्णी' जी महाराज की देन अप्रतिम है। उनका सम्पूर्ण जीवन इसके लिए समर्पित रहा। उन्होंने नानाविध आपदाओं-विपदाओं को झेलते हुए इसे स्वयं प्राप्त किया तथा स्थान-स्थान पर लोगों को उद्बुद्ध तथा प्रेरित कर ज्ञान प्रकाशक ज्ञानप्रचारक ज्ञानसाधना के पावन पुनीत मन्दिरों-पाठशाला, रात्रिशाला, विद्यालल; महाविद्यालय आदि को संस्थापित कराया, जहाँ समाज के साधन विहीन निर्धन बालकों के अन्तस् के अज्ञान तिमिर को छिन्न-भिन्न कर पवित्र दिव्यज्ञान की ज्योति से उसे आलोकित किया जाता रहा है। श्री नाभिनन्दन दिग० जैन संस्कृत विद्यालय, बीना भी उसी युग की एक देन है। वह युग धार्मिक जागृति और चेतना का युग था। लोगों में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की अभिरुचि थी। अतः इन पुण्य-पुरुषों की प्रेरणा से इन विद्यामन्दिरों में छात्र संख्या भी असीमित रूप में बढ़ी और वे लाभान्वित भी हुए। अनेक विद्वद्रत्नों को समाज को देने का श्रेय इन्हें प्राप्त है।

धीरे-धीरे देश-काल की परिस्थितियाँ बदलीं। लोग भौतिकता तथा भौतिक समृद्धि की ओर आकृष्ट हुए। फलतः उनकी अभिरुचि संस्कृत धार्मिक शिक्षा से हटकर अर्थकरी लौकिक शिक्षा की ओर बढ़ी जिसका प्रभाव इन संस्कृत विद्यालयों पर भी पड़ा। इन विद्यालयों की छात्र-संख्या दिनोंदिन घटने लगी और जो छात्र प्रविष्ट हुए उनकी रुचि भी मात्र संस्कृत शिक्षा की ओर से कम होने लगी। संस्कृत-शिक्षा प्राप्त स्नातकों के भविष्य की अनिश्चितता, संस्कृत अध्यापकों का अपर्याप्त वेतन तथा समाज में उनकी स्थिति उतनी सम्मानपूर्ण न रहना आदि अने[क] कारण इसके पीछे रहे।

दिन प्रतिदिन घटती हुई छात्रसंख्या से जब सं[स्कृत] विद्यालयों की स्थिति गम्भीर होने लगी तो युगानु[रूप] इनकी शिक्षण व्यवस्था में नूतन परिवर्तन करना अनिवा[र्य] हो गया। अतएव बीना के इस संस्कृत विद्यालय में [भी] तदनुरूप धार्मिक नैतिक शिक्षा के साथ-साथ लौकिक त[था] व्यावहारिक शिक्षा देने की व्यवस्था की गई ताकि उभ[य]विध ज्ञान प्राप्त कर यहाँ के स्नातक आधुनिक परिस्थि[]तियों के अनुरूप अपने जीवन को तैयार कर सकें [और] जैन संस्कृति एवं सभ्यता के जो अमिट संस्कार उन[में] यहाँ डाले गये वे उनके जीवन के अभिन्न अंग बन [] जिससे हमारी सभ्यता एवं संस्कृति लुप्त होने से बच [] तथा वे समाज में धार्मिक जागृति तथा चेतना को [] बनाये रख सकें।

बीना का यह विद्यालय यद्यपि विगत पौन शता[ब्दी] से संस्कृत धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमि[का] अदा करता आ रहा है और जैनधर्म एवं संस्कृति [] प्रचार-प्रसार तथा संरक्षण में योगदान देता आ रहा [] तथापि समग्र जैन समाज इसकी सेवाओं और कार्यों [] अनभिज्ञ है, अपरिचित है। यहाँ के नूतन परिवर्त[नों] की भी समग्र जानकारी अभी समाज को नहीं है। इस[] यहाँ की शिक्षण-सुविधाओं के उचित लाभ से भी वह अ[] तक वंचित है। यहाँ की शिक्षण-सुविधाओं, नूतन प[रि]वर्तनों और कार्यों का लेखा-जोखा सर्वसमाज को प्र[] हो ताकि वह इन सुविधाओं का अधिकाधिक लाभ [] सके – इसी बात को ध्यान में रखकर सभा ने इस [] हीरक जयन्ती का वृहद् आयोजन करने तथा स्मारि[का] प्रकाशित करके का निर्णय लिया।

दूसरे, हमारे जिन पूर्व-पुरुषों ने, चाहे वे संस्[था]पक हों या परम सहायक, संचालक हों या संरक्ष[क] अधिकारी हों या सभासद, अध्यापक हों या अन्य छो[टे] बड़े कर्मचारी, समाजसेवी कार्यकर्ता हों या समाजहि[तैषी]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागरिक, जो कोई भी हों, जिन्होंने इस संस्कृत विद्यालय के सुसंचालन, प्रगति एवं संवर्द्धन में अपना मनसा-वाचा-कर्मणा, प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में अपना सहयोग इसे दिया है, वे सब हमारे अभिनन्दनीय हैं, क्योंकि उन्होंने श्रमण-संस्कृति के उद्घोषक इस विद्यामन्दिर को अपने योगदान से अभी तक सुरक्षित बनाये रक्खा। उन सबके प्रति कृतज्ञ होना हमारा—इस नई पीढ़ी का परम कर्तव्य है। इस कृतज्ञता ज्ञापनार्थ भी हीरक जयन्ती आयोजन और स्मारिका प्रकाशन का औचित्य असंदिग्ध है।

तीसरे, स्मारिका के माध्यम से सभा, विद्यालय एवं संस्था का चौहत्तर वर्षीय एक संक्षिप्त इतिहास संकलित करना भी उक्त आयोजन का एक लक्ष्य है ताकि आगे आने वाली पीढ़ी यह भली भाँति जान सके कि इस विद्यामंदिर की स्थापना, संचालन एवं संवर्द्धन में किन-किन महानुभावों का क्या और कैसा योगदान रहा है? धर्म, समाज एवं संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन में इस विद्यालय की भूमिका क्या रही है? भूतपूर्व छात्र कौन व कैसे हैं? भूतकाल में समाजहितैषी सेवाभावी और त्यागी महानुभाव कौन-कौन हो गये हैं? यह संकलित इतिवृत्त भावी पीढ़ी को प्रेरक व नूतनदिशाबोध देने वाला होगा। उक्त आयोजन का यह तीसरा औचित्य है।

चौथे, उक्त आयोजन हमें अनागत भविष्य के लिए नई दिशा, नई प्रेरणा, नये विचार, नई शक्ति और नया सम्बल भी प्रदान करेगा तथा समाज हितैषी विद्वानों; समाज प्रमुखों; चिन्तकों विचारकों और शिक्षाविदों से हमें विद्यालय के सुसंचालन एवं शिक्षण-व्यवस्था के सम्बन्ध में नये विचार और तौरतरीके प्राप्त हो सकेंगे जिनके अनुसार शिक्षण व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन कर इस विद्यालय को समाज के लिए अधिकाधिक उपयोगी बना सकेंगे, ताकि समाज इससे अधिक से अधिक लाभान्वित हो सके। हमारा सभी समाजहितैषी महानुभावों एवं शिक्षाविदों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपने अमूल्य सुझाव उक्त सन्दर्भ में प्रेषित कर हमें अनुगृहीत करने का कष्ट करें ताकि हम विद्यालय को और भी समाजोपयोगी रूप दे सकें।

पांचवें, सभा ने अभी तक इस प्रकार का आयोजन इसके पूर्व कभी नहीं किया। फलतः आज हम युवापीढ़ी के लोग अपने पूर्वजों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व से अपरिचित हैं। अपने विगत के बारे में केवल वयोवृद्धों के श्रीमुख से ही अत्यल्प जानकारी हमें आज मिल पाती है। अतीत एवं वर्तमान की स्मृतिस्वरूप यह 'स्मारिका' अनागत भविष्य में बहुत काल तक भावी पीढ़ी को प्रेरक तथा दिग्दर्शक बनेगी। इसका एक औचित्य यह भी है।

छठवें, स्मारिका में समाविष्ट अधिकारी विद्वानों की लेखनी से प्रसूत लेखों, संस्मरणों व श्रेष्ठ विचारों की अवगति सुविज्ञ प्रबुद्ध पाठकों और समाज के कर्णधारों को कराना भी इस का एक लक्ष्य रहा है।

सातवें, इस प्रकार के प्रेरक आयोजनकर यहाँ नूतन परम्पराओं की शुरुआत करना और आगे के लिए ऐसी ही तथा इसी प्रकार की अन्य परम्पराओं के निर्वाह हेतु मार्ग प्रशस्त करना भी इसका एक अन्य लक्ष्य है।

उक्त विविध लक्ष्यों को ध्यान में रखकर ही श्री ना. नं दिग जैन हितोपदेशिनी सभा ने विद्यालय की हीरक जयन्ती मनाने और स्मारिका प्रकाशित कराने का निर्णय दि....................की बैठक में लिया और उसे मूर्तरूप देने के लिए हम सचेष्ट हुए। किसी बृहद् आयोजन को करने का निर्णय लेना जितना आसान है, उसे मूर्तरूप देकर सम्पन्न करना उतना ही कठिन है। अतएव आदरणीय पं. बंशीधर जी व्याकरणाचार्य से मार्गदर्शन एवं अपेक्षित सहयोग देने हेतु विनम्र अनुरोध किया और स्मारिका का कार्य सम्भालने के लिए आग्रह किया, लेकिन उन्होंने अस्वस्थतावश किसी भी प्रकार का सहयोग देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। पर उनका शुभाशीर्वाद हमें मिला। उन्होंने हीरक जयन्ती वर्ष के शुभारम्भ पर अध्यक्षता कर हमें अनुगृहीत किया, जिसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

स्मारिका के प्रकाशन जैसे आवश्यक एवं महत्वपूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्य को सम्पन्न करना हर किसी के वश की बात नहीं होती। इसे तो कोई योग्य व्यक्ति ही पूरा कर सकता है। अतएव इसके सम्पादनार्थ आदरणीय पं. श्री अभयकुमार जी शास्त्री से विनम्र अनुरोध किया। यद्यपि वे अनेक पारिवारिक दायित्वों से घिरे थे और शासकीय सेवा में थे तथापि उन्होंने हमारे अनुरोध को स्वीकार किया और कार्य में जुट गये; लेकिन 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' की कहावत यहाँ चरितार्थ हुई। अगस्त से नवम्बर तक ४ माह में उन्हें दो बार ट्रान्सफर की परेशानियाँ झेलनी पड़ीं और उनके निरस्तीकरण में बहुत पापड़ बेलना पड़े। साथ ही स्मारिका हेतु अभीष्ट सामग्री के संकलन में इन्हें जिन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा, उनका यहाँ उल्लेख करना मैं अनावश्यक समझता हूँ। फिर भी ऐसी गम्भीर कठिन परिस्थितियों के बीच भी दिन-रात श्रम करके उन्होंने स्मारिका के कार्य को गति दी, अभीष्ट सामग्री संकलित कर विवरण प्रस्तुत किये और कार्य को पूरा किया, जो आशातीत है। उनकी कार्यपटुता, श्रमशीलता, लगन और निष्ठा सराहनीय है। एतदर्थ हम उनके बड़े आभारी हैं।

इस विद्यालय की हीरक जयन्ती के महान् अवसर पर इस स्मारिका को प्रकाशित करते हुए हम बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं कि इस अभूतपूर्व कार्य को सम्पन्न करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। इसमें कुछ कमियाँ हो सकती हैं। वे हमारी कतिपय कठिनाइयों या परिस्थितियों के कारण हो सकती हैं। वैसे इसमें समग्रता लाने का प्रयास हमने किया है। फिर भी अ... कमियों के लिए हम आपसे क्षमा चाहेंगे।

संस्कृत विद्यालय जैन संस्कृति के कीर्ति-स्तम्भ ... जैनधर्म एवं संस्कृति के संरक्षक, प्रचारक व प्रसारक ... सम्यग्ज्ञान के प्रकाशस्तम्भ हैं। इनका संरक्षण, पोषण ... सम्वर्द्धन करना समाज का दायित्व है। हम यदि अ... संस्कृति एवं सभ्यता को लुप्त होने से बचाना चाहते ... तो हमें इनके उद्धार का सतत प्रयास करते रहना चाहि... और अपने बालकों को इनमें प्रवेश दिलाकर यहाँ ... सुविधाओं का लाभ लेना चाहिए। श्री ना. नं. दिगम्... जैन स. विद्यालय भी समाज की अपनी संस्था है। सम... हित इसका सर्वोपरि लक्ष्य है, अनेक शिक्षण-सुविधाओं ... सम्पन्न है। इसने समाज को अनेक विद्वद्रत्न दिए हैं ... अपनी सेवाओं से समाज को उपकृत कर रहे हैं ... सदाचार, सद्विचार और सम्यग्ज्ञान का प्रचार-प्रसार ... लोगों को सत्पथ दर्शा रहे हैं। समाज को यहाँ की शिक्... सुविधाओं से लाभान्वित होना चाहिए।

अन्त में, मैं सभा की ओर से उन सभी के ... आभार तथा कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने स्मारि... हेतु शुभाशिष, शुभकामना, संस्मरण तथा लेखादि भेजक... हमें अनुगृहीत किया है।

—अ...

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर ...
हितोपदेशिनी सभा, ...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशन संस्था

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन हितोपदेशिनी सभा का संक्षिप्त परिचाय

● बिमलकुमार सराफ, मंत्री

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन हितोपदेशिनी सभा बीना नगरीय जैन समाज की प्रतिनिधि संस्था है जो म० प्र० शासनान्तर्गत सोसाइटी एक्ट के अधीन रजिस्टर्ड है। इसका एक निश्चित विधान है। उसी के अनुसार यह कार्य करती है। सभा के विधान में इसके निम्नाँकित ८ उद्देश्य निर्धारित हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१—पाठशाला के माध्यम से छात्रों को दिगम्बर जैन-धर्म के सिद्धान्तों का ज्ञान और लौकिक शिक्षा देना।

२—स्थानीय जनता में वाचनालय के द्वारा धार्मिक तथा लोकोपयोगी ज्ञान बढ़ाना।

३—औषधालय द्वारा रोगियों की चिकित्सा कराना।

४—श्री मन्दिर जी के द्वारा समाज में धार्मिक प्रचार व जागृति करना।

इस तरह यह 'सभा' श्रीदिग० जैनसमाज की प्रतिनिधि संस्था है और इसका उद्देश्य गृहस्थों के धर्म, अर्थ, काम (सुख) और मोक्ष-इन चतुर्विध पुरुषार्थों में उनकी मदद करके उनकी जीवन्त उन्नति में योगदान देना है। इसके विशद उद्देश्यों को अग्रिम सारिणी में दर्शाया गया है। इन्हीं के अनुसार कार्यकर यह सभा धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक उन्नति में समाज को सहयोग दे रही है।

सभासद और सभा का चुनाव:—

इस 'सभा' के कुल ३१ सदस्य स्थानीय समाज के प्रतिनिधि होते हैं। इन्हें वीना जैनसमाज के समस्त व्रत-भंड़ार दाता चुनते हैं। मतदाता बनने के लिए सामान्य नियम यह है कि वह वीनानगर का वयस्क जैन हो, श्रीमन्दिर जी को व्रतभंडार देता हो, पर सभा का सदस्य बनने हेतु उसे इस ट्रस्ट (सभा) का वैतनिक कर्मचारी नहीं होना चाहिए। वाकी सभी मतदाता इस सभा के सदस्य होने की पात्रता रखते हैं। सभा का कार्यकाल ६ वर्ष का होता है। ६ वर्ष वाद अग्रिम ६ वर्षों के लिए पुनः प्रतिनिधि चुने जाते हैं। चुनाव निष्पक्ष प्रिसाईडिंग आफीसर की उपस्थिति में गुप्त मतदान प्रणाली द्वारा होते हैं।

सभा का कार्य संचालन:—

प्रतिदिन के कार्यसंचालनार्थ यह सभा इन्हीं ३१ सदस्यों में से ११ सदस्यों की एक प्रबन्धकारिणी समिति बनाती है, जिसमें ५ अधिकारी और ६ सदस्य होते हैं। सभा तथा प्रबन्धकारिणी की वैठकें समय-समय पर होती रहती हैं जिनमें वजट मीटिंग और संस्थागत कार्यों के अलावा सामाजिक और धार्मिक कार्यों के विषय में निर्णय सर्वसम्मति या वहुमत के आधार पर होते हैं।

सभा की तरफ से कार्य-सम्पादन का सम्पूर्ण दायित्व ११ सदस्यों की प्रबन्धकारिणी कमेटी को है जो सभा द्वारा निर्धारित कार्यों को बजट-अनुसार सम्पन्न करती है। प्रबन्धकारिणी की राय के अनुसार दिन प्रतिदिन के कार्यों को सुचारुरूप से सम्पन्न मन्त्री ही कराता है। इस तरह अप्रत्यक्षरूप से अध्यक्ष की राय के अनुसार मन्त्री ही समस्त कार्यों को करने के लिए जिम्मेवार होता है।

सभा के अन्तर्गत सँस्थाएं:—

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन हितोपदेशिनी सभा के अन्तर्गत निम्नांकित संस्थाएँ संचालित हैं—

१. श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय
२ श्री नाभिनन्दन दिग. जैन उच्चतर माध्य. कन्याशाला
३. श्री नाभिनन्दन दिग. जैन पूर्वमाध्यमिक कन्याशाला
४. श्री नाभिनन्दन दिग. जैन रात्रिशाला
५. श्री नाभिनन्दन दिग. जैन मन्दिर वीना-इटावा प्रबन्ध
६. त्रिशला सिलाई केन्द्र
७. श्री ना. नं. दिग. जैन धर्मशाला

इनके अतिरिक्त श्री महावीर दि. जैन धर्मार्थ औषधालय वीना को औषधि वितरण हेतु १२००) वार्षिक अनुदान भी इस सभा की ओर से दिया जाता है। इसके सिवाय सभी धार्मिक आयोजनों की व्यवस्था एवं सम्पन्नता के दायित्वों का सम्पूर्ण निर्वाह सर्व समाज के सहयोग से यह सभा ही करती है। नगर में पधारे हुए त्यागी, व्रती, विद्वान् आदि की व्यवस्था तथा प्रबन्ध में पूरा-पूरा सहयोग देना भी इस सभा का कार्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभा के रजिस्ट्रेशनः—

यह सभा मध्यप्रदेश सोसाइटी एक्ट के अन्तर्गत सन् १९३५ में ही रजिस्टर्ड हो चुकी थी, तथापि म. प्र. शासन के निर्देशानुसार सन् १९५३ में यह पब्लिक ट्रस्ट एक्ट के अन्तर्गत भी रजिस्टर्ड हो चुकी है। अतएव सन् १९५३ से इसका हिसाब प्रतिवर्ष लेखा परीक्षक द्वारा जांच कराया जाता है। आयकर अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत यह सभा धार्मिक पारमार्थिक न्यास घोषित किया गया है। अतः यह आयकर से मुक्त है और जो इसे दान या आर्थिक सहायता देता है, उसे भी आयकर अधिनियम की धारा १० के अन्तर्गत आयकर से छूट मिलती है।

सभा के आय के स्रोत एवं व्ययः—

श्री नाभिनन्दन दि जैन हितोपदेशिनी सभा, जो कि एक न्यास है, की कुल चल-अचल सम्पत्ति लगभग ६६६२५०) की है। कृषि और भवन-किराया इसकी आय के प्रमुख स्रोत हैं। वर्ष १९८०-८१ के बजट के अनुसार अनुमानित आय-व्यय का ब्योरा इस प्रकार हैं—

आय	
व्रतभंडार-गोलक	३०००)
विशेष आय	१५००)
किराये से प्राप्त	२१०००)
कृषि से प्राप्त	६१०००)
व्याज से प्राप्त	२४५००)
क्षतिपूर्तिविलसे	६०००)
प्रवेशफीस से	२५)
योग	११७०२५)

व्यय	
श्री मन्दिर जी प्रबन्धादि	९५२०)
श्री धर्मशाला	२०००)
संस्कृत विद्यालय	३१४००)
उच्चतर मा क. शा. पूर्वमा क. शाला	५४०००)
त्रिशला सिलाई केन्द्र	२२६०)
रात्रि कन्या पाठशाला	१०००)
विशेष उत्सव	१०००)
अनुदान में	१८००)
सामान्य	८५००)
कर आदि	३००)
भवन मरम्मत आदि	४०००)
योग	११६८८०)

'सभा' का जन्म, उदय और प्रगति-विवरण—

बीना नगर में जैन समाज का अस्तित्व बहुत समय पूर्व से है। यहां के श्रीमन्दिर सबसे प्राचीन प्रतिमा वि० सं० ११३७ की है और उसके बाद की शताब्दियों की प्रतिमाएं भी यहाँ हैं। इससे शताब्दियों पूर्व यहाँ जैन समाज का अस्तित्व सिद्ध होता है। जैन समाज का अस्तित्व सामाजिक संगठन (जैन पंचायत) की भी सिद्धि करता है, क्योंकि जहाँ एक ही समाज के ४ परिवार होते हैं, उनमें भी सामाजिक संगठन का छोटा रूप देखा जाता है, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः पूर्वकाल में यहाँ भी जैनियों का सामाजिक संगठन अवश्य रहा होगा, भले ही उसका नाम और रूप कुछ भी रहा हो। पर 'जैन हितोपदेशिनी सभा' के नाम से सामाजिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संगठन का जन्म, उदय और संगठन यहाँ वि०सं० १९१५-१६ के लगभग हुआ जब यहाँ के मन्दिर जी का निर्माण और विस्तार हुआ। इसके वाद सं. १९३७ में यहाँ गजरथ भी चले और समय-समय पर श्रीमन्दिर जी को दान-स्वरूप चल-अचल सम्पत्ति भी मिली, जिसकी देख-रेख और उचित व्यवस्था हेतु समाज समाज सभाज के ही विशिष्ट महानुभावों को नियुक्त कर देती थी, जो मुहत्तिमकार कहलाते थे।

वि. सं. १९६३ में जब इस पाठशाला की स्थापना हुई, तब मन्दिर और पाठशाला का हिसाव-किताव अलग-अलग रखा जाने लगा और तभी यहाँ की जैन पंचायत उक्त दोनों का ही प्रवन्ध 'श्री दिगम्बर जैन हितोपदेशिनी सभा' के नाम पर करने लगी। उस समय मुहत्तिमकार ही यह प्रवन्ध करते थे। सं. १९६३ में निम्नलिखित महानुभाव सभा के मुहत्तिमकार थे।

१- श्री साव नाथूराम जी, संस्थापक
२- श्री दौलत वल्द ललनजू कठरया
३- श्री सिंघई परमानन्द वल्द रामचन्द्र
४- श्री मूलचन्द वल्द कुन्दीलाल कठरया
५- श्री खुमान वल्द सरु कठरया

इसके वाद सं. १९६८ में मन्दिर तथा पाठशाला की उचित व्यवस्था तथा देखभाल के लिए एक प्रवन्ध-कारिणी कमेटी गठित की गई। उसमें निम्नांकित व्यक्ति थे—

१- श्री साव नायूराम जी — संस्थापक
२- श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी खुरई — संरक्षक
३- श्री बुखारिया मूलचन्द जी — सभापति
४- श्री सिंघई परमानन्द जी — उपसभापति
५- श्री कठरया दौलतराम जी — मंत्री
६- श्री माणिक्य चन्द्र जी — सहा. मंत्री
७- श्री मूलचन्द्र जी — कोषाध्यक्ष
८- श्री मोदी मनराखन जी — अधिष्ठाता
९- श्री कठरया नन्हेंलाल जी — हिसाव निरीक्षक
१०- श्री सि. दमरूलाल जी — "
११- श्री नायक सुखलाल जी — हिसाव निरी
१२- श्री सराफ हजारीलाल जी — "
१३- श्री रोकड़या पूरनचन्द जी — "
१४- श्री सराफ मोतीलाल जी — परी
१५- श्री बुखारिया दामोदरदास जी — सुपरिन्टे

इसके वाद संवत् १९८० के पदाधिकारियों की इस प्रकार है—

१- स्व. सिं. श्री नाथूराम जी — संस्था
२- रायबहादुर श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी — संर
३- श्री गणेशप्रसाद जी 'वर्णी' — व्यवस्था
४- श्री सिंघई परमानन्द जी — सभा
५- श्री सिंघई श्रीनन्दनलाल जी — उपसभा
६- श्री कठरया खुमानलाल जी — "
७- श्री कठरया मूलचन्द जी — "
८- श्री मोदी मनराखन जी — "
९- श्री बुखारिया मूलचन्द जी — "
१०- श्री वाबू मूलचन्द जी —
११- श्री कठरया धन्नालाल जी — सहा

इस प्रकार विशिष्ट महानुभावों के सुप्रवन्ध व चालन में मन्दिर तथा पाठशाला का काम उचित ढं चलता था। समग्र जैन समाज की रुचि, लगन ध्यान इन संस्थाओं की उन्नति की ओर रहता साधारण से बुलावे पर समाज के अधिकाधिक लोग हो जाते थे, और मन्दिर तथा पाठशाला के सं तथा सुप्रवन्ध में अपना पूरा-पूरा सहयोग देते थे। जैसी स्थिति उन दिनों नहीं थी कि सूचनाएं देने पर समाज के व्यक्तियों को तो जाने दीजिये इस न्यास के भी उपस्थिति नहीं होते।

सभा का रजिस्ट्रेशन तथा नाम परिवर्तन

इसके अनन्तर दि० ९ फरवरी १९३५ (वि १९९१) को उस समय के कानून के अनुसार एवं पाठशाला की समस्त चल-अचल सम्पत्ति की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस विद्यालय के परम सहायक एवं शुभ चिंतक

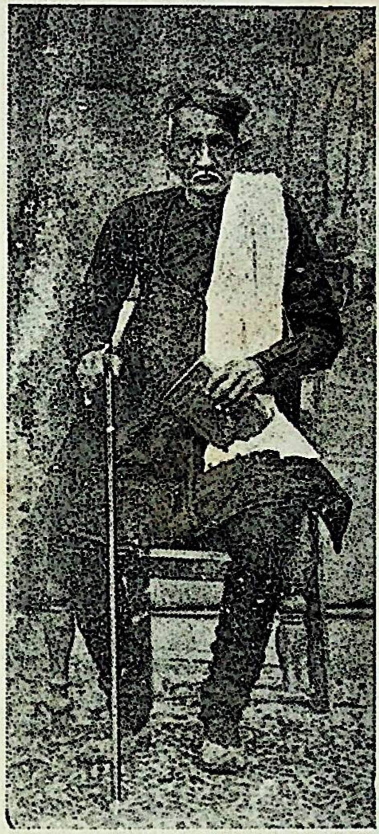

स्व. सिंघई परमानन्द जी

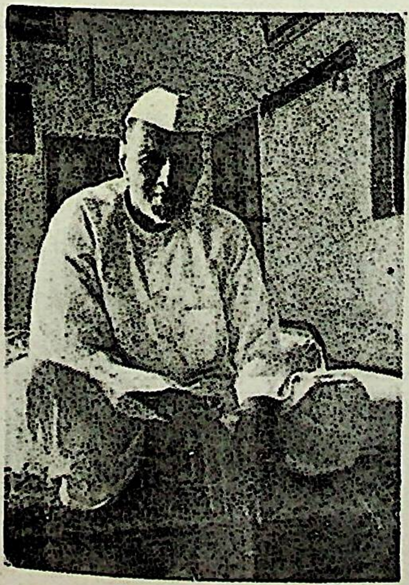

सिंघई श्रीनन्दनलाल जी

सिंघई आनन्दकुमार जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्था के वर्तमान पदाधिकारी

वर्तमान अध्यक्ष

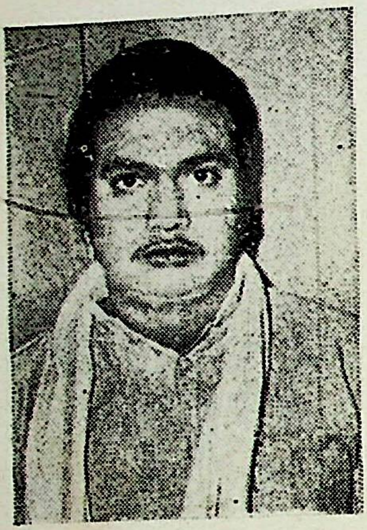

श्री राजेन्द्रकुमार जी कजिया वाले

कन्या शाला के उपाध्यक्ष

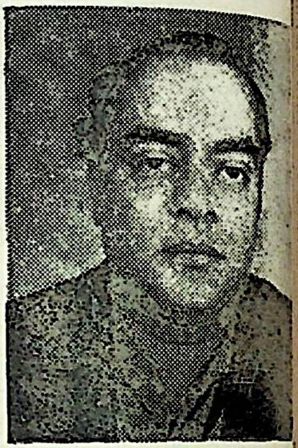

सिंघई राजकुमार जी

वर्तमान मंत्री

श्री विमलकुमार जी सराफ

उपाध्यक्ष

प्रो. एस. एल. जैन

उपमन्त्री

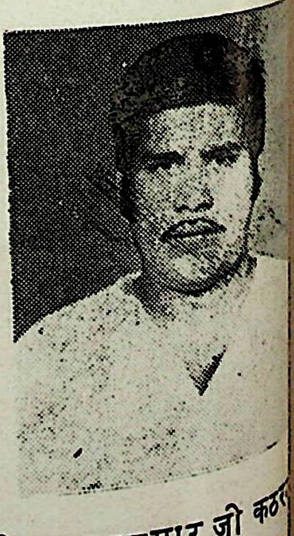

श्री सनमतकुमार जी कठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिसाब-किताव, देख-रेख एवं कार्य संचालन हेतु विचारार्थ आमसमाज की एक बैठक हुई, जिसमें इस सभा का नामकरण 'श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन हितोपदेशिनी सभा' कर दिया गया और इस सभा का एक विधान बनाया गया। विधान का कच्चा ड्राफ्ट चौधरी पन्नालाल जी ने बनाया जिसे मामूली संशोधन के बाद आम समाज ने पारित किया। उसी विधान के अनुसार यह सभा तब से अपना कार्य संचालित करती आ रही है। सभा का एक निश्चित सर्वसमाज-सम्मत एक विधान बन जाने पर मध्यप्रदेश सोसाइटी एक्ट के अन्तर्गत इस सभा का रजिस्ट्रेशन कराया गया जिसका नं १ सन् १९३५-३६ है।

सन् १९३५ में उक्त विधान लागू होने पर इस सभा का जो प्रथम गठन हुआ, उसमें निम्नांकित पदाधिकारी व सदस्य चुने गये:—

१. श्री सिंघई श्री नंदनलाल जी	-अध्यक्ष
२. श्री सिंघई आनन्दकुमार जी	-वरिष्ठ उपाध्यक्ष
३. श्री कठरया माणिक्यचंद्र जी	-कनिष्ठ उपाध्यक्ष
४. श्री सराफ फूलचन्द जी	-मन्त्री
५. श्री चौधरी पन्नालाल जी	-उपमन्त्री
६. श्री बुखारिया नन्हेलालजी	-सदस्य प्रबन्धकारिणी
७. श्री मोदी मनराखनलालजी	-सदस्य प्रव. कारि.
८. श्री कठरया दमरूलाल जी	-सदस्य प्रव. कारि.
९. श्री कठरया मौंजीलाल जी	-सदस्य प्रव. कारि.
१०. श्री नायक मुन्नालाल जी	-सदस्य प्रव. कारि.
११ श्री पंडित धर्मदास जी	-सदस्य प्रव. कारि.
१२. श्री भायजी गटोलेलाल जी	-सदस्य
१३. श्री कठरया विहारीलाल जी	-सदस्य
१४. श्री नायक धन्नालाल जी	-सदस्य
१५. श्री चौ. वट्टूलालजी वालावे	-सदस्य
१६. श्री नन्हेलाल जी पुजारी	-सदस्य
१७. श्री सिं. भैयालाल जी	-सदस्य
१८. श्री गुलझारीलाल जी (अड़कू)	-सदस्य
१९. श्री सराफ भैयालाल जी	-सदस्य
२०. श्री घिया खेमचंद जी	-सदस्य
२१. श्री विहारीलाल जी (लावरे)	-सदस्य
२२. श्री मन्नूलाल जी बड़कुल	-सदस्य
२३. श्री गुलझारीलाल जी (मोती.)	-सदस्य
२४. श्री चौ सवाईलाल जी	-सदस्य
२५. श्री बावू मुन्नालाल जी	-सदस्य
२६. श्री कठरला लालचन्द जी	सदस्य
२७. श्री भैयालाल जी (भोंरदा)	-सदस्य
२८. श्री कठरया पन्नालाल जी	-सदस्य
२९. श्री कठरया बालचन्द जी	-सदस्य
६०. श्री पन्नालाल जी (मृगाव.)	-सदस्य
३१. श्री मनोहरलाल जी मुनीम	-सदस्य

—००—

सन् १९५३ के बाद क्रमश : १९४१, १९४७; १९५३, १९५९, १९६५, १९७१, १९७७ में सभा एवं प्रबन्धकारिणी के चुनाव हुए, जिनमें निम्नलिखित पदाधिकारी क्रमश: अध्यक्ष व मन्त्री चुने गये—

अध्यक्ष

१. श्री सिंघई श्रीनन्दन लाल जी	—सन् १९३५ से १९४३
२. श्री कठरया पन्नालाज जी	—सन् १९४३ से १९४४
३. श्री बुखारिया नन्हेंलाल जी	—सन् १९४४ से १९४६
४. श्री सिंघई आनन्दकुमार जी	—सन् १९४७ से १९५२
५. श्री वावू मूलचन्द जी	—सन् १९५३ से १९५९
६. श्री सिंघई श्री नन्दनलाल जी	—सन् १९६० से १९६२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७. श्री सिंघई आनन्दकुमार जी	—सन् १९६२ से १९७१
८. श्री सिंघई राजकुमार जी	—सन् १९७१ से १९७४
९. श्री लक्ष्मीचन्द जी	—सन् १९७४ से १९७५
१०. श्री सि. श्रीनन्दनलाल जी	—सन् १९७५ से १९७७
११. श्री राजेन्द्रकुमार जी (कंजिया)	—दि. १९-८-१९७७ से वर्तमान में भी

मन्त्री

१. श्री सराफ फूलचन्द जी	—सन् १९३५ से १९३८
२. श्री नन्हेलाल जी बुखारिया	—सन् १९३८ से १९४२
३. श्री पं. बंशीधर जी व्याकरणा.	—सन् १९४३ से १९४४
४ श्री सि. भैयालाल जी	—सन् १९४४
५. श्री गुलझारीलाल जी भायजी	—सन् १९४५ से १९४६
६. श्री शाह अमृतलाल जी	—सन् १९४७ से १९५३
७. श्री पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य	—सन् १९५३ से १९६७
८. श्री सराफ वट्टूलाल जी	—सन् १९६८ से १९६९
९ श्री सि. भैयाथाल जी	—सन् १९७० से १९७१
१०. श्री नन्हेलाल जी बुखारिया	—सन् १९७१ से १९७३
११. श्री सराफ गुलाबचन्द जी	—सन् १९७३ से १९७६
१२. श्री शाह खूबचन्द जी	—सन् १९७६ से १९७८
१३. श्री देशदिवाकर जी	—सन् १९७८ से १९८०
१४. श्री सराफ बिमलकुमार जी	—दि. २१-५-१९८० से वर्तमान में भी

वर्तमान सभा का चुनाव **दि. १४-८-१९७७** को हुआ था, जिसमें श्री पूरनचन्द जी जैन एडवोकेट खुरई की अध्यक्षता में बीना जैन समाज ने गुप्त मतदान द्वारा ३१ सदस्यों को निर्वाचित किया था। तीन वर्ष पूर्ण होने के पूर्व ही नवीन प्रवन्धकारिणी का चु[illegible] दि. २१-५-१९८० को हुआ था। वर्तमान सभा [illegible] प्रवन्धकारिणी में निम्नलिखित महानुभाव सेवारत हैं

१. श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन (कंजिया)	-सभापति
२. श्री कपूरचन्द जी बुखारिया	-वरिष्ठ उपाध्यक्ष
३. प्रो. श्री नन्दनलाल जी जैन	-कनिष्ठ उपाध्यक्ष
४. श्री सराफ विमलकुमार जी	-मन्त्री
५. श्री सन्मतकुमार जी कठरया	-उपमन्त्री
६. श्री सिं. राजकुमार जी	-सदस्य का. का.
७. श्री प्रेमचन्द जी (सेमरा)	-सदस्य कार्यका.
८. श्री अभयकुमार जी शास्त्री	-सदस्य कार्यका.
९. श्री रमेशकुमार जी (मढ़ियावारे)	-सदस्य का.
१०. श्री पद्मचन्द जी भाय जी	-सदस्य का.
११. श्री श्रीकुमार जी	-सदस्य का.
१२. श्री शाह खूबचन्द जी	-सदस्य
१३. श्री देशदिवाकर जी	-सदस्य
१४. श्री महेशचन्द जी टड़ैया	-सदस्य
१५. श्री कपूरचन्द जी सेसई	-सदस्य
१६. श्री शाह निर्मलकुमार जी	-सदस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७. श्री शाह विनोदकुमार जी	-सदस्य सभा	२५. श्री बाबू लक्ष्मीचन्द जी	-सदस्य सभा
१८. श्री खेमचन्द जी घिया	-सदस्य सभा	२६. श्री श्रेयान्सकुमार जी	-सदस्य सभा
१९. श्री लखमीचन्द जी मृगाव	-सदस्य सभा	२७. श्री मुन्नालाल जी ना.	-सदस्य सभा
२०. श्री सिद्धार्थकुमार जी बुखारिया	-सदस्य सभा	२८. श्री बाबूलाल जी (पं. धर्म)	-सदस्य सभा
२१. श्री फूलचन्द जी सैंतपुर	-सदस्य सभा	२९. श्री सुभाष जी मुंगावली	-सदस्य सभा
२२. श्री पवनकुमार जी	-सदस्य सभा	३०. श्री कुन्दनलाल जी सैंतपुर	-सदस्य सभा
२३. श्री चौ. सन्तोषकुमार जी	-सदस्य सभा	३१. श्री सगुनचन्द जी सराफ	-सदस्य सभा
२४. श्री गुलाबचन्द जी सराफ	-सदस्य सभा		

कतिपय उल्लेखनीय कार्य—

विभिन्न अध्यक्षों के कार्यकाल में मंत्रियों द्वारा किये गये कुछ उल्लेखनीय कार्य इस प्रकार हैं:—

(१) पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य के मन्त्रित्व काल में मन्दिर जी के ऊपर एक हाल तथा मन्दिर के पूर्वी दरवाजे के ऊपर स्वाध्यायशाला का निर्माण कराया गया। हाल में स्व. विहारीलाल जी ने २ वेदियाँ बनवाईं औंर उनमें भगवान् पार्श्वनाथ जी तथा भ. बाहुबली जी की मूर्तियाँ स्थापित कराईं।

(२) सन् १९७३ में श्री नन्हेलाल जी बुखारिया के मन्त्रित्व काल में माध्यमिक कन्याशाला शुरू की गई।

(३) भ. महावीर के २५०० वें निर्वाणोत्सव के समय श्री गुलाबचन्द जी सराफ के मन्त्रित्व काल में श्री मन्दिर जी में भव्य चित्रकारी व कांच का कार्य हुआ।

(४) श्री शाह खूबचंद जी के कार्यकाल में सन् १९७८ में यहाँ 'त्रिशला सिलाई केन्द्र' की स्थापना हुई।

(५) सन् १९८० में (श्री सराफ विमलकुमार जी के मंत्रित्व काल में) उच्चतर मा. कन्याशाला में कक्षा ११ वीं खोली गई और ११ वीं की बोर्ड से मान्यता प्राप्त की गई तथा सं. विद्यालय में पूर्वमध्यमा तथा विशारद की पढ़ाई प्रारम्भ की गई।

मन्त्री
श्री नाभिनन्दन दिग. जैन
हितोपदेशिनी सभा, बीना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यालय के संरक्षक

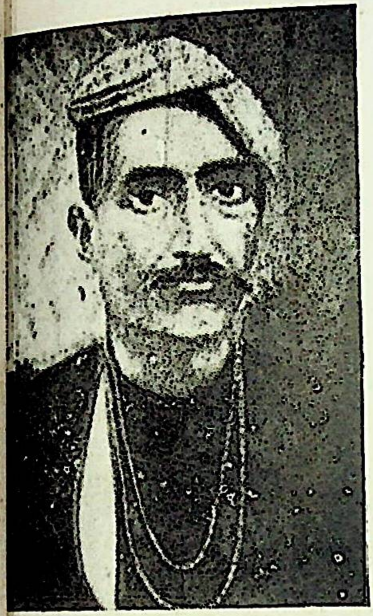

श्री मन्त सेठ स्व. मोहनलाल जी
खुरई

भूतपूर्व विधायक

कृषि पंडित, श्रीमन्त सेठ ऋषभ
कुमार जी खुरई

विद्यालय के भूतपूर्व उपाध्यक्ष

स्व. चौ. पन्नालाल जी बीना

विद्यालय के भूनपूर्व मन्त्री

श्री गुलझारीलाल भायजी

विद्यालय के भूतपूर्व मन्त्री

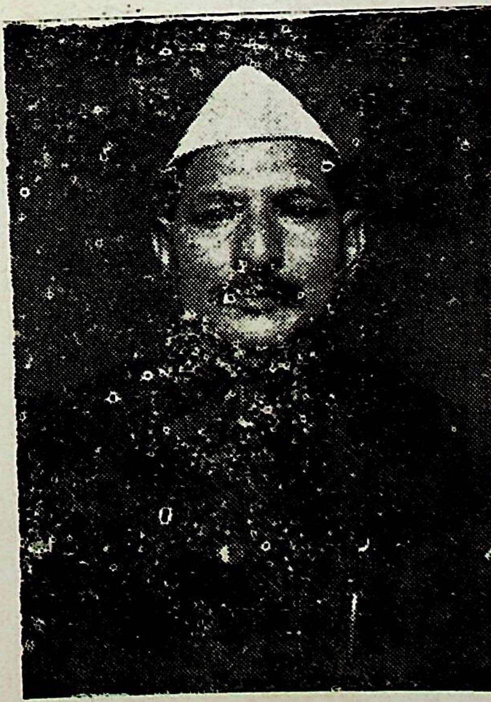

श्री वट्टूलाल जी सर्राफ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनंदन दि० जैन हितोपदेशिनी सभा के सदस्य

श्री गुलावचन्दजी सराफ

श्री श्रेयांसकुमारजी

श्री बाबूलालजी

श्री सिद्धार्थकुमारजी बुखारि

श्री पदमचन्दजी भायजी

श्री महेशचन्दजी टड़ैया

श्री फूलचन्दजी सैतपुर

श्री पवनकुमारजी

श्री सगुनचन्दजी

श्री कुमारजी

श्री चौ० सन्तोषकुमारजी

श्री कपूरचन्दजी सेसई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय का
संक्षिप्त प्रगति विवरण

● विमल कुमार सराफ, साहित्यरत्न

मंगलाचरण

नन्दन नाभि जिनेश हरो भवबाधा सारी !
मेटो कर्म कलेश प्रभु जिनधर्म प्रचारी !!
नहीं सुक्ख लवलेश ज्ञान बिन महादुखारी !
करो ज्ञान अभिवृद्धि नाथ तुम्ह आशा भारी !!
किया कार्य आरम्भ यह चरण आपकी शरण गह !
लाज आपके हाथ है नाभिनन्द जिनराज यह !!

पूर्ण प्रमाणों के अभाव में यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता कि यह बीना-नगर कितना प्राचीन है ? लेकिन यह विल्कुल सुनिश्चित है कि इसका विकास और समृद्धि विगत १०० वर्षों में हुई है। जब से यहाँ रेल-लाइन डाली गई और विभिन्न दिशाओ में यहाँ से रेलमार्ग गये तब से इस नगर में व्यापारादि बढ़े और इसकी समृद्धि हुई; तभी से यहाँ की आबादी भी दिनों-दिन बढ़ी है। अनेक बाहरी व्यक्ति यहाँ आकर वसते गये।

इस विकास के पूर्व भी यहाँ जैनियों की संख्या पर्याप्त थी। यहाँ के श्री दिग० जैन मन्दिर में सबसे प्राचीन मूर्ति वि० संवत् ११३७ की है। इसके अलावा वि० सं० १४४९, १४९७; १५२४, १५२९, १५४३, और १५४८ की भी मूर्तियाँ हैं; लेकिन मूलतः बड़ी-बड़ी मनोज्ञ मूर्तियाँ वि० सं० १९०५ की हैं, जिनकी प्रतिष्ठा बीना-इटावा में ही हुई है। यहाँ के वयोवृद्ध लोगों से प्राप्त जानकारी के अनुसार इस जिनमन्दिर का निर्माण संवत् १९१५-१६ में हुआ और संवत् १९३७ में इसका विस्तार हुआ। इसी समय गजरथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी हुई। यह प्रतिष्ठा स्व० श्री नाथूराम जी ने कराई थी। उस समय के लगभग २०-२५ जैन-परिवारों की जानकारी प्राप्त होती है। इनमें सिं० नाथूराम जी; सिं० गनपतलाल जी, मोदी रावराखनलाल जी, मोदी नाथूरामजी, लदोरे सिंघई, कलू सिंघई, झलकन बड़कुल, मनु मोदी, श्री बुखारिया आदि प्रमुख हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठशाला का सूत्रपात—

वि० संवत् १९६२ में श्री दिगम्बर जैनसभा के उपदेशक पं० श्रीरामदयाल जी वीना पधारे। इन्होंने समाज में धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु जैनसमाज को बहुत समझाया। जिससे प्रेरित होकर यहाँ के कुछ शिक्षा प्रेमी उदार महानुभावों ने धार्मिक शिक्षा हेतु पाठशाला खोलने के लिए दान देने का आश्वासन दिया। इस पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए स्व० साव नाथूराम जी सिंघई ने दि० २६-२-१९०६ को नामा लिखकर इटावा-बाजार का भवन पाठशाला खोलने के लिए दान कर दिया। वर्तमान में यह भवन 'पुराने डाकखाने वाला' कहलाता है। बीच बाजार में स्थित होने से इसकी अनुमानित कीमत एक लाख रुपयों से अधिक है। जन पंचायत ने भी उस सस्ते जमाने में चन्दे से १४००) रुपये एकत्रित किये और उसका ध्रौव्य-कोष स्थापित किया।

इस तरह उल्लखित भवन एवं द्रव्य के प्राप्त हों[illegible] आज से ७४ वर्ष पूर्व श्रीशुभमिति क्वार वदी ११[illegible] १९६३ को पवित्र दीपज्योति के उज्ज्वल प्रकाश मे[illegible] समाज के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लि[illegible] पाठशाला की नींव डाली गई अर्थात् इसकी स्थापना [illegible] गई। उस समय इसका नाम 'श्री हितोपदेशिनी [illegible] जैन पाठशाला' रखा गया इसके वाद वि० सं० [illegible] में माननीय साव नाथूराम जी ने दिनांक १२-९-[illegible] को मौजा ढुरढुरु की पट्टी, सन् १९१० में वजरि[illegible] ६० डिसमिल भूमि, १ वंगला और ६ कोठा इस पाठ[illegible] को दान में दिए और उनके ही प्रयत्नों से सं० १९[illegible] पर्यूषण पर्व के त्यागधर्म के दिन श्री दिग० जैन [illegible] सभा ने अपने वार्षिक अथिवेशन में इस पाठशाला [illegible] सम्वन्ध में प्रस्ताव क्र० २ इस प्रकार पास किया—

प्रस्ताव क्र० २—	निर्णय —
आगामी पाठशाला की सहायतार्थ धर्मादा की एक मद खरीदी या विक्री पर तथा वीजवाढ़ी व्याज पर ऐसी खोली जावे जिससे पाठशाला की सहायता हो।	सराफी सोना चांदी —)।। सैंकड़ा क[illegible] विक्री —) सैंकड़ा देना मंजूर किया जो विक्री [illegible] से कम हो तो खरीद पर देना तय हुआ वीज [illegible] पर पाईमानी गल्ला और व्याज मुनाफा पर १) [illegible] धर्मादा देना सर्वसम्मति से तय हुआ।

इस तरह धर्मादा से एक वर्ष में आय इस प्रकार हुई

खुमानलाल मानकचन्द ९७।।)।।	भैयालाल सराफ २०।।)।।।	श्री नन्दनलाल गल्ला १५।।।)
विहारीलाल ५३।।)	वट्टू चौधरी ३≡)	पूरनचन्द १५। –)।

इस प्रकार पाठशाला सुचारुरूप से चलने लगी; पर काल की गति बड़ी विचित्र है। सं० १९६७ के माघ मास में ही समाज के दुर्भाग्य से माननीय श्री नाथूराम जी सिंघई का स्वर्गवास हो गया एवं समाज नैराशय के भँवर में फँस गई। ऐसे समय पूज्यपाद न्यायाचार्य पं० गणेश प्रसाद जी 'वर्णी' सामने आये और उनके सत्प्रयासों तथा शुभाशीर्वाद से सं० १९६८ में यहाँ छात्रावास की स[illegible] हुई तथा छात्रों को भोजन देना 'हितो० सभा' ने स्वी[illegible] किया। इसी समय माननीय सिं० जी की पुनीत [illegible] स्वरूप संस्थापक के नाम का एक शिलापट्ट विद्याल[illegible] दरवाजे पर लगाया गया, जो आज भी मौजूद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवत् १९६७ में भगवान नाभिनन्दन के नाम पर इस पाठशाला का नाम बदलकर 'श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला कर दिया गया था और और इसके बाद सन् १९३५ में जब इस सभा का रजिस्ट्रेशन हुआ तब से यह 'श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय हो गया।

अध्यापकों का योगदान—

सन् १९०६ में संस्थापित यह विद्यालय शनैः शनैः विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता हुआ ७४ वर्ष पारकर ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर चुका है। इसके सुसंचालन एवं प्रगति में समय-समय पर नियुक्त हुए आदरणीय अध्यापक महानुभावों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। तब से आज तक लगभग २८-३० अध्यापकों ने अपनी अमूल्य सेवाओं से इसे प्रगति-पथ पर आगे बढ़ाया है। इनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से पं० बृजलाल जी मालथौन, पं० धर्मदास जी साढूमल, पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री सिलावन, पं० भवनेन्द्र कुमार जी बांदरी, पं० दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य शाहपुर, पं० मोतीलाल जी एम० ए०, साहित्याचार्य सिहोरा तथा पं० जीवन्धर जी शास्त्री बीना की सेवाएँ तथा योगदान अविस्मरणीय हैं। इनके कार्य-काल में विद्यालय की छात्रसंख्या में वृद्धि हुई, पढ़ाई का स्तर ऊँचा रहा तथा व्यवस्था ठीक रही। ये सभी अध्यापक महानुभाव अपने-अपने विषयों के अधिकारी विद्वान्, कुशल प्रशासक तथा सफल एवं योग्य अध्यापक रहे। पूरी निष्ठा और लगन से उन्होंने कार्य किया। फलतः सभी ओर इस विद्यालय की ख्याति विश्रुत हुई। योग्य और व्युत्पन्नमति छात्र यहाँ से निकले।

इनके सिवाय पं० राजमल्ल जी ग्वालियर भायजी मोतीलाल जी बीना, पं० कमल कुमार जी तीर्थत्रय, पं० राजधर लाल जी गुरसौरा, पं० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, वाराणसी आदि अध्यापक महानुभावों ने अपनी सेवाओं से इस विद्यालय को प्रगति-पथ पर आगे बढ़ाया है। भूतपूर्व अध्यापकों की सूची उनके स्थान तथा कार्यकाल के विवरण के साथ आगे दी गई है। तथा यहाँ के वयोवृद्ध तथा भूतपूर्व अधिकारी आदरणीय नन्हेंलाल जी बुखारिया ने अपने संस्मरण में इन अध्यापकों की सेवाओं तथा योगदान पर अच्छा प्रकाश डाला है वह पठनीय है।

सभी अध्यापक महानुभावों की प्रमादरहित सेवा. निष्ठा, लगन और मेहनत के फलस्वरूप ही यह विद्यालय अपनी यशस्वी प्रगति के ७५ वें वर्ष में प्रवेश कर सका है अन्यथा ऐसे अनेक विद्यालय खुले; लेकिन आर्थिक स्थिति बिगड़ने से अथवा छात्रों के न आने से बन्द हो गये। पर यह विद्यालय कई रुकावटों और थपेड़ों के बावजूद भी आज कायम है और प्रगति-पथ पर अग्रसर है जिसका श्रेय हमारे मान्य गुरुवृन्द, संस्थापक, शुभचिन्तक संचालक और शिक्षाप्रेमी उदार दान-दाताओं को है।

विद्यालय के छात्र—

प्रारम्भ से आज तक इस विद्यालय की छात्र संख्या सदा एक सी नहीं रही। यह सदैव घटती बढ़ती रही है। सर्वोत्तम वर्षों में यह संख्या ४०-४५ तक अधिक से अधिक रही है। जिसका औसत २० छात्र प्रतिवर्ष आता है। योग्य परिश्रमी अध्यापकों के कार्यकाल में छात्र-संख्या काफी रही। ३५ से ४५ के बीच प्रायः रही है।

इस विद्यालय के छात्र योग्य प्रतिभाशाली तथा व्युत्पन्नमति रहे हैं, जिन्होंने आगे चलकर अपने को समुन्नत तथा श्रेष्ठ बनाया है और समाज को नूतन दिशा-बोध देकर सचेतन व जाग्रत किया है। जैन धर्म, साहित्य एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार तथा समृद्धि में यथाशक्ति योगदान दिया है, जिससे इस विद्यालय की प्रतिष्ठा बढ़ी है। यहाँ के कतिपय भूतपूर्व छात्रों की सूची आगे दृष्टव्य है।

इस विद्यालय के छात्र योग्य धार्मिक सदाचारी, कर्तव्यनिष्ठ, शिष्य व सेवाभावी होते हैं, क्योंकि यहाँ उनमें संस्कार ही ऐसे डाले जाते हैं। यहां डाले गये सुसंस्कार उनके जीवन के अभिन्न अंग बन जाते हैं, जो उनके जीवन के आधार-स्तम्भ होते हैं। निःसन्देह यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यालय छात्रों का भाग्य-विधाता व जीवन निर्माता है। इसने अनेक छात्रों के भाग्य एवं जीवन को बनाया है।

विद्यालय की शिक्षण व्यवस्था—

इस विद्यालय में लौकिक एवं पारलौकिक-दोनों ही विद्याओं के शिक्षण की व्यवस्था है अर्थात् यहाँ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के साथ-साथ लौकिक तथा व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती है। पर पूर्व में ऐसा नहीं था। शुरू-शुरू में जब इसकी स्थापना हुई थी, तब धार्मिक शिक्षा देना ही इसका एकमात्र लक्ष्य था। अतः उस समय जैन-धर्म का प्रारम्भिक ज्ञान देने वाली पुस्तकें ही पढ़ायी जाती थीं, जिसमें जैनधर्म के ४ भाग, छहढाला, भक्तामर, तत्वार्थसूत्र मुख्य हैं। बाद में छात्रावास चालू होने पर जब बाहरी छात्रों का प्रवेश यहाँ हुआ तब धर्म के बड़े-बड़े ग्रन्थों को व्यवस्थित ढंग से पढ़ाया जाने लगा। उसके बाद विशारद, तीर्थ आदि की भी पढ़ाई यहाँ प्रारम्भ की गई। बाद में भारतवर्षीय दि० जैनसभा, जैन प्रचारक समिति- और क्वीन्स-कालेज बनारस के पाठ्यक्रमों की विधिवत् पढ़ाई की जाने लगी और परीक्षायें दिलायी जाने लगीं।

बाद में आधुनिक युग की मांग को देखते हुए यहाँ लौकिक शिक्षण की भी साथ-साथ व्यवस्था की गई। वर्तमान में यहाँ सोलापुर बम्बई की प्रवेशिका तथा विशारद एवं सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि० वाराणसी की प्रथमा तथा पूर्व मध्यमा कक्षाओं की पढ़ाई की जाती है और परीक्षायें दिलाई जाती हैं।

इनके साथ ही साथ म० प्र० शिक्षा-विभाग के अनुसार ६ वीं से १० वीं तक लौकिक - शिक्षा के शिक्षण की भी व्यवस्था है। विशारद एवं पूर्वमध्यमा की कक्षाएँ इसी सत्र से प्रारम्भ हुई हैं। इस तरह यहाँ लौकिक तथा पारलौकिक - उभयविध विद्याओं का शिक्षण किया जाता है।

विद्यालय में अन्य सुविधायें—

यहाँ पर उक्त सभी शिक्षण निःशुल्क ही किया जाता है। छात्रों को कोई फीस नहीं देना पड़ती। सा[illegible] छात्रावास में रहने और भोजन की भी उन्हें नि[illegible] उत्तम व्यस्था है। छात्रावास की नियमित दिनचर्या [illegible] पालन करना प्रत्येक छात्र को अनिवार्य है।

व्यायाम, आसन, खेलकूद पी० टी० आदि [illegible] उचित व्यवस्था है। धार्मिक संस्कारों की सुदृढ़ता [illegible] प्रति-दिन सुबह-शाम देवदर्शन करना और प्रति [illegible] को सामूहिक पूजन-भक्ति में सम्मिलित होना [illegible] को अनिवार्य है। राष्ट्रीय एवं धार्मिक उत्सवों पर [illegible] तिक, साहित्यक कार्यक्रम आयोजित करने के लिए [illegible] को प्रोत्साहित किया जाता है।

इस तरह विद्यालय में छात्रों के सर्वांगीण [illegible] पर ध्यान दिया जाता है। सुसंकारों के लिए यह [illegible] संस्कार-शाला है।

विद्यालय का स्थान सं० १९९३ में ही [illegible] मंदिर के समीप ही मनोरम भव्य एवं सुन्दर भवन [illegible] है। सं० ८० में रसोई घर की कमी को देखते हु[illegible] परमानंदजी ने अपनी अटारी पाठशाला को रसोई [illegible] हेतु हमेशा को दे दी। पर बाद में छात्रावास की [illegible] को देखते हुए विद्यार्थी रहने लगे हैं। सन १९[illegible] छात्रावास में शौचालय की कमी को मद्दे नजर र[illegible] सभा ने फ्लैश लैट्रिन का निर्माण कराया। सन् १[illegible] में पाठशाला के संलग्न भवन चौ० किशनचन्द ने [illegible] ने खरीदा पर अभी तक कब्जा नहीं दिया जिसके [illegible] विद्यालय का विस्तार कार्य रुका है। छात्रावास में [illegible] वाले विद्यार्थियों की रसोई बनाने को स्थान का काफी [illegible] है। वर्तमान रसोईघर जीर्णशीर्ण हो रहा है, मा[illegible] सि० राजकुमार जी से इस बाबद प्रार्थना की गई है [illegible] वह वर्तमान रसोईघर के पीछे वाली भूमि पाठशाला [illegible] दे देवें तो सुन्दर रसोईघर बन सकता है और वि[illegible] का भी समुचित विकास व विस्तार किया जा सकता [illegible] आशा है इस हीरक जयंति के वर्ष में यह कार्य [illegible] हो जावेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूतपूर्व अध्यापक

१	श्री पं० राजमल्ल जी	लश्कर (ग्वालियर)	सन् १९०६ से १९१०
२	श्री पं० वृजलाल जी	मालथौन (म० प्र०)	सन् १९१० से १९१२
३	श्री पं० नन्दलाल जी	मुरैना (म० प्र०)	सन् १९१२ से १९१४
४	भायजी श्री मोतीलाल जी	वीना (म० प्र०)	सन् १९१४ से १९१६
५	श्री पं० वृजलाल जी	मालथौन (म० प्र०)	सन् १९१६ से १९१८
६	श्री पं० धर्मदास जी शास्त्री	साढूमल (उ० प्र०)	सन् १९२० से १९२५
७	श्री पं० हरिहरनाथ जी शास्त्री	उत्तर प्रदेश	सन् १९२१ से १९२२
८	श्री पं० कमलकुमार जी तीर्थत्रय		सन् १९२५ से १९२६
९	श्री पं० श्यामनारायण जी शास्त्री		सन् १९२६ से १९२७
१०	श्री पं० सुन्दरलाल जी न्यायकाव्यतीर्थ		सन् १९२७ से १९२८
११	श्री पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री	सिलावन (महरौनी) उ० प्र०	सन् १९२८ से १९३२
१२	श्री पं० लोकनाथ जी शास्त्री	उत्तर प्रदेश	सन् १९२८ से १९३१
१३	श्री पं० मनोहरलाल जी काव्यतीर्थ	वीना (म० प्र०)	सन् १९३१ से १९३२
१४	श्री पं० भुवनेन्द्र कुमार जी शास्त्री	वांदरी (सागर) म० प्र०	सन् १९३३ से १९४३
१५	श्री पं० दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य	शाहपुर (सागर) म० प्र०	सन् १९४४ से १९४७
१६	श्री पं० धर्मदास जी शास्त्री, वीना	साढूमल (उ० प्र०)	सन् १९४५ से १९५६
१७	श्री पं० मोतीलाल जी, एम० ए०, सा० आ०	सीहोरा (सागर) म० प्र०	सन् १९४७ से १९६२
१८	श्री पं० जीवन्धर जी शास्त्री	वीना (म० प्र०)	सन् १९५६ से १९६५
१९	श्री पं० राजधरलाल जी व्यकरणाचार्य	गुरसौरा (जखौरा) उ० प्र०	सन् १९६२ से १९६५
२०	श्री गिरधारीलाल जी (अंग्रेजी अ०)	वीना (म० प्र०)	सन् १९६३ से १९६६
२१	श्री पं० मोतीलाल जी, एम०ए०, सा० आ०	सीहोरा (सागर) म० प्र०	सन् १९६६ से १९७५
२२	श्री ओमप्रकाश जी (अंग्रेजी अध्या०)	वीना (म० प्र०)	सन् १९६६ से १९६७
२३	श्री सन्तोषकुमार जी बी. ए. (अंग्रेजी अध्या०)	वीना (म० प्र०)	सन् १९६८ से १९७०
२४	श्री पं० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, एम.ए., आचार्य	वाराणसी (उ० प्र०)	सन् १९७४ से १९७५
२५	श्री पं० जीवन्धर जी शास्त्री	वीना (म० प्र०)	सन् १९६८ से १९७०
२६	श्री पं० अरुणकुमार जी शास्त्री	व्यावर (राजस्थान)	सन् १९७० से १९७२
२७	श्री पं० जिनेन्द्रकुमार जी शास्त्री एम. ए.	सासनी (अलीगढ़) उ० प्र०	सन् १९७२ से १९७४
२८	श्री पं० लालचन्द्र जी शास्त्री	मड़ावरा (ललितपुर) उ०प्र०	सन् १९७५ में ६ माह
२९	श्री पं० सन्तोषकुमार जी	सागर (म० प्र०)	सन् १९७५ में ६ माह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यालय के कतिपय भूतपूर्व छात्र

१. स्व० डा० श्री महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य भूतपूर्व प्राध्यापक—'बौद्ध-दर्शन'	—का० हि. वि. वि., वाराणसी	(उ. प्र.)
२. स्व० श्री सनतकुमार जी जैन	—परसौन—	(म. प्र.)
३. पं० श्री कमलकुमार जी शास्त्री	—खुरई, जिला सागर	(म. प्र.)
४. पं० श्री राजधर जी 'स्याद्वादी'	—साढूमल	(उ प्र.)
५. पं० श्री लखमीचन्द्र जी जैन;	—ललितपुर	(उ. प्र.)
६. पं० श्री खेमचन्द्र जी जैन,	—बीना, जि. सागर	(म. प्र.)
७. पं० श्री श्यामलाल जी तीर्थत्रय,	—ललितपुर	(उ. प्र.)
८. स्व० श्री मनोहरलाल जी काव्यतीर्थ,	—बीना, जि. सागर	(म. प्र.)
९. वैद्य पं० श्री सुरेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ,	—बीना, जि. सागर	(म. प्र.)
१०. पं० श्री गुलझारीलाल जी शास्त्री,	— डिब्रूगढ़	(आसाम)
११. पं० श्री कुन्दनलाल जी न्यायतीर्थ,	—इन्दौर	(म. प्र.)
१२. पं० श्री जीवन्धर जी शास्त्री (बीना)	—बड़वानी	(प. निमाड़)
१३. पं० श्रीप्रकाश हितैषी' जी शास्त्री सम्पादक—'सन्मति-सन्देश'	५३५ गाँधीनगर, दिल्ली ३१	
१४. सिंघई श्री आनन्दकुमार जी जैन,	—बीना, जि. सागर	(म. प्र.)
१५. पं० श्री भैयालाल जी पुरोहित	—बीना, जि. सागर	(म. प्र.)
१६. पं० श्री भद्रबाहु जी जैन,	—पड़रई (जैसीनगर)	(म. प्र.)
१७. पं० श्री नाथूराम जी डोंगरीय,	—इन्दौर	(म. प्र.)
१८. पं० श्री रमेशचन्द्र जी शास्त्री,	—खुरई, जि. सागर	(म. प्र.)
१९. दर्शनाचार्य श्री गुलाबचन्द्र जी जैन, एम.ए.	—राइट टाउन, जबलपुर	(म. प्र.)
२० डा० श्री चिरंजीलाल जी जैन (सिलौदा)	— मैनरोड, विदिशा	(म. प्र.)
२१ श्री गुलाबचन्द्र जी जैन,	— डालमियानगर	(बिहार)
२२. डा० श्री कोमलचन्द्र जी जैनदर्शनाचार्य प्राध्यापक—पालि-प्राकृत विभाग का० हिन्दू वि० विद्यालय	—वाराणसी	(उ. प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२३. श्री पद्मचन्द्र जी जैन, एम.ए., बी.एड, व्याख्याता-शा. उ. मा. विद्यालय	—देवरी, जि. सागर	(म. प्र.)
२४. श्री श्रीचन्द्र जी जैन (धनगौल) एम. ए. प्राध्यापक-डिग्री कालेज	—जलगांव	(बिहार)
२५. प्रो० सुपार्श्व कुमार जैन, एम.ए. (बीना) प्राध्यापक-डिग्रीकालेज	—बड़ौत	(उ. प्र.)
२६. श्री भगवानदास जी एम. ए. (एरोरा) प्राध्यापक-इण्टर कालेज	—सरधना	
२७. श्री पं० भगवानदास जी एम. ए. (रौंडा) व्याख्याता-शा. उ. मा. कन्या शाला	—मुंगावली,-जि. गुना	(म. प्र.)
२८. पं० श्री महेन्द्रकुमार जी व्याकरणाचार्य प्राचार्य-सिद्धान्त महाविद्यालय	—मुरैना	(म. प्र.)
२९. श्री जीवनलालजी जैन, एम. ए. प्राध्यापक-होल्कर कालेज	—इन्दौर	(म. प्र.)
३०. श्री अभयकुमार जैन, एम. ए., आचार्यत्रय व्याख्याता-शा. आ. वहु. उ. मा. वि.	—बीना	(म. प्र.)
३१. श्री ताराचन्द्र जी जैन (हिरावल) एम. ए. प्राध्यापक-संस्कृत महाविद्यालय	—इन्दौर	(म. प्र.)
३२. श्री डालचन्द्र जी जैन (बीना) फूड इन्स्पे.	—वड़ा मलहरा, छतरपुर	(म. प्र.)
३३. श्री लालचन्द्र जैन (बालाबेहट) व्याख्याता-जैन गुरुकुल	—खुरई	(म. प्र.)
३४. श्री शीलचन्द्र जी जैन (गुरसौरा) एम. ए. व्याख्याता-उ. मा. विद्यालय, दरियायंज	दिल्ली	
३५. श्री महेन्द्रकुमार जी जैन (बीना) एम. ए. व्याख्याता-उ. मा. विद्यालय	—इन्दौर	(म. प्र.)
३६. श्री गुलझारी लाल जी जैन, उच्चअधिकारी-इलाहाबाद बैंक	—विदिशा	(म. प्र.)
३७. श्री हेमचन्द्र जैन (भौंडी) मेडिकल रिप्रिजेन्टेटिव	—इन्दौर	(म. प्र.)
३८. श्री उदयचन्द्र जी जैन, एम. ए. प्राध्यापक-डिग्रीकालेज	—उदयपुर	(राजस्थान)
३९. श्री शीलचन्द्र जी (लागौन) एम. ए. व्याख्याता-उ. माध्य. विद्यालय	—इन्दौर	(म. प्र.)
४०. श्री नरेन्द्रकुमार जैन (बीना) अध्यापक-जैन उ. मा. विद्या.	—विदिशा	(म. प्र.)
४१. श्री खेमचन्द्र जी (पिड़रई) अध्यापक-उ. मा. विद्या.	—जीन, जि. बैतूल	(म. प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४२. श्री अमृतलाल जी जैन (वीना) अधिकारी-शिक्षासंचालनालय	—भोपाल	(म. प्र.)
४३. श्री कोमलचन्द्र जी (जरावली) अधिकारी-कार्यालय महालेखाकार	—ग्वालियर	(म. प्र.)
४४. श्री लालचन्द्र जी जैन (पिड़रुआ) प्रधानाध्यापक-माध्य. विद्या.	—करापुर, जि. सागर	(म. प्र.)
४५. श्री जयकुमार जी लागौन) इन्जीनियर	—मिर्जापुर	(उ. प्र.)
४६. श्री अजितकुमार जैन, अध्यापक	—कुरवाई	(म. प्र.)
४७ वैद्य पं. श्री उदयचन्द्र जी शास्त्री	—कुरवाई	(म. प्र.)
४८. श्री विट्ठलाल जी, एडवोकेट	—गंजवासौदा	(म. प्र.)
४९. श्री धन्नालला जी (पड़रिया) बैंक अधि.	—उज्जैन	(म. प्र.)
५०. श्री अरुणकुमार जी शास्त्री, अध्यापक-नीमसागर उ. मा. वि.	—व्यावर	(राजस्थान)
५१. श्री ताराचन्द जी जैन (पीखलौन)	— मण्डी वामोरा	(म. प्र.)
५२. श्री महेन्द्रकुमार जैन, (वीना) व्याख्याता-उ. मा. विद्या.	—इन्दौर	(म. प्र.)
५३. श्री भागचन्द्र जी जैन; जैनस्टोर्स	—वजरिया-वीना	(म. प्र.)
५४. श्री अमृतलाल जी (सिलौदा) अमृत मे. स्टो.	—वजरिया-वीना	(म. प्र.)
५५. श्री वालचन्द (पिड़रुआ) इन्स्पै. नामतौल	—छतरपुर	(म. प्र.)
५६. श्री ताराचन्द जी (परसौन) वस्त्रव्यवसायी	—खुरई, जि० सागर	(म. प्र.)
५७. श्री कपूरचन्द जी (सिलौदा)	—खुरई, जि० सागर	(म. प्र.)
५८. श्री कपूरचन्द्र जी (भौंती) अध्यापक	—अशोकनगर	(म. प्र.)
५९. श्री विनोदकुमार जैन, वस्त्रव्यवसायी	—अशोकनगर	(म. प्र.)
६०. डा० श्री प्रेमचन्द्र जी जैन	—शाहपुर	(म. प्र.)
६१ श्री गुलावचन्द्र जी (वरौदिया)	—सिन्धी वाजार-सागर	(म. प्र.)
६२ श्री महेन्द्रकुमार जी रेडीमेड क्लाथस्टोर	—कटरा वाजार-सागर	(म. प्र.)

६४. श्री सवाईलालजी चौधरी - वीना	७२. श्री फूलचन्द्रजी सराफ - वीना
६५. श्री हजारीलालजी कठरया - वीना	७३ श्री पन्नालालजी चौधरी - वीना
६६. श्री सि. पन्नालालजी - वीना	७४. श्री नाथूरामजी समैया-वीना
६७. श्री दामोदरदासजी बुखारिया - वीना	७५. श्री सि. भैयालालजी - वीना
६८. श्री धन्नालालजी कठरया - वीना	७६. श्री नन्हेलालजी बुखारिया-वीना
६९. श्री दमरूलालजी सिंघई - वीना	७७. श्री गुलझारीलालजी भायजी-वीना
७०. श्री वालचन्द्रजी नायक - वीना	७८. श्री नन्हेंलालजी पुजारी-वीना
७१. श्री फुन्दीलालजी घिया - वीना	७९. श्री पन्नालालजी कठरया-वीना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

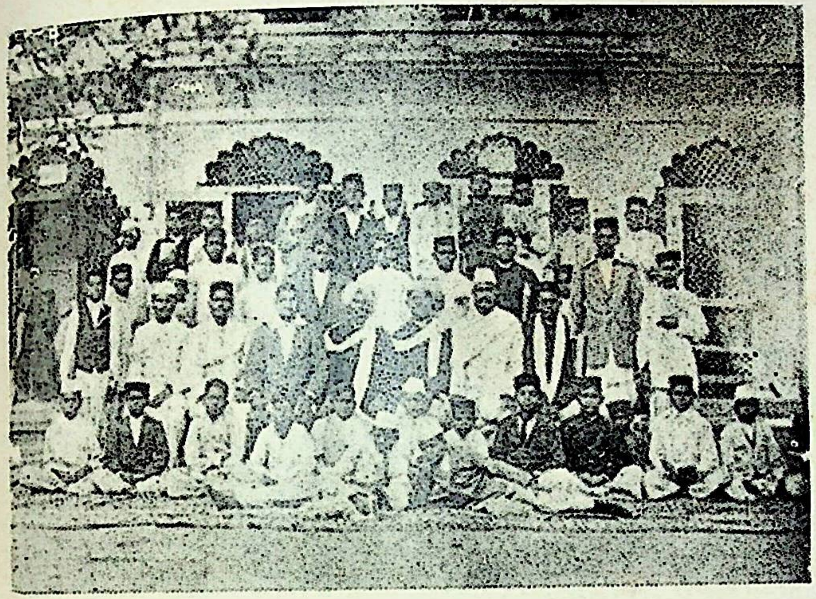

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत पाठशाला बीना के
प्रध्यापक वर्ग और छात्रगण कार्तिक सं० १९८५

स्व. सिं. श्री नाथूराम जी 'साव'
के समकालीन स्थानीय समाज
के विशिष्ट महानुभाव

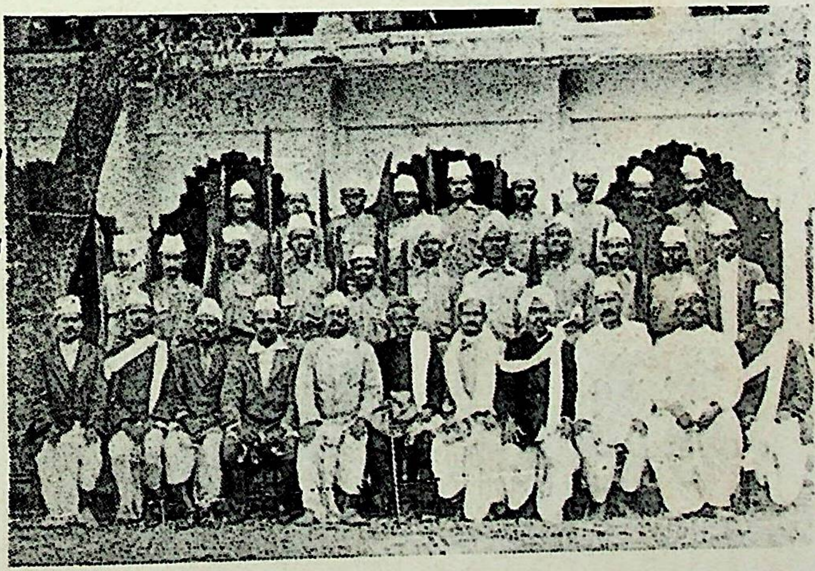

बैठे हुये बांई ओर से--चौधरी पन्नालाल जी, पं० धर्मदास जी शास्त्री, कठरया पन्नालाल जी; मास्टर कन्छेदीलाल जी बाबू मूलचन्द जी सिंघई परमानन्द जी, सौगानी रामलाल जी पं. फूलचन्द भाई जी गटोलेलाल जी, सराफ हूकचन्द जी, पं.मनोहरलाल जी शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सं. १९८५ के उत्साही कार्यकर्त्ता एवं स्वयं सेवक दल

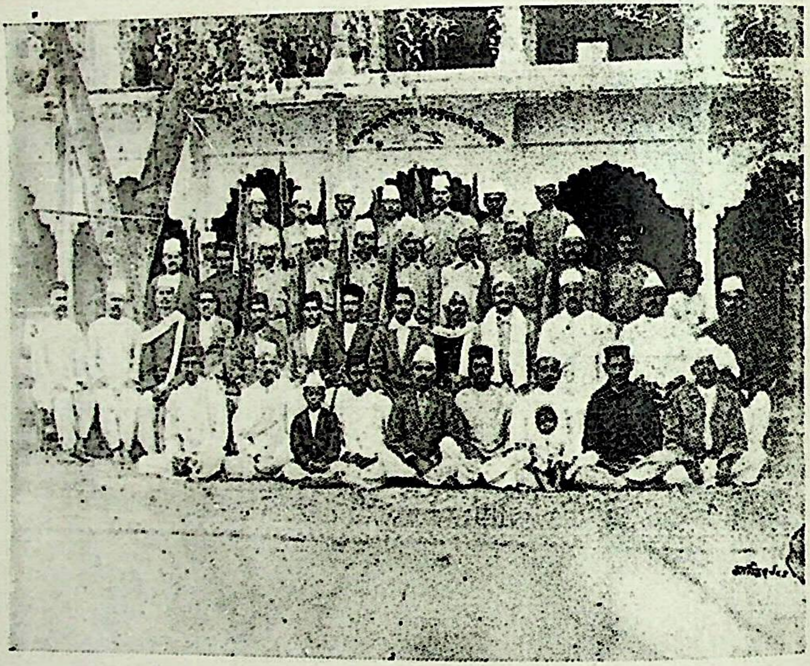

(श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन युवक मंडल बीना)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८०. श्री गम्भीरचन्दजी -	बीना	८९. श्री रतनचन्द्रजी,	कारी
८१. श्री भागचन्द्रजी (पड़रिया)	बीना	९०. श्री दीपचन्द्रजी;	निवारी
८२. श्री दुलीचंद्रजी (पड़रिया)	बीना	९१. श्री ताराचन्द्रजी,	मढ़ैया
८३. श्री दयाचन्द्रजी (पड़रिया)	बीना	९२. श्री कोमलचन्द्रजी,	मढ़ैया
८४. श्री कन्छेदीलालजी,	सनाई	९३. श्री फूलचन्द्रजी शास्त्री	-बीना
८५ श्री सुरेन्द्रकुमारजी,	सनाई	९४. श्री शीलचन्द्रजी (मृगा०)	बीना
८६. श्री कपूरचन्दजी,	सनाई	९५. श्री शीलचन्द्रजी (नमक)	बीना
८७. श्री कोमलचन्द्रजी,	मंडीवामोरा	९६. श्री अक्षयकुमारजी (भान.)	बीना
८८. श्री शीलचन्द्रजी,	धनगोल		

अजरामरवत प्राज्ञो, विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥

× × ×

श्रेष्ठो गुणैर्गृहस्थः स्यात्ततः श्रेष्टतरो यतिः ।
यतेः श्रेष्ठतरो देवः, न देवादधिकं परम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्था के परम सहायक

● श्री बिमलकुमार जी सराफ, साहित्यरत्न

श्री ना० नं० दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय की हीरक जयन्ती के शुभ अवसर पर संस्था के परम सहायकों को स्मरण करना स्वाभाविक है। जैसे बिना जड़ के पेड़ खड़ा नहीं रह सकता, वैसे ही कोई संस्था बिना आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बने अधिक समय तक चल नहीं सकती। यह तथ्य हमारी समाज के कर्णधार अच्छी तरह से जानते थे। अतः विद्यालय की स्थापना के समय से ही समाज ने चल-अचल सम्पत्ति का दान देकर विद्यालय को स्वावलम्बी बनाया। उसी बीज की बदौलत यह संस्थारूपी वटवृक्ष आज फल-फूल रहा है। इसका बीजारोपण आज से ७५ वर्ष पूर्व श्री नाथूराम जी साव ने किया। फलस्वरूप समाज ने उन्हें 'संस्थापक' की उपाधि से विभूषित कर विद्यालय के छात्रावास के गेट पर स्मरणार्थ पत्थर लगवाकर निम्नलिखित वाक्य लिखवाये, जो आज भी मौजूद हैं—

ॐ

संस्थापक—श्रीमान् स्व० सिं० नाथूराम जी मालगुजार श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला सरस्वती सदन बीना-इटावा। संवत् १९६३

पूज्य सिंघई नाथूराम जी, जिन्हें लोग 'साव बब्बा' के नाम से जानते हैं, के पूर्वज कुरवाई के निवासी थे। कठरयाई व साहूकारी का धन्धा करते थे। कु… नवाब से भी लेन-देन का सम्बन्ध था। नवाब … आकर इनकी दूकान पर बैठा करते थे। एक बार … ही वार्ता में इनके पूर्वजों ने कह दिया कि 'नवाब … तो ठलुआ हैं।' किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने नवाब सा… इसकी चुगली कर दी तो वे काफी रुष्ट हो गये। … तभी साव बब्बा के पूर्वज कुरवाई छोड़कर बीना … बसे। श्री सिं० नाथूराम जी के पिता श्री नन्दला… और जवाहर साहो उनके भाई थे।

सिं० नाथूराम का जन्म संवत् १८८८ में बीना … ही हुआ था। इनके कपड़ा और साहूकारी का … यहाँ होता था। इनका भवन सात मंजिला था, प… यहाँ का श्री मन्दिर बनने लगा तो इन्होंने स्वयं ही … की मंजिल गिरवा दी ताकि वह जिनमन्दिर से … रहे और उसके पत्थरों को जिन-मन्दिर के निर्मा… लगवा दिया। संवत् १९३७ में आपने यहाँ गजरथ … वाये और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई। तभी से … परिवार उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होता … इन्होंने जमीनें और गांव खरीदने शुरु किये। थोड़े … समय में ये ३४ गांवों के मालगुजार हो गये। इन्हें … किसानों से बड़ा लगाव और प्रेम था। उनके सुख-… की खबर लेने घोड़े पर बैठकर ये गांव-गांव जाया … थे। और विपन्न लोगों की मदद किया करते। …

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनकी प्रजा (किसान) भी इन्हें चाहती थी और इनका बड़ा सम्मान करती थी।

समाज में भी इनका बड़ा मान-सम्मान था, क्योंकि ये सामाजिक और धार्मिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी लेते थे तथा सामाजिक मतभेदों और आपसी झगड़ों को आपस में ही बड़ी आसानी से निपटा देते थे। समाज के गरीब परिवारों की भी यथायोग्य मदद करते थे। समाज-हित के कार्यों में भी सदैव आगे रहते थे। इसीलिए समाज में भी इनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

ब्रिटिश शासन में भी सरकार में आपकी बड़ी प्रामाणिकता थी। सरकार के बड़े-बड़े अधिकारी भी आपकी बड़ी इज्जत करते व सम्मान देते थे तथा आपकी सादी वेषभूषा, कुशल प्रवन्ध, दूरदर्शिता और तेज स्मरण शक्ति से बड़े प्रभावित थे। अकाल के समय भारत सरकार ने हजारों रुपया जनता की सहायतार्थ इन्हीं को सौंपा था और ये प्रतिदिन जगह-जगह जाकर मजदूरों को दे आते थे और सायंकाल अपनी स्मरणशक्ति के आधार पर अपने मुनीमों को लिखा देते थे। ऐसी थी आपकी स्मरण शक्ति। संवत् १९६७ में माघ मास में आपका अकस्मात् स्वर्गवास हो जाने से बीना जैन समाज को अपूरणीय क्षति हुई।

माननीय सिं० नाथूराम जी ने इस विद्यालय के स्थायित्व के लिए निम्नलिखित अचल सम्पत्ति दानस्वरूप प्रदान की थी—

१—पुराने डाकखाने वाला भवन	तयलीकनामा	२६-२-१९०६
२—पट्टी मौजा ढुरढुरु ।।)४	वयनामा	१२-९-१९०८
३—मकान वजरिया का जिसमें कोठा ६, वंगला १ जमीन ६० डिसमिल	हिवेनामा	२९-११-१९१०
४ हक्क मालकाना मौजा ढुरढुरु	हिवेनामा	२९-११-१९१०

अपने जीवन काल में ही 'सावबव्वा' ने **सिंघई श्री नन्दनलालजी** को गोद ले लिया था। माननीय सिंघई श्रीनन्दनलालजी ने भी सावबव्वा की परम्परा को ज्यों का त्यों कायम रखा। इन्होंने भी लाखों रुपयों की चल-अचल सम्पत्ति विभिन्न संस्थाओं को दान दी है। श्री पा० दि० जैन गुरुकुल खुरई को ग्राम लाखनखेड़ा की सर्वोत्तम ७२ एकड़ भूमि दान में दी है और छोटी वजरिया बीना में जैनमन्दिर और जैनधर्मशाला का निर्माण कराकर संचालन हेतु एक न्यास वना दिया और चल-अचल सम्पत्ति ट्रस्ट को दान दे दी। अपनी धर्मपत्नी स्व. श्रीमती रुक्मणी देवी के स्मरणार्थ छात्रवृत्ति फंड का ट्रस्ट बनाया जिससे होनहार छात्रों को शिक्षा हेतु प्रतिवर्ष लगभग करीव दस हजार रुपया छात्रवृत्ति के रूप में दिया जाता है। इटावा जैनमन्दिर में अपनी वेदी के सामने अभी-अभी संगमरमर लगवाकर सतत दानवीरता का परिचय दिया है।

आपके सुपुत्र **सिं. राजकुमार जी** भी इसी परम्परा को कायम रखकर दूरदर्शिता एवं दान प्रियता का परिचय दे रहे हैं। जब कोई किसी कार्य से चन्दा लेने हेतु इनके पास आता है उसे निराश नहीं लौटना पड़ता है। जैन धर्मशाला के वाजू की दूकान ट्रान्सफर में देकर धर्मशाला विस्तार हेतु आपने जो कार्य किया है, उसके प्रति समाज हमेशा आपकी ऋणी रहेगी।

बीना जैनसमाज बड़े सिंघई श्री नाथूराम जी साव के अतिरिक्त 'छोटे सिंघई' की प्रेममयी उपाधि से विभूषित **सिंघई परमानन्द जी** की भी सदैव ऋणी रहेगी; क्योंकि सिं० नाथूराम जी के ही समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में इनका भी महान् योगदान है। ये सरल एवं शान्तस्वभावी और दूरदृष्टि सम्पन्न महानुभाव थे। आपका व्यक्तित्व प्रभावी व आकर्षक था। प्रकृति ने बड़े उदार व सेवाभावी थे। विद्वान्, व्रती, त्यागी, पंडित, कार्यकर्ता आदि अतिथियों के वीना पधारने पर उनके स्वागत सत्कार और खान-पान का उत्तम प्रवन्ध आप अपने ही यहाँ वड़े उत्साह और प्रसन्नता के साथ करते थे। आप अपने भवन के सामने चबूतरे पर बैठकर समाज के सुख-दुख की चर्चा लोगों के बीच करते थे और संकटग्रस्त परिवार के संकट को दूर करने के लिए तुरन्त उपाय करते थे। समाज के आपसी विवादों और मनमुटावों को आपस में ही निपटवा देते थे। सारी समाज को साथ में ले चलने की आप में अपूर्व क्षमता थी। जब तक सिं० नाथूराम जी रहे तब तक वे उनके परम सहयोगियों में रहे। उनके वाद समाज के कुशल नेतृत्व का भार आपने ही वहन किया है। आप सारी समाज को एकसूत्र में वांधे रहे। सभी सामाजिक और धार्मिक कार्य आपकी राय से ही निश्चित होते थे जिनमें आपका पूर्ण सहयोग रहता था। इसीलिए समाज में आपकी भी वड़ी प्रतिष्ठा व सम्मान था।

आपने इस विद्यालय के स्थायित्व के लिए अपनी जो जायदाद दी है उसका ब्योरा इस प्रकार है—

१ – दूकान मड़ियावार्ड मंगलजीत सराफवाली	वसीयतनामा	२८-६-१६१७
२—पुराने भोजनालय वाली अटारी		२२-१-१६२४
३—रामदयाल ठेकेदार वाला वंगला	वयनामा	३१-७-१६३६

सिं० परमानन्द जी के सुयोग्य उत्तराधिकारी **सि. आनन्दकुमार जी** हैं। इन्हें सि. परमानन्द जी ने विधिवत् गोद लिया था। आद. सिंघई जी भी सि. परमानन्द जी की ही पूर्व परम्परा का निर्वाह किये जा रहे हैं। आप हृदय से सच्चे, लगन में अच्छे, बात के पक्के व सिद्धान्त में अडिग रहने वाले असाधारण व्यक्तित्व के धनी, समाज हितैषी, लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हैं। विभिन्न समाजसेवी संस्थाओं में सम्मानीय पदों पर रहकर आप निःस्वार्थ व निष्कपटभाव से समाज-हित के कार्य करते आ रहे हैं। इन संस्थाओं को आपसे निरन्तर उचित मार्गदर्शन, नेक सलाह व सम्मति प्राप्त होते रहते हैं। सामाजिक समस्याओं के उचित समाधान में भी आप तत्पर व सचेष्ट रहते हैं। निष्पक्षरूप से दिया गया आपका निर्णय सभी को मान्य होता है: १४-१५ वर्ष तक आप हितोपदेशिनीसभा के अध्यक्ष रहे। अपने कार्यकाल में इन्होंने सदैव ट्रस्ट के हितों का ध्यान रखा और पूरी निष्ठा और लगन से सेवाकार्य किया। आज भी अपनी नेक सलाह और उचित सुझावों से न्यास को लाभान्वित करते रहते हैं। न्यास और उसके हितों को सदैव उच्च माना है। इसका एक छोटा-सा उदाहरण प्रस्तुत है। सन् १६५५ में आपके यहाँ शादी थी। न्यास के पदाधिकारी होते हुए भी आपने सभा की अनुमति से ही वाहर के चबूतरे के दो चश्मों की मरम्मत व रंग-रोशन करवाया।

आपके तीन सुयोग्य पुत्र हैं, जिनसे समाज को आशा है कि वे भी सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में अपना योगदान देकर समाज को उपकृत करेंगे।

इनके सिवाय इस विद्यालय को स्थायित्व प्रदानकर प्रगति-पथ पर वढ़ाने वाले परम सहायकों में आदरणीय **श्री नन्हेंलाल जी बुखारिया** हैं। इन्होंने ग्राम **पीपरखिरिया** की ६० एकड़ उपजाऊ भूमि दि. २-८-१६४५ को वकसीसनामा लिखकर न्यास को सौंप दी है। जिससे आज लगभग पन्द्रह हजार रुपयों की आमदनी प्रतिवर्ष इस को हो रही है।

आदरणीय श्री बुखारिया जी वीना नगर की एक विभूति हैं। सीधा-सादा सरल व्यक्तित्व, निष्कपट निःस्वार्थसेवाभावी, सिद्धान्तप्रेमी ज्ञान के अमित भण्डार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। राष्ट्रीय विचारधारा वाले, कांग्रेस के परम भक्त, राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आंदोलनों में सक्रियता से भाग लेने वाले निर्लोभ वृत्ति के मानव हैं। आपकी त्यागवृत्ति, सादा रहन-सहन, खादी प्रेम, सात्विक नियमित दिनचर्या को देखकर लोग इन्हें 'वीना का विनोवा' भी कहते हैं। विभिन्न विषयों की विशद व स्पष्ट जानकारी रखने से लोग आपको 'चलता-फिरता पुस्तकालय' भी कहते हैं। आपको धार्मिक रुचि और धार्मिक ज्ञान भी अच्छा है। धर्मात्माओं के प्रति अनुराग तथा वात्सल्य, सार्धमियों के प्रति सहानुभूति एवं सहयोग की भावना और विधर्मियों के प्रति भी सहिष्णुता व प्रेम की भावना रखने वाले परमोपकारी प्राणी हैं। दूसरों की सहायता के लिए सदैव आतुर व व्यग्र रहने वाले प्राणी हैं।

आपने २ वर्ष अध्यक्ष पद पर रहते हुए और ६ वर्ष तक मंत्रीपद पर रहते हुए इस न्यास का कार्य सुचारु रूप से संभाला है और प्रगति की ओर अग्रसर किया है।

उक्त तीन परिवारों का विशेष उल्लेख करने का तात्पर्य यह नहीं है कि समाज के अन्य साधर्मी बन्धुओं ने तन-मन-धन से मदद नहीं की है। समाज की भरपूर कृपादृष्टि संस्कृत विद्यालय पर रही है। जिस परिवार में शादी या अन्य भोज होता है तो सभी प्रेमपूर्वक छात्रावास के विद्यार्थियों को भोजन हेतु आमंत्रित करते हैं। वे हर प्रकार से विद्यालय एवं उसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों का ध्यान रखते हैं और उन्नति का उपाय बतलाकर इसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि यह विद्यालय विगत ७५ वर्षों से समाज सेवा करता हुआ आज भी कायम है, जो इतिहास में बेजोड़ है।

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा।
ताभ्यां चंदनचन्द्राभ्यां शीतलः साधुसंगमः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यालय की प्रगति में सहायक

रायबहादुर श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी, खुरई

स्वाभिमानी, प्रजावत्सल, दयामूर्ति, ८४ गांवों के मालगुजार, ख्यातिप्राप्त श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी इस विद्यालय के वि० सं० १९६८ से १९८२ (सन् १९११ से १९२६) तक संरक्षक रहे हैं । आपके संरक्षकत्व में इस विद्यालय ने अहर्निश प्रगति की । बीच-बीच में अवरोध भी आये, पर इन्होंने हर उपायों से उन्हें दूर कर इसे गतिमान् बनाये रखा ।

आदरणीय सेठ सा० विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी प्रभावी व्यक्ति थे । दिसम्बर सन् १९१२ में भारत सम्राट के आमन्त्रण पर जब ये दिल्ली - दरबार में पधारे तो वहाँ हजारों जमींदारों, सम्मान्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों और अधिकारियों के बीच भारत-सम्राट को दो टूक उत्तर देकर आपने अपने अपूर्व साहस और स्वाभिमान का परिचय दिया था जिससे प्रभावित होकर सम्राट ने इन्हें रायबहादुर के खिताब से सम्मानित किया था ।

आप बड़े प्रजावत्सल थे । अपनी प्रजा के सुख-दुख का बड़ा ख्याल रखते थे । वि० सं० १९५६-५७ के वीभत्स अकाल के समय आपने अपने अन्न भण्डार को खोलकर हजारों लोगों को भूख से मरने से बचाया तथा लाखों रुपयों के ऋण हमेशा - हमेशा के लिए बिल्कुल माफ कर दिये थे ।

धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में भी आपकी सेवाएं अमूल्य तथा अविस्मरणीय हैं । आपके ही सत्प्रयत्नों से सरकार द्वारा प्रस्तावित रतौना ग्राम की कसाईघर की योजना हमेशा - हमेशा के लिए दफन कर दी गई । वि० सं० १९८९ में आपने खुरई में पंच कल्याणक गजरथ महोत्सव बड़ी शालीनता से सम्पन्न कराया था ।

विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के प्रतिष्ठित पदों पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आसीन रहकर आपने अनेक समाज-हित के कार्य सम्पन्न किये हैं। स्थानीय पंचायतों के सरपंच तथा मध्य प्रदेश के कई जिलों की जैनाजैन पंचायतों के आप प्रभावशाली निर्णायक भी रहे हैं। आपके फैसले अकाट्य तथा सर्वमान्य होते थे।

रहन-सहन अत्यन्त साधारण और क्षीणकाय होते हुए भी आप कुशाग्र बुद्धि थे। बेहद मिलनसार पर स्वाभिमानी जीव थे। संस्कृत - प्राकृत शास्त्रों के गहन अभ्यासी और विद्वत्प्रेमी प्राणी थे। जैनधर्म की शिक्षा तथा इसके प्रचार-प्रसार के लिए आप सतत प्रयत्नशील रहते थे।

आपका जन्म सन् १८६४ में और निधन सन् १९२६ में हुआ था।

श्री नन्हेलाल जी बुखारिया, बीना

'बीना के विनोबा' की उचित संज्ञा वाले माननीय श्री बुखारिया जी प्रकृति से बड़े उदार सेवाभावी और परोपकारी प्राणी हैं। समाज तथा राष्ट्र की सेवा में प्रारम्भ से ही आपकी गहरी रुचि रही है। सत्संग, सत्परामर्श, तत्वचर्चा, विहार-विमर्श और दूसरों की भलाई करना आदि मानवी उदात्त गुण आपके सरल सात्विक जीवन में समाहित हैं।

इस विद्यालय पर आपकी कृपादृष्टि प्रारम्भ से ही रही है। इसकी उन्नति तथा विकास हेतु आपने निरन्तर प्रयास किया है और तन-मन-धन से इसकी उन्नति में आपका सराहनीय योगदान दिया है। सन् १९४४ से १९४६ तक अध्यक्ष तथा सन् १९३८ से १९४२ तथा १९७६ से १९७३ तक आप हितोपदेशिनी सभा के मन्त्री रहे हैं। सामान्य सभासद भी आप वर्षों तक रहे। अपने कार्यकाल में आपने 'सभा' तथा विद्यालय की तरक्की हेतु प्राणपण से चेष्टा की है और इसे प्रगति-पथ पर आगे बढ़ाया है।

अभी भी इस विद्यालय से आपको बड़ा लगाव है, इसकी उन्नति के प्रति लगन है, छात्रों से सहानुभूति व स्नेह है और अध्यापकों के प्रति सम्मान की भावना है। अतः इसकी प्रगति हेतु आप अभी भी समय-समय अपनी नेक सलाह व उचित मार्गदर्शन वर्तमान संचालकों को देते रहते हैं।

अतः सभा तथा विद्यालय के प्रति की गई आपकी अमूल्य सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। आपसे ये संस्थाएँ बड़ी उपकृत हुई हैं।

स्व० श्री फूलचन्द जी, बीना

सन् १९३५ से १९३८ तक मंत्री

आप सीधे सादे, भोले-भाले पर उत्साही तथा हिम्मतवर आदमी थे। आपको हिसाब - किताब रखने का अच्छा अनुभव तथा ज्ञान था, पर शिक्षा के क्षेत्र में किताबी ज्ञान होते हुए भी अनुभव अधिक नहीं था। अतएव उत्साह होते हुए भी ये विद्यालय की प्रगति हेतु अधिक कुछ नहीं कर पाये। फिर भी इन्होंने यथाशक्ति इसे आगे बढ़ाने का प्रयास किया है।

—x—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्व० श्री पन्नालाल जी चौधरी, बीना

आप बड़े ही दृढ़संकल्पी, कानूनवेत्ता और हिसाब-किताब रखने में बड़े होशियार थे। सरकारी कार्यवाही करने में और रोकड़ वही के कामों में आप इतने सिद्ध-हस्त थे कि वर्षों का हिसाब और चिट्ठा-खाता कुछ ही समय में पूर्ण कर डालते थे। आपकी लेखन शैली सुन्दर और तर्कपूर्ण थी । अर्धनिद्रित अवस्था में भी आपको लिखने का अच्छा अभ्यास था।

विद्यालय के विकास और उन्नति की हार्दिक भावना होते हुए भी आप इसके विकास हेतु अधिक कुछ नहीं कर सके; क्योंकि इनके समक्ष विद्यालय की उन्नति हेतु कोई स्पष्ट योजना नहीं थी और पाठ्यक्रम तथा पाठन-शैली का विशेष अनुभव भी इन्हें नहीं था। इसके सिवाय बीना की तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ भी कुछ कर सकने में बाधक थीं। तो भी इन्होंने विद्यालय की प्रगति में कभी भी किसी प्रकार के रोड़े नहीं अटकाये और जिसने जैसा कहा वैसा इन्होंने स्वीकार कर विद्यालय की प्रगति हेतु प्रयास किया है।

स्व० श्री बाबू मूलचन्द्र जी

सन् १९५३ से १९६० तक अध्यक्ष

सन् १९३५ के पूर्व कई वर्षों तक मंत्री

आप बड़े गम्भीर, शुभचिन्तक और न्यायप्रेमी महा-नुभाव थे। आपको लोग बाबूजी कहा करते थे। लेखन तथा हिसाब-किताब में आपको अच्छी दक्षता प्राप्त थी। सामाजिक संस्थाओं के गठन और सुसंचालन का भी आपको बड़ा सूक्ष्म अनुभव था । निष्पक्ष दलीलों में भी आप बड़े चतुर थे। आपके द्वारा लिखित आपसी फैसलों को अच्छे-अच्छे कानूनवेत्ता वकील भी प्रामाणिक मानते थे। इस विद्यालय की उन्नति और विकास में आपका बड़ा सराहनीय योगदान रहा है। ये निःस्वार्थ सेवाभावी और विद्यालय के शुभचिन्तक थे । काफी संस्था के कार्यों के लिए देते थे और लगन तथा पूर्ण निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते थे। प्रकृति से आप बड़े शान्त व गम्भीर थे।

आर्थिक स्थिति बिगड़ जाने पर इन्हें अपने जीवन के अन्त में काफी बुरे दिन देखना पड़े । पर समाज ने इनकी सेवाओं का कोई ख्याल नहीं किया—यह चिन्तनीय है। विद्यालय की उन्नति एवं प्रगति के लिए आप के द्वारा दिया गया योगदान भुलाया नहीं जा सकता।

सिंघई श्री आनन्दकुमार जी

इस विद्यालय के विकास और उन्नयन में आदरणीय सिंघई जी की सेवाएं अमूल्य हैं। सन् १९४७ से १९५२ तक तथा १९६२ से १९७१ तक आप सभा के अध्यक्ष रहे। सामान्य सभासद और उपाध्यक्ष के रूप में भी आपने अपनी अमूल्य सेवाएँ इस विद्यालय को प्रदान की हैं। आप स्वभावतः निस्वार्थ सेवाभावी व्यक्ति हैं। आपने सदैव सभा एवं संस्था के हितों का ख्याल रखा है। इसके आर्थिक स्रोतों में वृद्धि कर उन्हें संरक्षण प्रदान किया और मितव्ययिता से चलकर इसे आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाया है। आपने अधिकाधिक समय सभा और संस्था के कार्यों के लिए अर्पित किया है। अस्तु, आपका योगदान अविस्मरणीय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रों में की गई आपकी सेवाएँ भी उल्लेखनीय हैं। यहाँ की समाज के तो आप प्राण हैं। सभी सामाजिक संस्थाओं को आपका पुनीत संरक्षण तथा मार्गदर्शन प्राप्त है। आप श्री स्या० शि० परिषद् शाखा बीना के अधिष्ठाता तथा श्री वीर सेवा संघ के संरक्षक हैं। तीर्थरक्षा कमेटी और २५ सौ वें निर्माणोत्सव समिति के आप यहाँ संरक्षक रहे हैं। इनके सिवाय यहाँ की म्युनिसिपल कमेटी में भी आप वर्षों तक सदस्य और शिक्षा-समिति के अध्यक्ष रहे हैं। मंडी कमेटी में भी आप अध्यक्ष-उपाध्यक्षवर्षों रहे। अपने कार्यकाल में इन्होंने उक्त सभी संस्थाओं के हितार्थ एक से एक अपूर्व कार्य किये और उचित दिशा निर्देश देकर बड़ी कुशलता से संचालन किया है।

समाज में भी आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है। धार्मिक कार्यों में सोत्साह भाग लेते हैं और कार्यक्रमों की शोभा बढ़ाते हैं। धार्मिक गतिविधियों को भी सदैव प्रोत्साहित करते रहते हैं जिससे समाज में धार्मिक चेतना बनी रहती है। इसीसे समाज में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा है।

इस विद्यालय को आपने जो अमूल्य सेवाएँ प्रदान की हैं, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता है।

पं० बंशीधर जी व्याकरणाचार्य

आप सन् १९४३ से १९४४ तक तथा १९५३ से १९६७ तक सभा के कुशल मंत्री रहे हैं। आपने अपने मंत्रित्व काल में सदा ही इस विद्यालय की तरक्की हेतु कार्य किया है और बड़े ही व्यवस्थित ढंग से इसे संचालित किया है। हरक्षेत्र में आप मितव्ययिता को प्रोत्साहन देते रहे और संस्था के कोष को भरते रहे। जिससे इसे सुदृढ़ आर्थिक स्तम्भ प्राप्त हुआ।

आप स्वयं सुशिक्षित, शिक्षाविद् और लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान्, मौलिक चिन्तक तथा अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं। अतः आपने हमेशा छात्रों को अध्ययन हेतु प्रोत्साहित किया है और शिक्षा के स्तर को सदैव उच्च बनाये रखा है। शिक्षण - व्यवस्था में भी युगानुकूल उचित परिवर्तन किया है। यही कारण है कि आपके कुशल निर्देशन और योग्य संचालन में यह विद्यालय ठीक ढंग से चलता रहा।

धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी आपकी सेवाएँ सराहनीय रही हैं। सन्मार्ग प्रचारिणी समिति के माध्यम से आपने अनेक समाज-सुधार के कार्य सम्पन्न किये हैं। प्रवचन कर लोगों को धर्मबोध देते हैं और धार्मिक चेतना बनाये रखते हैं। इस विद्यालय के प्रति की गईं आपकी सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

श्रीशाह अमृतलाल जी

आप १९४७ से १९५३ तक आपने बड़ी कुशलता व तत्परता के साथ यहाँ के मंत्रित्व के कार्यभार को वहन किया है। आपमें सामाजिकता, और कार्यपटुता के अपूर्व गुण हैं। आप मिलनसार; कूटनीतिज्ञ व गहरी सूझबूझ वाले उत्साही व्यक्ति हैं. बड़ी निष्ठा, और लगन के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह करते हैं। श्री वीर सेवा संघ, बीना में भी आप वर्षों मंत्री रहे हैं।

आपने अपनी अमूल्य सेवाओं से यहाँ की समाज संस्था और विद्यालय को बहुत उपकृत किया है।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

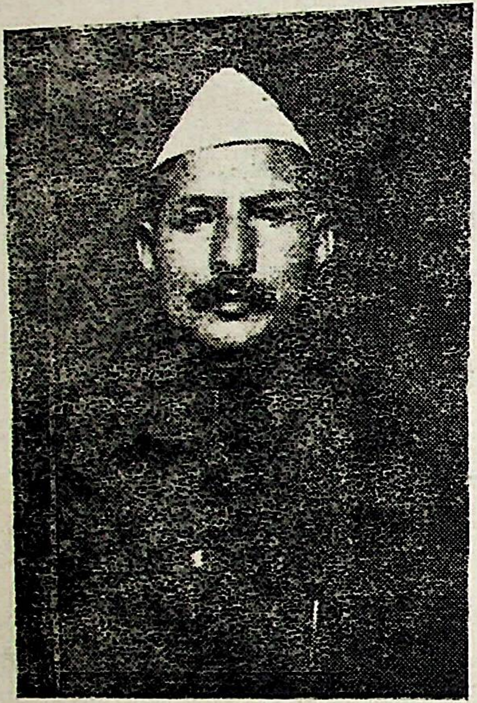

श्री बट्टूलाल जी सराफ

धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में गहरी रुचि रखने वाले आप एक लब्धप्रतिष्ठ समाजसेवी व्यक्ति हैं आपने सन् से तक बड़ी कुशलता से यहाँ के मंत्रित्व के कार्यभार को सम्भाला है और इस विद्यालय को प्रगति-पथ पर आगे बढ़ाया है। आप विगत २५ वर्षों से यहाँ के जैन औषधालय में प्रमुख अधिकारी हैं जिसके माध्यम से आप अपनी सेवाओं से समाज को उपकृत कर रहे हैं।

आप स्वभावतः धार्मिक और विचारशील व्यक्ति हैं। अपनी नेक सलाह और उचित मार्गदर्शन से समाज को दिशाबोध देते रहते हैं। और यथाशक्ति समाज सेवा में संलग्न रहते हैं।

सिंघई भैयालाल जी

आप सन् १९४४ में यहाँ के मन्त्री रहे। अपने इस अल्प समय के दायित्वपूर्ण कार्यों को भी बड़ी कुशलता से सम्भाला था। आप नियमित रूप से यहाँ का हिसाब-किताब देखते थे और सुप्रबन्ध बनाये रखते थे। आपने संस्था के आय के स्रोतों को बड़ा व्यवस्थित किया, जिससे आमदनी में वृद्धि हुई और इसकी आर्थिक दशा सुधरी हुई।

आप बड़े चिन्तनशील प्राणी हैं। आपने सदा ही विद्यालय की उन्नति की भावना रखी है और यथाशक्ति अपनी सेवाएँ इसे दी हैं।

स्व० श्री पन्नालाल जी कठरया

आप प्रशान्तचित्त, गम्भीर विचारक व समाज-हितैषी व्यक्ति थे। सभा तथा संस्कृत विद्यालय का सदा हित चाहा है। अतएव इनकी उन्नति और विकास हेतु आपने सदा यथाशक्ति प्रयास भी किया है।

Ganesh Varṇi Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री गुलझारीलाल जी भायजी

आप इस संस्था कई वर्षों तक मंत्री के पद पर रहे। आपने अपने कार्यकाल में विद्यालय की प्रगति और विकास हेतु यथाशक्ति योगदान दिया है। अतः आपकी अमूल्य सेवाएँ भी उल्लेखनीय व स्मरणीय हैं।

श्री खुमानलाल जी मुनीम

आप वर्षों तक सभा में मुनीमी का कार्य करते रहे। आपने सदा ही एकजुट होकर लगन से कार्य किया है। चाहे मन्दिर का कार्य हो चाहे पाठशाला का, चाहे कोर्ट-कचहरी का कार्य हो चाहें प्रवन्ध का, आप उसे पूर्णनिष्ठा और तत्परता के साथ सम्पन्न करते थे। पाठशाला के कृषि-कार्य हेतु आप गांव भी जाते-आते रहते थे। आपके अथक श्रम कार्यकुशलता और साज-सम्भाल से इस विद्यालय को स्थिरता और सुदृढ़ता प्राप्त हुई। अतः आपकी अमूल्य सेवाएँ भी उल्लेखनीय व अविस्मरणीय हैं।

नीतिवाक्यामृत

शैले शैले न माणिक्यं; मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहिं सर्वत्र, चन्दनं न वने वने॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यालय के संस्थापक एवं इसकी यशस्वी
प्रगति में सहायक अध्यापक

● श्री नन्हेलाल जी बुखारिया, बीना

इस विद्यालय के संस्थापक माननीय 'साव वब्वा' स्व० **श्री नाथूरामजी सिंघई** हैं, जो प्रकृति से वड़े सरल, उदार, धार्मिक, निष्कपट व भद्र-परिणामी प्राणी थे। उनका रहन-सहन वेषभूषा विल्कुल साधारण थी लेकिन राष्ट्रीय तथा सामाजिक स्तर पर ये वड़े प्रतिष्ठित; योग्य, ईमानदार, प्रभावी तथा सत्यता के लिए ख्यातिप्राप्त थे। भावी पीढ़ी को धार्मिक तथा सदाचार-सम्पन्न वनाये रखने के लिए इन्होंने श्री ना. न. दि. जैन सं. पाठशाला की स्थापना की थी और इसके लिए अपने परिश्रम तथा वुद्धिवल से अर्जित २०-२५ गांवों की जमींदारी से ढुरढुरु गांव की आठ आने की पट्टी तथा बीना नगर के कई मकानात दान में देकर खर्च की चिन्ता से इसे मुक्त कर दिया था। जव तक ये रहे तव तक इस पाठशाला के सुसंचालन में बड़ी रुचि लेते रहे और अपना पूरा सहयोग प्रदान करते रहे। समय-समय पर छात्रों के वीच जाकर उनसे प्रश्न पूँछा करते थे तथा उनके प्रोत्साहन के लिए अपनी ओर से मिष्ठान्न भी वँटवाया करते थे।

इनके वाद इस विद्यालय के संरक्षण एवं संवर्द्धन में **सिंघई श्री परमानन्दजी** का वड़ा योगदान रहा है। ये भी वड़े उदारहृदय, विनम्र तथा सज्जन महानुभाव थे। समाज में इनकी भी वड़ी प्रतिष्ठा और प्रभाव था। सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में वे वड़ी रुचि लेते थे और समाज का प्रतिनिधित्व करते थे। अतिथि-सत्कार इन्हें प्रिय था। विद्यालय के लिए इन्होंने भी अपने मकानात दान में दिये थे। ये इस विद्यालय के परम सहायकों में से एक हैं।

मेरी स्मृति के अनुसार पहले-पहल इस पाठशाला में सन् १९०५ से १९१० के वीच ग्वालियर के निवासी **पं. राजमल्ल जी** अध्यापन कार्य कर रहे थे। ये अधिक पढ़े-लिखे उपाधिकारी विद्वान् तो नहीं थे, पर इन्हें धार्मिक ज्ञान अच्छा था। रात्रि में एकत्र हुए स्थानीय समाज के बालक-बालिकाओं को धार्मिक, नैतिक तथा सदाचार की शिक्षा देते थे।

सन् १९१० के लगभग मालथौन निवासी **पंडित श्री बृन्दलाल जी** (राजमल्ल जी के बाद) इस पाठशाला में अध्यापक नियुक्त हुए। ये शान्त प्रकृति के सरल स्वभावी विद्वान् थे। वावा शिवलाल जी एवं पं. दौलतराम जी के साथ रहकर इन्होंने अच्छा धार्मिक ज्ञान अर्जित कर लिया था। इनके समय यहाँ बोर्डिंग (छात्रावास) भी स्थापित हुई जिससे बाहर के छात्र भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ आकर अध्ययन करने लगे थे। पर पं० बृजलालजी यहाँ डेढ़-दो वर्ष ही रहे और यहाँ से कार्य छोड़कर मथुरा विद्यालय में अध्यापनार्थ चले गये।

पं० बृजलाल जी के बाद सन् १९१२ में पं. मक्खनलाल जी मुरैना वालों के भाई **पं. नन्दलाल जी** यहाँ पर अध्यापक नियुक्त हुए और इन्होंने इस पाठशाला का काम सम्भाला। पर ये भी यहाँ १॥-२ साल ही रहे और चले गये। तब फिर यहाँ (बीना) के धार्मिक रुचि सम्पन्न **श्री मोतीलालजी 'भायजी'** ने पाठशाला का काम सम्भाला। इस समय समाज में थोड़ा बहुत धार्मिक ज्ञान रखते थे, उन्हें 'भायजी' कहा जाता था। श्री मोतीलाल जी भायजी भी ऐसे ही धर्म के सामान्य ज्ञाता थे, तथापि इन्हें बालक-बालिकाओं में धार्मिक संस्कार डालने की अभिरुचि थी। अतः ये दिन में श्री मन्दिर जी का हिसाब-किताब सम्भालते थे और रात्रि में बालक-बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा देते थे। ये तीन-चार वर्ष तक इस प्रकार शिक्षण-करते रहे। सन् १९१६ के लगभग **पं. बृजलाल जी मालथौन** वालों को पुनः मथुरा से बीना बुला लिया गया और उन्होंने ढेढ़-दो साल ही यहाँ काम सम्भाला और फिर छोड़कर चले गये।

इनके जाने के बाद योग्य अध्यापक का अभाव तथा कतिपय सामाजिक मतभेदों के कारण २-२½ वर्ष का काल इस पाठशाला का सुप्तावस्था का काल रहा अर्थात् ये बन्द रही।

सन् १९२० का वर्ष इस विद्यालय का पुनर्जागरण का वर्ष था। इस वर्ष यहाँ इन्दौर से अध्ययन कर साढ़ूमल निवासी **पं. धर्मदासजी न्यायतीर्थ** का शुभागमन हुआ। ये युवा थे, योग्य; लगनशील व निष्ठावान थे। इन्होंने १५-१६ घन्टों का समय प्रतिदिन इस पाठशाला की प्रगति हेतु दिया। फलतः इसका भाग्योदय हुआ, पुनरुद्धार हुआ। छात्रावास खुला, बाहरी छात्रों का प्रवेश बढ़ा और तीर्थ तक पढ़ाई की व्यवस्था हुई। छात्रों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। बाहरी छात्र ३०-३५ थे।

इस समय छात्रों को छात्रावास में रहने तथा खाने-पीने की व्यवस्था अच्छी थी। इच्छानुसार छात्रों को भोजन दिया जाता था। साथ ही आठ आने और एक रुपया अलग से खर्च को प्रतिमाह दिया जाता था। व्यायाम तथा खेल-कूँद की भी उत्तम व्यवस्था थी। फुटबाल मलखम्भ, जिमनास्टिक, सिंगलबार आदि की सुविधा थी। श्री कन्छेदीलाल जी छात्रों के व्यायामादि में बड़ी रुचि लेते थे। व्यायामों के प्रदर्शन में लोग छात्रों को इनामें देकर उनका उत्साह बढ़ाते थे।

इन सभी कारणों से छात्र अनुशासित रहकर विद्यालय के नियमों का पालन करते हुए लगन से पढ़ते थे। अतः प्रायः सभी छात्र होशियार होते थे। इस समय के व्युत्पन्न छात्रों में निम्नांकित उल्लेखनीय हैं—

१. पं. महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य, खुरई, २. पं. सनतकुमार जी, परसौन, ३. पं. लखमीचन्द जी, ललितपुर, ४. पं. कमलकुमार जी शास्त्री, खुरई ५. पं. राजधर जी स्याद्वादी साढ़ूमल और ६. पं. खेमचन्द जी, बीना आदि प्रमुख हैं। सनतकुमार और महेन्द्रकुमार अकलंक-निकलंक जैसे व्युत्पन्नमति छात्र थे। सनतकुमार को एक बार और महेन्द्रकुमार को दो बार सुनने से विषय तैयार हो जाता था। दुर्भाग्य से सनतकुमार तो अल्पायु में ही दिवंगत हो गये और डा. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य भी अपने सफल जीवन के मध्य में ही काल-कवलित हो गये। परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने से महेन्द्रकुमार के भाई इनकी पढ़ाई बन्दकर दूकानदारी में इन्हें लगाना चाहते थे। उस वक्त खुरई के श्री गनपतलाल जी गुरहा से इनके परिवार को आर्थिक मदद दिलवाकर महेन्द्रकुमार की पढ़ाई को चालू रखा गया था। बाद में यही-प्रतिभाशाली छात्र डा. महेन्द्रकुमार जैन न्यायाचार्य, प्राध्यापक का. हि. वि. वि. के नाम से ख्याति प्राप्त हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं. धर्मदास जी के समय छात्रसंख्या में काफी वृद्धि हो गई थी और पढ़ाई भी तीर्थ तक की हो गई थी। अतः एक सहायक अध्यापक की भी नियुक्ति की गई थी। वे थे **पं. हरिहरनाथ जी शास्त्री**। ये पं. लोकनाथ जी शास्त्री के भतीजे थे और वे स्वयं ही यहाँ आकर इन्हें नियुक्ति करा गये थे। पं. हरिहरनाथ जी साहित्य-व्याकरण के ज्ञाता तो अच्छे थे। पर उनका यहाँ मन न लगने से पढ़ाने में वे रुचि नहीं लेते थे। अतः वे एक वर्ष बाद ही यहाँ से चले गये थे।

पं. धर्मदास जी न्यायतीर्थ बड़े गम्भीर, सहनशील, सहृदय प्रसन्नमुख, मिलनसार, सहयोगी, सत्सम्पर्की और अध्यवसायी अनुभवी विद्वान् थे। इनका व्यक्तित्व सीधा-सादा पर आकर्षक था। आपकी प्रवचन शैली तो इतनी आकर्षक तथा प्रभावी थी कि सभी श्रोता मंत्रमुग्ध हो उनकी बातों को सुनते तथा हृदयंगम करते थे। विषय-प्रतिपादन का ढंग बड़ा सुन्दर व आकर्षक था। इन सभी विशेषताओं और सद्गुणों के कारण समाज में पंडित जी की अच्छी प्रतिष्ठा थी। इन्होंने सन् १९२० से १९२५ तक अपने अथक श्रम से इस विद्यालय का पुनरुद्धार कर इसे प्राणवान व स्फूर्त बनाया।

सन् १९२६ से १९२८ तक क्रमशः **पं. कमल कुमार जी तीर्थत्रय, पं. श्यामनारायण जी शास्त्री** और **पं. सुन्दरलाल जी न्याय-काव्य-तीर्थ**—इन तीन विद्वानों ने अपनी सेवाओं से इस विद्यालय को पुष्ट किया। इनमें पं सुन्दरलाल जी समाज में तथा विद्यालय में अपना कोई अच्छा स्थान नहीं बना सके थे; क्योंकि उनमें कुछ तो व्यवहारिकता की कमी थी और शास्त्रप्रवचन तथा अध्यापनादि में भी उतने प्रवीण वे नहीं थे। अतः समाज उनकी जगह किसी अन्य की नियुक्ति इस विद्यालय में करना चाहती थी। भाग्य से पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य की बारात में जैनधर्म के मर्मज्ञ मनीषी अध्येता विश्रुत विद्वान् पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री बीना पधारे और उन्होंने श्रीमंदिर जी में २-३ शास्त्र प्रवचन किये। लोग उनसे बहुत प्रभावित हुए। फलतः उनसे अनुरोधकर विद्यालय में अध्यापन हेतु स्वीकृति ली और इस तरह सन् १९२९ में पं. सुन्दरलाल जी की जगह इन्हें नियुक्त कर लिया गया।

पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री एक विश्रुत अध्येता विद्वान् हैं। उनकी प्रवचन, अध्यापन तथा विषय-प्रतिपादन शैली बड़ी आकर्षक, सहज, सरल व बोधगम्य थी। व्यवहारिकता, सामाजिकता, सौजन्यता, सहृदयता, सरलता, सहानुभूति, सहयोग और उदारता जैसे महनीय मानवीय गुण भी उनमें विद्यमान थे। अतः थोड़े ही समय में उन्होंने समाज तथा विद्यालय में अच्छी प्रतिष्ठा व सम्मान अर्जित कर लिया था तथा पं. धर्मदास जी के बाद विगत २-३ वर्षों में विद्यालय में जो शिथिलता आ गई थी, उसे भी उन्होंने दूर कर दिया था। विद्यालय की पढ़ाई पूर्ण व्यवस्थित हो गई थी। छात्र अनुशासित तथा अध्ययनशील रहते थे। पंडित जी छात्रों पर पुत्रवत् मृदुल स्नेह रखते थे। अतः छात्रों में उनके प्रति बड़ा आदर व सम्मान का भाव रहता था। इनके समय के प्रतिभाशाली छात्रों में प्रमुख छात्र इस प्रकार हैं—

पं. श्यामलाल जी तीर्थत्रय, ललितपुर (उ. प्र.)
स्व. पं. श्री मनोहरलालजी काव्यतीर्थ, बीना (म. प्र.)
वैद्य पं. श्री सुरेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ, बीना (म. प्र.)
प. श्री गुलझारी लाल जी शास्त्री, डिब्रूगढ़ (आसाम)
पं. श्री कुन्दनलाल जी न्यायतीर्थ, इन्दौर (म. प्र.)
पं. श्री जीवन्धर जी शास्त्री, बीना (म. प्र.)
वर्तमान में (बड़वानी)
पं. श्री प्रकाश हितैषी जी शास्त्री, सम्पादक-सन्मति-सन्देश दिल्ली—३१
पं. श्री भद्रबाहु जी पड़रई- जैसीनगर (म. प्र.)
पं. श्री नाथूराम जी डोंगरीय -इन्दौर (म. प्र.) आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं. फूलचन्द्र जी सि. शास्त्री के सहाध्यापकों में पंडित श्री कमलकुमार जी तीर्थ-त्रय और पं. गोपाल जी शास्त्री थे। इन लोगों के जाने के बाद जब इन्हें अन्य कोई दूसरा सह-अध्यापक नहीं मिला तो इन्होंने अपने ही व्युत्पन्नमति भूतपूर्व छात्र पं. श्री मनोहर-लाल जी काव्यतीर्थ की सेवाएँ सह-अध्यापक के रूप में यहाँ लीं और अपना काम चलाया।

पं. फूलचन्द्र जी के ही कार्यकाल में दुर्भाग्य से प्रकृति ने साथ नहीं दिया। विद्यालय की आय का प्रमुख स्रोत खेती थी। लगातार तीन वर्ष तक गिरुआ, तुषार, सूखा आदि प्राकृतिक के प्रकोप के कारण फसलें नष्ट हो जाने से विद्यालय की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। फलतः श्री दिग. जैनमन्दिर के खाते के लगभग ३५००) विद्यालय-व्यवस्था में खर्च हो गये। समाज के कुछ लोगों ने इस पर बड़ा ऐतराज किया। फलतः अच्छे ढंग से चलते हुए इस विद्यालय को परिस्थितियोंवश बंद कर देना पड़ा। पंडित जी भी तब यहाँ से नातेपुते चले गये। इस प्रकार सन् १९२८ से १९३२ तक पं. फूलचंद्र जी सि. शास्त्री ने अपनी सेवाएँ देकर इस विद्यालय की यशस्वी प्रगति में अपना योगदान दिया।

पं. फूलचंद्र जी सि. शास्त्री के चले जाने के बाद सन् १९३३ में सागर से पं. भुवनेन्द्रकुमार जी शास्त्री यहाँ अध्यापक नियुक्त हुए। इन्होंने इस विद्यालय को पुनरुज्जीवित कर इसमें पुनः प्राण-प्रतिष्ठा की। श्री भुवनेन्द्रकुमार जी बड़े अध्यवसायी, लगनशील, उत्साही कर्मठ कार्यकर्ता और अच्छे समाजसेवी व्यक्ति है। प्रारम्भ में यहाँ रात्रि मे दो घण्टे स्थानीय बालक-बालिकाओं को धार्मिक शिक्षण देने की व्यवस्था हुई। बाद में इन्हीं की सत्प्रेरणा से संस्थाधिकारियों ने पुनः छात्रावास चालू कर दिया। जिससे बाहरी छात्रों का प्रवेश यहाँ होने लगा। बनारस की प्रथमा तथा बम्बई सोलापुर की विशारद-शास्त्री कक्षाओं तक का अध्यापन शुरू हुआ। इस समय पं. भुवनेन्द्रकुमार जी अकेले ही विद्यालय की सारी व्यवस्थाओं को सम्भालते हुए रात्रि-शाला का भी संचालन कुशलता से करते थे। पूरी तन्मयता और लगन से सारी जिम्मेदारियों का निर्वाह ये इस समय करते रहे।

इनके ही प्रयास और प्रेरणा से समाज की बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा देने हेतु पृथक् से कन्याशाला की शुरुआत की गई जिसमें महात्मा भगवानदीन की धर्म-पत्नी श्रीमती भाग्यवतीबाई अध्यापिका नियुक्त हुईं। यह कन्याशाला मन्दिर के दरवाजे के ऊपर वाले बड़े हाल में लगायी जाती थी।

आगे चलकर पंडित जी के ही सत्परामर्श और प्रेरणा से समाज के बालकों को लौकिक और धार्मिक शिक्षा देने हेतु अंग्रेजी मिडिल स्कूल भी खोला गया जिसमें विद्यालय के छात्रों को लौकिक शिक्षा ग्रहण करने की छूट थी तथा अंग्रेजी स्कूल के सभी छात्रों को धार्मिक शिक्षा ग्रहण करना अनिवार्य था। पं. भुवनेन्द्रकुमार जी के समय के प्रतिभाशाली छात्रों में—(१) दर्शनाचार्य श्री गुलाब-चन्द जी एम.ए. जबलपुर, (२) डा. चिरंजीलाल जी विदिशा (३) श्री मोतीलाल जी इंजीनियर (४) श्री गुलाबचन्द जी डालमिया नगर (५) श्री क्षमाकर जी पिड़रुआ आदि प्रमुख हैं।

निःसंदेह पं. भुवनेन्द्रकुमार जी में बड़ी लगन, सूझ-बूझ, कार्यपटुता और तत्परता है। इन्हें तत्वचर्चा, समाज-सुधार, समाजसेवा, पूजनभक्ति, भजन-कीर्तन, संगीत आदि में भी बड़ी रुचि थी। स्थानीय विद्वद्गोष्ठियों में तत्वचर्चा और समाजसुधार आदि पर खूब विचार-विमर्श किया करते थे। संगीत के साथ पूजन-भक्ति में भी खूब रस लेते थे। समाज-सुधार के क्षेत्र में भी इन्होंने बड़ी लगन और सक्रियता से काम किया तथा राष्ट्रीय स्वा-तन्त्र्य आंदोलनों में भी ये बड़े सक्रिय रहे। फलतः इन्हें भी सन् १९४२ में मेरे ही साथ ६ माह जेल में रहना पड़ा।

इस तरह पं. भुवनेन्द्रकुमार जी शास्त्री ने अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथक परिश्रम, अपूर्वनिष्ठा और सतत क्रियाशीलता से इस विद्यालय की यशस्वी प्रगति में बड़ा योगदान दिया है। ये यहाँ लगभग १० वर्ष रहे। इसके बाद सन् १९४३ में ये यहाँ से लखनऊ चले गये।

यहाँ यह स्मरणीय है कि बीना जैसे जंक्शन नगर में बीच-बीच में अनेक गणमान्य प्रतिष्ठित महापुरुष भी आते रहे। वे विद्यालय-व्यवस्था, संचालन आदि का निरीक्षण करते थे और छात्रों से प्रश्नादि पूछकर उनके अध्ययन - ज्ञान आदि का परीक्षण करते थे। छात्रों के उत्तरों से वे सन्तुष्ट और प्रसन्न होते थे तथा उनके उत्साह संवर्द्धनार्थ अपनी ओर से उनमें मिष्ठान्न भी वितरित कराते थे तथा Visitor's Book में अच्छी टिप्पणियाँ भी लिख जाया करते थे। ऐसे महानुभावों में निम्नांकित प्रमुख हैं—

बाबू निर्मलकुमार जी आरा, पं० गणेश प्रसाद जी न्यायाचार्य (पूज्यवर्णी जी), बाबा भगवानदीन जी, अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय, पं० देवकीनन्दन जी, कौशल प्रसाद जी, आदि।

पं० भुवेन्द्रकुमार जी के बाद सन् १९४४ में **पं० दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य** मंडीबामोरा से आकर इस विद्यालय में सहायक अध्यापक और छात्रावास-प्रबन्धक हुए। यहाँ के भूतपूर्व अध्यापक **पं० धर्मदास जी न्यायतीर्थ** की पुनः नियुक्ति इसके पूर्व ही प्रधानाध्यापक के रूप में हो चुकी थी। ये दोनों ही सफल अध्यापक, योग्य प्रशासक और अधिकारी विद्वान् थे। अतः इन्होंने अपनी अनवरत सेवाओं से इस विद्यालय को प्रगति की ओर अग्रसर किया। इनके समय विद्यालय की छात्र-संख्या ४० के ऊपर पहुँच चुकी थी और प्रायः सभी छात्र मेधावी, स्वस्थ तथा व्युत्पन्न होते थे। पं० दयाचन्द्र जी सफल व योग्य अध्यापक होने के साथ-साथ एक अच्छे व्यायाम शिक्षक भी थे। अतः ये प्रतिदिन नियमित रूप से विद्यालयीय छात्रों को व्यायाम; पी० टी; खेल-कूद आदि कराते थे तथा छात्रों में वक्तृत्व-शक्ति के विकास हेतु प्रति रविवार को रात्रि में छात्र - हितकारिणी सभा का आयोजन करते थे। इसमें छात्रों को विभिन्न विषयों पर भाषण देने के लिए प्रेरित किया जाता था।

पं० दयाचन्द्र जी यहाँ सन् १९४७ तक रहे। इसके बाद वर्णी गुरुकुल मढ़िया जी (जबलपुर) में प्रधानाचार्य पद पर कार्य हेतु यहाँ से चले गये। इनके समय के मेधावी छात्रों में (१) डा० कोमलचन्द्र जी प्राध्यापक—वाराणसी (२) पद्मचन्द जी व्याख्याता—देवरी (३) पंचमलाल जी—उमरिया (४) कपूरचन्द्र जी - मंडी बामोरा आदि उल्लेखनीय हैं।

पं० दयाचन्द्र जी के जाने के बाद **पं० मोती लाल जी साहित्यशास्त्री** पं० धर्मदास जी के सह-अध्यापक नियुक्त हुए। ये भी बड़े परिश्रमी, निष्ठावान योग्य व सफल अध्यापक तथा व्याकरण, साहित्य; धर्म व न्याय के अधिकारी विद्वान् थे। स्वभावतः बड़े सहृदय, गंभीर चिन्तक, स्वाभिमानी, निर्भीक तथा अनुशासन प्रेमी थे। अपने दायित्वों का निर्वाह पूर्ण निष्ठा के साथ करते थे। छात्रावास के प्रबन्धक भी आप थे। अतः एक नियमित दिनचर्या के अनुसार छात्रों का जीवन यहाँ व्यवस्थित कर दिया गया था। सभी छात्र अनुशासित रहते हुए अपने अध्ययन के प्रति सचेष्ट रहते थे। पं० मोतीलाल जी छात्रों के बौद्धिक विकास हेतु बड़ा कड़ा परिश्रम करते थे। खूब पढ़ाते थे। और अच्छा पढ़ाते थे। इसीलिए उनके समय के छात्र उच्च शिक्षा हेतु जब बनारस, इन्दौर, सागर आदि स्थानों पर जाते थे तो उन्हें प्रवेश में प्रथम स्थान दिया जाता था, क्योंकि इनके पढ़ाये गये विद्यार्थी होशियार तथा व्युत्पन्नमति होते थे और अच्छी श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त करते थे।

पं० मोतीलाल जी ने सहा० अध्यापक और प्रधान अध्यापक दोनों ही रूप में अपनी सेवाओं से इस विद्यालय को उपकृत किया है और इसकी ७४ वर्षीय प्रगति में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४ वर्षों का महत्वपूर्ण योगदान इन्हीं का है। सन् १९४७ से १९६२ तक १५ वर्ष तथा सन् १९६६ से १९७५ तक ९ वर्ष=कुल २४ वर्ष इन्होंने अपने खून-पसीने से सिंचित कर इस विद्या-तरु को हरा-भरा पल्लवित पुष्पित और फलित किया है। पढ़ाई का स्तर इनके समय बहुत अच्छा रहा। बम्बई-परीक्षा में छात्र खूब पारितोषिक प्राप्त करते थे और बनारस-प्रथमा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते थे। इनके समय इस विद्यालय की यशः सुरभि चतुर्दिक दिग्दिगन्त में विकीर्ण रही। इनके समय के छात्रों की सूची तो बहुत लम्बी है पर कतिपय प्रतिभाली छात्रों का उल्लेख यहाँ किया जाता है—

१—श्रीचन्द जी धनगौल	—	प्राध्यापक, डिग्री कालेज, जलगांव
२ - डा० कोमलचन्द जी, बीना	—	प्राध्यापक, का० हि० वि० वि०, वाराणसी
३—प्रो० सुपार्श्वकुमार, बीना	—	प्राध्यापक, डिग्री कालेज, बड़ौत
४—भगवानदास, एरोरा	—	अध्यापक, इन्टर कालेज: सरधना
५—पं० महेन्द्रकुमार, ककड़ारी	—	प्राचार्य, सि० महाविद्यालय, मुरैना
६—जीवनलाल जैन	—	प्राध्यापक, होल्कर कालेज, इन्दौर
७ - ताराचन्द, हिरावल	—	प्राध्यापक, सं० महाविद्यालय; इन्दौर
८—डालचन्द्र जैन; बीना	—	फूड इन्स्पेक्टर, बड़ा मलहरा, छतरपुर
९—लालचन्द, वालावेहट,	—	व्याख्याता, जैनगुरुकुलः खुरई
१०—अभयकुमार, बीना	—	व्याख्याता, हा० से० स्कूल, बीना

उपर्युक्त अध्यापक महानुभावों के अलावा इस विद्यालय को अपनी अमूल्य सेवाएँ देकर इसे प्रगति-पथ पर आगे बढ़ाने वाले अन्य अध्यापक इस प्रकार हैं—

१—पं० जीवन्धर जी शास्त्री, बीना
२—पं० राजधरलाल जी व्याकरणाचार्यः गुरसौरा (ललितपुर)
३—पं० रामप्रसाद जी त्रिपाठी एम० ए० शास्त्री, वाराणसी
४—पं० अरुणकुमार जी शास्त्री, बी० ए०
५—पं० जिनेन्द्रकुमार जी शास्त्री, एम० ए०
६—पं० लालचन्द्र जी शास्त्री,
७—पं० सन्तोषकुमार जी शास्त्री, सागर
८—श्री सन्तोष कुमार जी भोंरदा वाले; बीना
९—श्री गिरधारीलाल जी बीना

वर्तमान में पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री, जखौरा वाले तथा गौना निवासी मुन्नालालजी शास्त्री, एम० ए. इस विद्यालय को अपनी सेवाओं से उपकृत कर रहे हैं।

c/o बुखारिया ब्रदर्स
सर्वोदय चौक
बीना (मं० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं. धर्मदास जी शास्त्री, न्यायतीर्थ
संक्षिप्त परिचय

नाम—	पं. धर्मदास जी शास्त्री, न्यायतीर्थ
पितृनाम—	श्री फुन्दीलाल जी
जन्मस्थान—	साढ़ूमल, जिला-ललितपुर (उत्तरप्रदेश)
जन्मतिथि—	सन् १८९५
शैक्षणिक योग्यता—	धर्मशास्त्री (वम्वई) न्यायतीर्थ (कलकत्ता)
अध्ययन स्थान—	सं. विद्यालय साढ़ूमल तथा सं. महाविद्या. इन्दौर
अध्यापन—	सन् १९२० से १९२५ तक ६ वर्ष तथा सन् १९४५ से १९५६ तक ११ वर्ष=कुल १७ वर्ष श्री ना. नं. दिग. जैन संस्कृत विद्यालक, वीना में।

आप वड़े अनुभवी, सहनशील, शान्तस्वभावी, धर्मस्नेही, धीर, सहृदय व भद्रपरिणामी जीव थे। आपका जीवन वड़ा सात्विक, सदाचारी तथा वड़ा सीधा-सादा व सरल था। आपकी वाणी में आकर्षण था। प्रवचन शैली तथा विषय प्रतिपादन का ढंग भी वड़ा प्रभावोत्पादक व वोधगम्य था। आप अध्यापन कार्य में कुशल तथा प्रवचन में निष्णात थे। समाज में धार्मिक चेतना वनाये रखना और उसे एकसूत्र में वांधे रखना आप अपना प्रमुख कर्तव्य समझते थे। इसीलिए समाज में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा व मान-सम्मान था।

इस विद्यालय में आपने अपनी अमूल्य सेवाएं १७ वर्ष तक प्रदान कीं। अपने सेवाकाल में वड़ा श्रम करके इस विद्यालय को प्रगति की ओर वड़ाया है। छात्रों से आप पुत्रवत् मृदुल स्नेह करते थे और उनकी सुख-सुविधा का हमेशा ख्याल रखते थे। इसीलिए छात्रों में भी उनके प्रति वड़ा आदर का भाव रहता था। उनके समय विद्यालय में छात्र संख्या अच्छी रही और पढ़ाई का स्तर भी वड़ा ऊँचा रहा। निःसन्देह इस विद्यालय की यशस्वी प्रगति में आपके महान् योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र जी सिद्धांतशास्त्री

संक्षिप्त परिचय

जैनसमाज के लब्धप्रतिष्ठ साहित्य-समाज-राष्ट्र-सेवी जैनसिद्धान्त के मर्मज्ञ मनीषी विद्वान् पं० फूलचन्द्रजी सि. शा. का जन्म वि. सं. १९५८ में ग्राम सिलावन उत्तरप्रदेश में हुआ था। आपके पिता सिं. श्री दरयावलाल जी तथा माता श्रीमती जानकीवाई थीं। आपकी शिक्षा ग्राम खजुरिया, इन्दौर, साढ़ूमल और मुरैना विद्यालय में हुई।

आपने श्रीना. नं: दि. जैन सं. वि. वीना में सन् १९२८ से १९३२ तक अध्यापन कार्य किया। अधिकारी विद्वान्, कुशल प्रशासक, विनोदप्रिय, सरलस्वभावी, समाजहितैषी व सामाजिक व्यक्ति होने से आपने इस विद्यालय की प्रगति हेतु हर सम्भव प्रयास किया। इसीलिए उनके कार्यकाल में यहाँ छात्रसंख्या में काफी वृद्धि हुई। पढ़ाई अच्छी रही और होशियार छात्र यहाँ से पढ़कर निकले। आपने साढ़ूमल (उ. प्र) और स्या महावि. वाराणसी में भी अध्यापन कार्य किया है।

आपने 'खानिया तत्वचर्चा,' 'जैनतत्व मीमांसा' और 'वर्ण जाति और धर्म' नामकी मौलिक कृतियाँ लिखी हैं। षड्खंडागम, जयधवला जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों के आप सम्पादक रहे। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके अनेक लेख भी प्रकाशित हुए हैं। विषय-विवेचन और तत्व प्रतिपादन की आपकी शैली वड़ी आकर्षक व प्रभावी है। सिद्धान्त की सूक्ष्म और गहन गुत्थियों को आप सहज और सरल ढंग से युक्तिपूर्वक सुलझा देते हैं।

सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी आपकी अमूल्य सेवाएँ हैं। सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के उन्मूलन में सचेष्ट रहे और राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय रहने से आपको जैल भी जाना पड़ा। कई संस्थाओं के लिए आपने अपने प्रभाव से विपुल द्रव्य-राशि एकत्रित कराई। आपकी लगन, कर्मठता, सक्रियता, सादी वेष-भूषा, सरलता और मृदुव्यवहार आदि सभी सराहनीय हैं। इस विद्यालय की यशस्वी प्रगति में आपका वड़ा योगदान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ब्र.) पं. भुवनेन्द्रकुमार जी शास्त्री

संक्षिप्त परिचय

पं. भुवनेन्द्रकुमार जी शास्त्री का जन्म सं. १९६८ में सागर जिले के एक छोटे से ग्राम 'सेवारा' में हुआ था। इनके जन्म के २-३ माह पूर्व ही पिता जी का स्वर्गवास हो जाने से इन्हें अपनी मां, १ बड़ी वहिन और १ बड़े भाई सहित काकाजी के आश्रित रहना पड़ा, लेकिन ढाई-तीन वर्ष वाद ही काकाजी के चिर-वियोग से इनका परिवार विल्कुल ही निराश्रित हो गया। तव इनके मामाजी पूरे परिवार को अपने यहाँ वांदरी ले गये, जहाँ आर्थिक कठिनाईयों के वीच इनका लालन-पालन हुआ और प्राथमिक शिक्षा पूर्ण हुई।

तदन्तर पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी की विशेष कृपा से सागर की सत्तर्कसुधातरंगिणी दिग. जैन पाठशाला में प्रवेश मिला (यह पाठशाला ही वर्तमान में श्री गणेश दि. जैन स महावि. है) जहाँ से वनारस प्रथमा, कलकत्ता प्रथमा, व्याकरण मध्यमा तथा धर्मशास्त्री की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। अर्थाभाव में आपका छात्रजीवन भी वड़ा कष्टपूर्ण रहा। अर्थ की पूर्ति हेतु यहाँ इन्हें सिलाई का काम भी करना पड़ा। यहीं पर इन्हें अन्य रुचियाँ भी जाग्रत हुईं। समाज-सुधार और राष्ट्रीयता की भावनाएँ यहीं पर प्रस्फुटित और विकसित हुईं। संगीत भी यहीं सीखा। यहाँ राष्ट्रीय नेताओं के भाषण सुनते रहने से आपका झुकाव राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलनों की ओर हुआ और लगभग ६ माह तक इसमें सक्रियता से भाग लिया।

आर्थिक कठिनाईयों से परेशान होकर सन् १९३३ में अपनी पढ़ाई अध-वीच में ही छोड़कर वीना के श्री ना. नं. दिगम्बर जैन सं. विद्यालय में २०) मासिक वेतन पर नौकरी कर ली। सन् १९४३ तक १० वर्ष ये यहाँ अध्यापक रहे। इन्होंने यहाँ वड़े जागरूक रहकर आत्मीयता और लगन के साथ अपने उत्तरदायित्वों को सम्भाला। इनके प्रयास से यहाँ छात्रावास की पुनः स्थापना हुई और लौकिक शिक्षा हेतु अँग्रेजी मिडिल स्कूल भी खोला गया तथा वालिकाओं की धार्मिक शिक्षा हेतु पृथक् से कन्या-पाठशाला का शुभारम्भ किया गया। पं. जी यहाँ अध्यापन कार्य के साथ-साथ छात्रावास के प्रवन्ध का कार्य भी सम्भालते थे और अवसर आने पर संस्था के हिसाव-किताब, प्रबन्ध व संचालन में भी पूरा-पूरा सहयोग देते थे। कभी-कभी इन्हें गांव और कोर्ट-कचहरियों में भी विद्यालय एवं संस्था के कार्यों से जाना पड़ता था। जो भी कार्य इन्हें सौंपा गया वह कार्य पूरी लगन और निष्ठा से उसे पूरा किया। पं. धर्मदास जी शास्त्री यहाँ इनके वड़े प्रेरक व अच्छे मार्गदर्शक रहे। इनसे इन्हें जीवन के कतिपय अमूल्य सिद्धान्त मिले, जिनका निर्वाह वे आज भी अपने जीवन में करते आ रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध्यापन के साथ-साथ पंडितजी यहाँ धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्र में भी बड़े सक्रिय रहे। समाज में एकरस रहते हुए आप सभी धार्मिक और सामाजिक कार्यों में अग्रणी रहते थे और समाज में धार्मिक जागृति बनाये रखते थे। वाद्य संगीत के साथ पूजन-भक्ति, आरती आदि करना, स्थानीय विद्वानों के बीच तत्वचर्चा, सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श करना आदि भी इनके जीवन में समाहित थे। समाज-सुधार हेतु यहाँ इन्होंने 'सन्मार्ग प्रचारिणी समिति' नाम से एक संस्था भी स्थापित की थी, जिसके माध्यम से दस्साओं के लिए अनेक सामाजिक अधिकार इन्होंने दिलवाये और गजरथ-विरोधी आन्दोलन भी चलाया, जिसका प्रभाव बहुत समय तक रहा।

राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलनों में भी आप यहाँ काफी सक्रिय रहे। राष्ट्र के बड़े-बड़े नेताओं से आपका संपर्क रहता था और उनके आगमन पर ये सदैव उनके स्वागत-सत्कार के लिए तत्पर रहते थे। सन् १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने बड़ी सक्रियता से भाग लिया। फलतः ६ माह आपको भी जैल की यातनाएँ भुगतना पड़ीं।

सन् १९४३ में ये यहाँ से 'कार्यकर्ता शिक्षण शिविर' में शिक्षणार्थी के रूप में सहारनपुर गये और श्री कौशलप्रसाद जी की प्रेरणा से बीना-विद्यालय से त्यागपत्र देकर समाज-सुधार एवं समाजनिर्माण के कार्यहेतु समर्पित हुए, पर यह योजना सफल न होने से इन्हें यह कार्य छोड़ लखनऊ में नौकरी और स्वतन्त्र व्यवसाय करना पड़ा। इन्हें अपनी आजीविका हेतु कड़ा संघर्ष और जीतोड़ मेहनत करनी पड़ी, जिससे लम्बी बीमारियाँ भी झेलना पड़ीं। अनन्तर अपने बड़े भाई के आदेश तथा अनुग्रह पर ये लखनऊ से सपरिवार बांदरी चले आये, जहाँ स्वतन्त्र व्यवसाय आदि से १०-११ वर्षों में अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारा। मकान बनवाया: बच्चों को योग्य शिक्षा दिलाकर स्वावलम्बी व सद्-गृहस्थ बनाया। इसके बाद ये संसार से उदासीन हुए और आत्मकल्याण करना जीवन का लक्ष्य बनाया।

सन् १९६७-६८ में अपने परिवार की अनुमति ले इन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया और गृहत्याग कर श्री दिग. जैन उदासीन आश्रम इन्दौर में जाकर अध्यात्म-साधना में लग गये। समयसार, प्रवचनसार आदि ग्रन्थों का मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर आत्मतत्व के रहस्य को समझा, चारों अनुयोगों का स्वाध्याय-चिन्तन-मनन कर आगम एवं अध्यात्म के रहस्य और नयों के भावनात्मक स्वरूप को निष्पक्ष भाव से यथावत् समझा। पं वंशीधर जी न्यायालंकार और ब्र. स्वरूपानन्द जी का सान्निध्य यहाँ इन्हें प्राप्त हुआ, जिनसे इन्हें अध्यात्मविषयक अनेक गुत्थियों का सहज व सरल समाधान प्राप्त हुआ। ये लगभग ८ वर्ष इन्दौर रहे।

सन् १९७५ में समाज के कुछ प्रतिष्ठित लोगों के आग्रह से आप इन्दौर से श्री वर्णीव्रती आश्रम मढ़ियाजी क्षेत्र जवलपुर चले आये, जहाँ पर आप अधिष्ठाता पद पर रहते हुए आत्मकल्याण में संलग्न हैं।

सन् १९३३ से १९४३ तक के १० वर्षों के सेवाकाल में पंडित जी ने बीना-विद्यालय की प्रगति हेतु कड़ा श्रम किया है। तथा अपने सभी दायित्वों को पूर्ण निष्ठा और लगन के साथ निभाया है। इस सेवाकाल में आपने यहाँ की समाज को भी बहुत कुछ दिया है जिसे यहाँ की समाज कभी विस्मृत नहीं कर सकती। पंडित जी में अनेक गुण हैं, जिनकी वजह से वे यहाँ की समाज में इतने लोकप्रिय और एकरस होकर रहे। वे एक अच्छे कार्यकर्ता, समाजसुधारक, गायक, संगीतकार, नृत्यकार. अधिकारी विद्वान्, मिलनसार, सफल अध्यापक, कुशल प्रवन्धक, चिन्तक और अच्छे राष्ट्रीय नेता आदि सभी कुछ थे। यहाँ की उनकी सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता। ▭

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० मोतीलाल जी, एम. ए. साहित्याचार्य
संक्षिप्त परिचय

नाम — पं० मोतीलाल जी जैन; एम० ए०, साहित्याचार्य

पितृनाम — श्री मूलचन्द्र जी जैन

जन्मस्थान — सीहोरा, जिला - सागर (मध्य प्रदेश)

जन्मतिथि — १६ अगस्त १९३१

शैक्ष० योग्यता — एम० ए० (संस्कृत), साहित्याचार्य, धर्मशास्त्री

अध्ययन स्थान — श्री ग० दि० जैन सं० महाविद्यालय सागर तथा स्या० महाविद्यालय वाराणसी।

अध्यापन — सन् १९४७ से १९६२ तक श्री ना० नं० दि० जैन संस्कृत विद्यालय, बीना (सागर)
सन् १९६२ से १९६६ तक सर हु. संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर में प्राध्यापक
सन् १९६६ से १९७५ तक श्री ना० नं० दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय, बीना में
सन् १९७५ से स्याद्वाद महाविद्यालय, वारणसी में प्राचार्य पद पर सेवारत।

इस विद्यालय को सबसे अधिक और अच्छी सेवाएँ देने वाले कर्मठ व कुशल अध्यापक आप ही हैं। आपने कुल २८ वर्ष यहाँ अध्यापन कार्य किया है। आप व्याकरण, साहित्य और धर्म के अधिकारी विद्वान् हैं। सफल शिक्षक, कुशल प्रशासक और योग्य प्रधानाध्यापक के सभी गुणों से विभूषित हैं। अनुशासन कठोर पर हृदय से मृदु-स्वभावी हैं। मनस्वी स्वाभिमानी होते हुए भी बड़े उदार व मिलनसार हैं। आपके अनेकानेक मेधावी शिष्य आज विभिन्न उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं और समाज तथा राष्ट्र की सेवा में संलग्न हैं। आप अनेकों के जीवन-निर्माता व भाग्य विधाता हैं। अपने श्रम से सिंचित कर इस विद्यालय को संवर्द्धित व फलित किया है। अतः इससे उनका लगाव अधिक रहा है। इन्दौर जाने बाद जब इस विद्यालय की स्थिति बिगड़ने लगी तो इन्हें बड़ी वेदना हुई और वहाँ से प्राध्यापक के प्रतिष्ठित पद, और अधिक वेतन की भी परवाह न कर अपने इस विद्यालय की स्थिति को सुधारने हेतु अल्पवेतन पर ही बीना चले आये थे। इस विद्यालय की यशस्वी प्रगति में आपका योगदान अमूल्य व अविस्मरणीय है। □

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य

सँक्षिप्त परिचय

नाम	—	पं० दयाचन्द्र जी साहित्याचार्य
पितृनाम	—	श्री पं० भगवानदास जी भाईजी अध्यात्मवेत्ता
जन्मस्थान	—	शाहपुर, जिला - सागर, मध्य प्रदेश
जन्मतिथि	—	११-८-१९१५ (श्रावण शुक्ला — १ सं० १९८०)
उपाधि (शैक्ष०)	—	साहित्याचार्य - (सं० सं० विश्व वि० वाराणसी) धर्मशास्त्री - (श्री मा० दि० जैन परीक्षालय, वम्बई)
अध्ययन स्थान	—	श्री गणेश दिगम्बर जैन सं० महावि०, सागर।
अध्यापन कार्य	—	सन् १९३७ से १९४४ तक - जैन विद्यालय, मंडी बामोरा सन् १९४४ से १९४७ तक - संस्कृत विद्या०, वीना सन् १९४७ से १९५० तक - श्री दि० जैन वर्णी गुरुकुल मढ़िया क्षेत्र, जवलपुर
वर्तमान कार्यक्षेत्र	—	सनू १९५० से श्री गणेश दिग० जैन सं० महाविद्या सागर में प्रवक्ता पद पर सेवारत हैं।

आप एकअच्छे सेवाभावी समाजसेवी साहित्योपासक; सफल अध्यापक, कुशल प्रशासक व उच्चकोटि के विद्वान् हैं। आपने अपनी अमूल्य सेवाओं से इस विद्यालय को प्रगति - पथ पर आगे बढ़ाया है। आपके समय अनेक मेधावी छात्र पढ़कर इस विद्यालय से उच्च शिक्षा हेतु बाहर गये, जो पढ़ लिखकर लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् बने और इस विद्यालय के गौरव को बढ़ाया है। अतः इस विद्यालय की प्रगति में आपका बड़ा सराहनीय सहयोग रहा है। ◻

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० राजधरलाल जी व्याकरणाचार्य

सरल व्यक्तित्व के धनी पं० राजधर लाल जी का जन्म वि० सं० १९७० में ग्राम गुरसौरा उत्तर प्रदेश में हुआ था। आपके पिता श्री नन्दलाल जी थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने ही ग्राम गुरसौरा में हुई और उच्च शिक्षा श्री स्या० महाविद्यालय वाराणसी में हुई।

श्री ना० दिग० जैन सं० वि० बीना को आपकी सेवाएँ सन् १९६२ से १९६५ तक प्राप्त हुईं हैं। जब पं० मोहनलाल जी प्राध्यापक होकर यहाँ से सं० महाविद्यालय इन्दौर चले गये तो इस विद्याल की स्थिति बड़ी निराश्रित-सी हो गई थी। ऐसे समय में पं० जी ने इस विद्यालय को अपनी सेवाएँ देकर प्रगति-पथ पर आगे बढ़ाया। इसी समय आपके सहयोगी पं० जीवन्धर शास्त्री; बीना तथा स्व० श्री गिरधारीलाल जी (अंग्रेजी अध्यापक) बीना आपके सहयोगी अध्यापक थे।

पं० जीवन्धर जी शास्त्री

इसी विद्यालय के स्नातक पं० फूलचन्द्र जी सि. शा. के शिष्य पं. जीवन्धर जी शास्त्री का जन्म ग्राम सिगोंजीपुर (जि० सागर) म० प्र० में हुआ था। आपके पिताश्री स्व० श्री नायक भद्रईलाल जी व माता श्रीमती लक्ष्मीबाई थीं। आपने बीना विद्यालय में सन् १९५६ से १९६५ तक तथा १९६८ से १९७० तक लगभग ११ वर्ष तक अध्यापन कार्य किया है। पं० धर्मदास जी के बाद यहाँ के धर्माध्यापक पद की गद्दी को आपने ही सम्भाला था। पारिवारिक दायित्वों के बीच रहते हुए भी आपने बड़ी लगन और निष्ठा के साथ अपनी सेवाएँ इस विद्यालय को प्रदान की हैं। वर्तमान में आप श्री दि० जैन छात्रावास, बड़वानी (प० निमाड़) को अपनी सेवाओं से उपकृत कर रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं0 फूलचन्द्र जी शास्त्री

सँक्षिप्त परिचय

नाम	—	पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री
पितृनाम	—	
जन्मस्थान	—	सिलगन, जिला - ललितपुर (उत्तर प्रदेश)
जन्मतिथि	—	सन् १९१०
अध्ययन	—	सिलगन, क्षेत्रपाल जी ललितपुर तथा सि० महा विद्यालय मुरैना में।
शिक्षा	—	धर्मशास्त्री (बम्बई बोर्ड)
अध्यापन	—	सुजानगढ़/लाड़नूँ/क्षेत्रपाल जी ललितपूर / फिरोजाबाद / सवाईमाधोपुर में आ० वीरसागर के संघ में। सन् १९७५ से श्री ना० नं० दि० जैन सं० विद्यालय, वीना में।
साहित्यिक कार्य	—	नित्य नवदेव पूजन, तीर्थंकरों की स्तुति, मंगल पाठों का हिन्दी पद्यानुवाद, शास्त्र अष्टक आदि।

आप धार्मिक वृत्ति के भद्र परिणामी धर्मज्ञ विद्वान् । आपकी दिनचर्या बड़ी नियमित है। जैनाचार की मूर्ति गम्भीर, शान्त व निर्मल परिणामी व्यक्ति हैं। आप सन् १९७५ से इस विद्यालय में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। इस विद्यालय की प्रगति एवं विकास हेतु सतत प्रयत्नशील रहते हैं। आप इस विद्यालय में प्रधानाध्यापक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० मुन्नालाल जी, एम. ए. साहित्य शास्त्री

संक्षिप्त परिचय

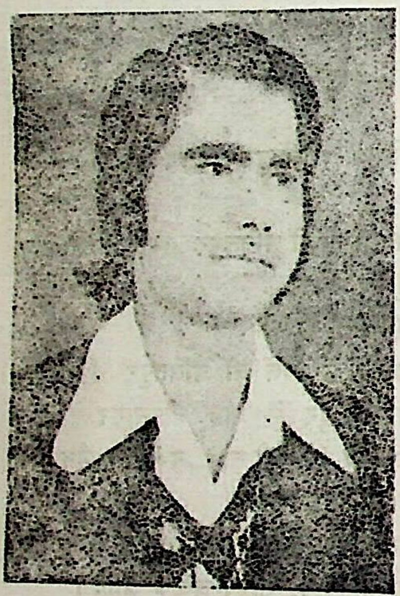

नाम	—	पं० मुन्नालाल जी. एम० ए०, साहित्यशास्त्री
पितृनाम	—	श्री भैयालाल जी जैन
जन्मस्थान	—	गौना (मड़ावरा) जिला - ललितपूर (उ० प्र०)
जन्मतिथि	—	३ दिसम्वर सन् १९५५
शिक्षा	—	व्याकरण मध्यमा, सा० शास्त्री, एम० ए० (संस्कृत), बी० टी० सी० (प्रशिक्षित)
अध्ययन	—	गौना, साढूमल; ललितपूर, वाराणसी बीना में
विवाह	—	चौ० श्री दुलीचन्द्र जी की सुपुत्री सौ० रूपा के साथ सन् १९७८ में बीना में हुआ।

आप में युवकोचित उत्साह और कार्य के प्रति लगन, है। साहित्य तथा व्याकरण के योग्य अध्यापक हैं। विद्यालय की उन्नति तथा छात्रों के वहुमुखी विकास हेतु आप सतत सचेष्ट रहते हैं। अध्यापन के साथ-साथ विद्यालय के छात्रों को व्यायाम, आसनें, पी० टी० तथा खेलकूद का भी अच्छा प्रशिक्षण देते हैं। साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु छात्रों को प्रशिक्षण व प्रोत्साहन व मार्गदर्शन देते हैं। श्री स्या० शि० परि० शाखा बीना के आप उपमंत्री हैं। इसके माध्यम से आप सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में रुचि लेते हैं। समाज में धार्मिक जागृति बनाये रखते हैं।

सन् १९७६ से आप इस विद्यालय में सेवारत हैं। आपके अथक प्रयासों से सं० सं० वि० वि० वाराणसी ने इस विद्यालय को पुनः मान्यता प्राप्त हुई है तथा आपकी ही प्रेरणा से यहाँ व्याकरण पूर्वमध्यमा की कक्षाएँ प्रारम्भ हुई हैं। आप इस विद्यालय को प्रगति की ओर अग्रसर करने में सतत संलग्न रहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यालय की वर्तमान स्थिति

● फूलचन्द जैन शास्त्री, प्रधानाध्यापक

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय विगत पौन शताब्दी से अपने पथ की विभिन्न बाधाओं और रुकावटों को पार करता हुआ प्रगति के समतल धरातल पर आ पहुँचा है। आगे बढ़ने के लिए अब इसे उचित दिशाबोध, सद्भावनाओं और सत्प्रेरणाओं का सम्बल और नूतन जीवन-शक्ति चाहिए है जिससे वह स्फूर्तिवान्, सबल और सशक्त बनकर गन्तव्य पथ पर आगे बढ़ सके। यहाँ मैं इसकी वर्तमान स्थिति से आपको परिचित कर रहा हूँ—

छात्र एवं अध्यापक—

इस समय विद्यालय में प्रथमा तथा पूर्वमध्यमा की कक्षाओं के कुल २० छात्र हैं, जो सभी बाहर के हैं। अतः सभी यहाँ के छात्रावास में रहते हैं। इनके अध्यापन हेतु मैं तथा पं. मुन्नालाल जी शास्त्री सेवारत हैं। छात्रों के उज्ज्वल भविष्य निर्माण तथा विद्यालय की प्रगति हेतु हम दोनों यथाशक्ति श्रमशील रहते हैं। (छात्रसूची तथा अध्यापक सूची द्रष्टव्य है)

विषय एवं शिक्षण व्यवस्था:—

इन छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु यहाँ धार्मिक नैतिक शिक्षा के साथ-साथ लौकिक तथा व्यावहारिक शिक्षा भी निःशुल्क दी जाती है। सोलापुर-बम्बई के प्रवेशिका तथा विशारद के पाठ्यक्रम तथा सं. सं. वि. विद्यालय वाराणसी के व्याकरण प्रथमा तथा पूर्वमध्यमा के पाठ्यक्रम यहाँ पढ़ाये जाते हैं। विद्यालय दिन में ११ बजे से ४ बजे शाम तक लगता है। इसमें ८ कालखण्ड होते हैं।

बम्बई-बोर्ड के उक्त पाठ्यक्रम में जैनधर्म चौथा भाग, छहढाला, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह, मोक्षशास्त्र, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, नाममाला, क्षत्रचूड़ामणि, सं. शिक्षा भाग १-२, लघुसिद्धान्त कौमुदी नीतिसंग्रह आदि धर्म, साहित्य तथा व्याकरण के ग्रन्थों का अध्यापन होता है।

प्रथमा तथा मध्यमा कक्षाओं में संस्कृत व्याकरण (लघु तथा मध्यसिद्धान्त कौमुदी) संस्कृत-साहित्य (रघुवंश, प्रतापविजय) दर्शन (तर्कसंग्रह) ज्योतिष (ज्योतिष-प्रबोध) गणित, हिन्दी, सामाजिक अध्ययन, अँग्रेजी, प्राकृत (कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि विषयों का अध्यापन होता है।

इनके सिवाय म. प्र शिक्षाविभाग के अनुसार छठवीं से ९ वीं तक के विषयों का भी अध्यापन इन्हें किया जाता है। इन विषयों का अध्यापन यहाँ की उ. मा. कन्याशाला की अध्यापिकाएँ करती हैं। इस प्रकार ये छात्र प्रथमा के साथ-साथ आठवीं कक्षा भी उत्तीर्ण करते हैं और पूर्वमध्यमा के छात्रों को मा. शि. मं. म. प्र. भोपाल की मेट्रिक परीक्षा भी दिलाये जाने की व्यवस्था विचाराधीन है।

विद्यालय का छात्रावास:—

छात्रावास में तीन कमरे, दो छतें और विद्यालय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का एक बड़ा हाल है। सभी जगह बिजली तथा प्रकाश की उचित व्यवस्था है। सभी निःशुल्क ही यहाँ रहते हैं। उनके रहने-पढ़ने की सभी व्यवस्था ठीक है। गरीब छात्रों को आवश्यकतानुसार वस्त्र आदि की व्यवस्था भी कर दी जाती हैं।

छात्रावास की एक नियमित दिनचर्या है। उसी के अनुसार सभी छात्रों को अपना कार्य करना अनिवार्य है। (दिनचर्य्या पृष्ठ ४० पर दृष्टव्य है) ऋतु के अनुसार यह दिनचर्या बदलती रहती है। मैं स्वयं छात्रावास का का प्रबन्धक हूँ। विद्यालय के समय के बाद भी छात्रों की गतिविधियों पर मैं निगाह रखता हूँ और सदैव उन्हें अपने कर्तव्यपालन के लिए प्रेरित व आगाह करता रहता हूँ।

भोजनशाला:—

इस विद्यालय के सभी छात्रों को अध्ययन तथा आवास के साथ-साथ भोजन की भी निःशुल्क उत्तम व्यवस्था है। उन्हें दोनों टाइम ताजा और अच्छा खाना दिया जाता है तथा विशेष उत्सवों और त्यौहारों पर मिष्ठान्न और पक्वान्न आदि की भी व्यवस्था की जाती है। इनका भोजन बनाने के लिए समाज की ही एक रसोइन सेवारत है तथा पानी, चौका-बर्तन; झाड़ू-बुहारी और चपरासी के काम के लिए एक बरौआ भी सेवारत हैं। इन दोनों से छात्रों को कभी कोई असुविधा तथा परेशानी नहीं होती।

व्यायाम तथा खेल कूँद—

व्यायाम तथा खेलकूँद शिक्षा का ही एक अंग है। इनसे बालक स्वस्थ, प्रसन्न और आलस्यरहित तो रहते ही हैं साथ ही ये उनमें आज्ञाकारिता, अनुशासन, कर्तव्य-परायणता, तत्परता, दृढ़ता आदि महत्वपूर्ण आदर्श गुणों को भी विकसित करते हैं। इनसे व्यवस्थित तथा अनुशासित ढंग से कार्य सम्पन्न करने की शिक्षा भी बालकों को मिलती है। इसीलिए यहाँ छात्रावासीय दिनचर्या के अनुसार प्रतिदिन दण्ड-बैठक, विविध आसनें, पी.टी. प्रदर्शन आदि कराये जाते हैं तथा डम्बल, लेजम आदि की कसरतें भी कराई जाती हैं। खेलों में खो-खो, कवड्डी, फुटवाल आदि की भी व्यवस्था है। इसके प्रभारी श्री मुन्नालाल जी शास्त्री हैं। ये रोज व्यायामादि कराते हैं।

छात्रहितकारिणी सभा—

अपने विचारों को वेझिझक प्रकट करने के लिए, शब्द तथा ज्ञानभंडार बढ़ाने के लिए और वक्तृत्व-शक्ति का विकास करने के लिए प्रति रविवार को रात्रि में छात्रों की एक सभा होती है जिसमें विद्यालय के छात्र पूर्व निर्धारित विभिन्न विषयों पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत करते हैं, भाषण देते हैं। इस सभा में भाषण, वाद-विवाद, अन्त्याक्षरी आदि आयोजित किये जाते हैं। यह सभा छात्रावास-प्रवन्धक या अन्य आमन्त्रित किसी विशिष्ट व्यक्ति की अध्यक्षता में आयोजित की जाती है।

पुस्तकालय—

विद्यालय का एक पुस्तकालय भी है, जो 'सरस्वती भवन' कहलाता है। इसमें हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, और अंग्रेजी भाषाओं की धर्म, साहित्य, न्याय, दर्शन, व्याकरण आदि विषयों पर लगभग १००० पुस्तकें हैं। इनका उपयोग समय-समय पर विद्यालय के छात्र तथा अध्यापक करते हैं।

दर्शन-पूजन:—

विद्यालयीय छात्रों में अमिट धार्मिक संस्कार डालने के लिए प्रति रविवार को सामूहिक पूजन-भक्ति का आयोजन श्रीमन्दिर जी में किया जाता है जिसमें सभी छात्र सम्मिलित होते हैं। वैसे प्रतिदिन सुबह-शाम देव-दर्शन, भक्ति आदि करना सभी को अनिवार्य है ही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियाँ:—

धार्मिक तथा राष्ट्रीय विशेष उत्सवों पर विद्यालय के छात्र नाटक, प्रहसन, भाषण, कविता-पाठ आदि विभिन्न सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत करते हैं। इनका अभ्यास उन्हें कराया जाता है। ऐसे अवसरों पर सभी छात्र उत्सव की तैयारियाँ बड़े उत्साह से करते हैं। इन सबसे छात्रों में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरुचि पैदा होती है तथा समाज में भी धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना जागृत होती है।

आतिथ्य एवं शिष्टाचार की शिक्षा:—

बाहर से पधारे अतिथियों (विद्वान्, त्यागी, व्रती, साधु, विशिष्ट महापुरुष आदि) की उचित व्यवस्था, सम्भाल, देखरेख, सेवा-शुश्रूषा आदि में इन छात्रों का सहयोग लिया जाता है। इससे उन्हें अतिथि-सत्कार, सद्-व्यवहार तथा शिष्टाचार की शिक्षा मिलती है।

उपसंहार—

निःसन्देह, इस विद्यालय में बालकों के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण हेतु तथा उनके सर्वतोमुखी विकास के लिए हर सम्भव प्रयास किया जाता है। इस विद्यालय की यह परम्परा ही रही है। इसी से इसका अतीत भी बड़ा गौरवमय रहा है। इस विद्यालय से निकले हुए छात्रों ने गौरवपूर्ण पद प्राप्त कर इसकी गरिमा तथा यशःसुरभि को चहुँओर बिखेरा है। इसका भविष्य भी उज्ज्वल हो तथा पुनः अपने अतीत की उस गरिमा को यह विद्यालय प्राप्त करे—ऐसी मेरी अभिलाषा है।

एतदर्थ मेरे कतिपय विनम्र सुझाव इस प्रकार हैं—

(१) अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण स्थिति वाली वर्तमान भोजनशाला, जो कि अस्वास्थ्यकर जगह पर स्थित है, का पुनर्निर्माण अपेक्षित है। एतदर्थ मैं संस्थाधिकारियों सहृदय उदार श्रीमानों से इसकी अपेक्षा रखता हूँ।

(२) छात्रावास के कमरों की अपर्याप्तता तथा असुविधा को देखते हुए विद्यालय-भवन के ऊपर छत एवं कुछ कमरों के निर्माण की भी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। अथवा चौ. सुन्दरलाल जी वाले संस्था के मकान की ओर विद्यालय का विस्तार कर नई व्यवस्था कर दी जाय तो यह भी उत्तम होगा।

(३) छात्रावासीय छात्रों को सोने के लिए तखत या पलंगों की व्यवस्था, खेल-कूद के सामान की पर्याप्त व्यवस्था तथा व्यायाम-खेल-कूद आदि के शिक्षण-प्रशिक्षण की उचित तथा पर्याप्त व्यवस्था भी अपेक्षणीय है।

(४) छात्र-संख्या, विषय तथा कक्षाओं की स्थिति को देखते हुए कुछ और अध्यापकों की आवश्यकता भी महसूस की जा रही है जिसकी पूर्ति की भी अपेक्षा अधिकारी महानुभावों से की जाती है।

(५) मध्यप्रदेशीय शिक्षा विभाग की ८ वीं एवं १० वीं के सम्पूर्ण विषयों को पढ़ाने की समुचित व्यवस्था कर उनकी परीक्षा दिलाने की भी उचित व्यवस्था यदि हो जाय तो निश्चित ही विद्यालय की छात्रसंख्या में आशातीत वृद्धि होगी।

(६) आयुर्वेद एक विशुद्ध भारतीय चिकित्सा पद्धति है। बढ़ते हुए रोगों के शमन के लिए तथा गिरते हुए स्वास्थ्य के सुधार के लिए आज आयुर्वेद का पठन-पाठन अत्यन्त उपयोगी व लाभप्रद है। यह शिक्षा एक ओर स्वावलम्बी श्रेष्ठ जीवन-यापन के योग्य बनाती है और दूसरी ओर जनसेवा के लिए भी उपयुक्त एवं अच्छा सुअवसर प्रदान करती है।

अतएव मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि भविष्य में इस विद्यालय में आयुर्वेद-शिक्षण की उचित व्यवस्था हो सके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो बड़ा अच्छा होगा। यह व्यवस्था छात्र-संख्या में भी वृद्धि करेगी।

मेरा विश्वास है कि उक्त कतिपय नूतन परिवर्तनों से इस विद्यालय में नूतन प्राणप्रतिष्ठा होगी और उत्तरोत्तर प्रगति-पथ पर बढ़ने के लिए पर्याप्त सम्बल प्राप्त होगा। फलतः अचिरात् ही यह विद्यालय भविष्य में अपने गौरवमय अतीत को प्राप्त कर लेगा।

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन,
संस्कृत विद्यालय, बीना,
जि. सागर (म. प्र.)

शरीरं शीर्यते नाशा, गलत्यायुर्न पापधीः ।
मोहः स्फुरति नात्मार्थः, पश्य वृत्तं शरीरिणाम् ।।

—देखो ! इन जीवों का प्रवर्तन कैसा आश्चर्यकारक है कि शरीर तो प्रतिदिन छीजता जाता है पर आशा नहीं छीजती है, किन्तु बढ़ती ही जाती है। तथा आयुर्बल तो घटता जाता है, पर पापकार्यों में बुद्धि बढ़ती जाती है। मोह तो नित्य स्फुरायमान होता है, परन्तु यह प्राणी अपने हित और कल्याणमार्ग में नहीं लगता है। सो यह कैसा अज्ञान का माहात्म्य है ?

—आ० शुभचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान अध्यापक

क्रमांक	नाम	योग्यताएँ	स्थान	पद	कब से
१.	पं० श्री फूलचन्द जी	धर्मशास्त्री (बम्बई बोर्ड)	जखौरा (ललितपुर) उत्तर प्रदेश	प्रधानाध्यापक	सन् १९७५ से
२.	पं० श्री मुन्नालाल जी	एम०ए० (संस्कृत) एम.ए. (राज.शा.) साहित्याचार्य	गौना (मड़ावरा)	सहायक अध्या०	सन् १९७६ से

वर्तमान अन्य कर्मचारी

१. श्री प्यारेलाल — बरौआ २. श्रीमती कपूरीबाई — रसोइन

× × ×

विद्यालय के वर्तमान छात्र

छात्र	कक्षा	स्थान
१ अशोक कुमार	पूर्वमध्यमा प्रथम खंड	मोहनपुर जि० गुना, म० प्र०
२—सुबोध कुमार	,,	ककड़ारी, जि० ललितपुर, उ० प्र०
३—अनिलकुमार	,,	ककड़ारी, जि० ललितपुर, उ० प्र०
४—पद्मचन्द्र	,,	विदिशा, जि० विदिशा, म० प्र०
५—खूबचन्द्र	,,	शाहगढ़, जि० छतरपुर, म० प्र०
६—रमेशकुमार	प्रथमा तृ० वर्ष	धुवारा, जि० छतरपुर, म० प्र०
७—प्रकाशचन्द्र	,,	ललितपुर — उत्तर प्रदेश
८—प्रदीपकुमार	,,	ककड़ारी, जि० ललितपुर, उ० प्र०
९—प्रमोदकुमार	,,	ककड़ारी, जि० ललितपुर, उ० प्र०
१०—सत्येन्द्रकुमार	,,	मड़ावरा, जि० ललितपुर, उ० प्र०
११—दयाचन्द्र	प्रथमा द्वि० वर्ष	गौना, जि० ललितपुर, उ० प्र०
१२—निर्मलकुमार	,,	सेसई, जि० सागर, म० प्र०
१३—जिनेशकुमार	,,	धुवारा, जि० छतरपुर, म० प्र०
१४—आनन्दकुमार	,,	विदिशा, जि० विदिशा, म० प्र०
१५—राजकुमार	,,	मढ़ैया, जि० सागर, म० प्र०
१६—निर्मलचन्द्र	,,	रजौला, जि० ललितपुर, उ० प्र०
१७—देवेन्द्रकुमार	,,	शाहगढ़; जि० सागर, म० प्र०
१८—लक्ष्मीचन्द्र	,,	दमोह; जि० दमोह, म० प्र०
१९—चक्रेन्द्रकुमार	प्रथमा प्र० वर्ष	मड़ावरा, जि० ललितपुर, उ० प्र०
२०—कमलेशकुमार	,,	हटा, जि० दमोह म० प्र०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छात्रावास की दिनचर्या

क्रमांक	समय	कार्य
१.	प्रातः ४ बजे से ४.३०	उपस्थिति, प्रार्थना; सामायिक
२.	प्रातः ४.३० से ६ तक	स्वतः अध्ययन (विषय की तैयारी)
३.	प्रातः ६ से ६.३० तक	शौचादि क्रियाएँ
४.	प्रातः ६.३० से ७.१५ तक	व्यायाम, आसनें, अन्य कसरतें
५.	प्रातः ७.१५ से ७.४५	स्नान आदि
६.	प्रातः ७.४५ से ८.३०	देवदर्शन, पूजन भक्ति, स्वाध्याय
७.	प्रातः ८.३० से १० तक	स्वतः अध्ययन, गृहकार्य
८.	प्रातः १० से १०.४५ तक	भोजन
९.	प्रातः १०.४५ से ११ तक	विद्यालय हेतु तैयारी
१०.	प्रातः ११ से शाम ४.३०	विद्यालय में अध्ययन
११.	शाम ४.३० से ५ तक	पी० टी०
१२.	शाम ५ से ५.१५ तक	शारीरिक शुद्धि
१३.	शाम ५.१५ से ५.४५	भोजन
१४.	शाम ५.४५ से ६ ३०	भ्रमण
१५.	शाम ६.३० से ७ तक	प्रार्थना, देवदर्शन, स्तुति, आरती
१६.	रात्रि ७ से ९.३० तक	स्वतः अध्ययन
१७.	रात्रि ९ ३० से प्रातः ४	शयन (रात्रि विश्राम)

नोट—दिनचर्या में ऋतुअनुसार परिवर्तन होता रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

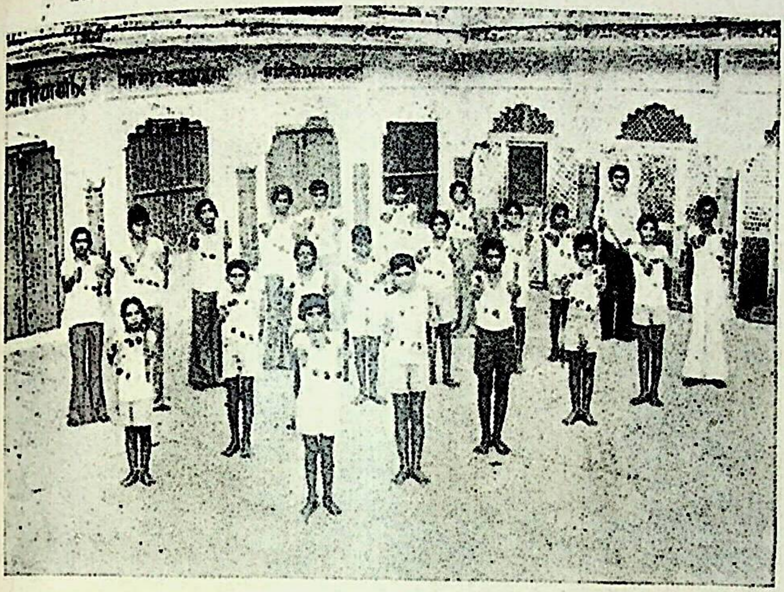

पं० मुन्नालाल जी शास्त्री छात्रों को शारीरिक प्रशिक्षण देते हुए

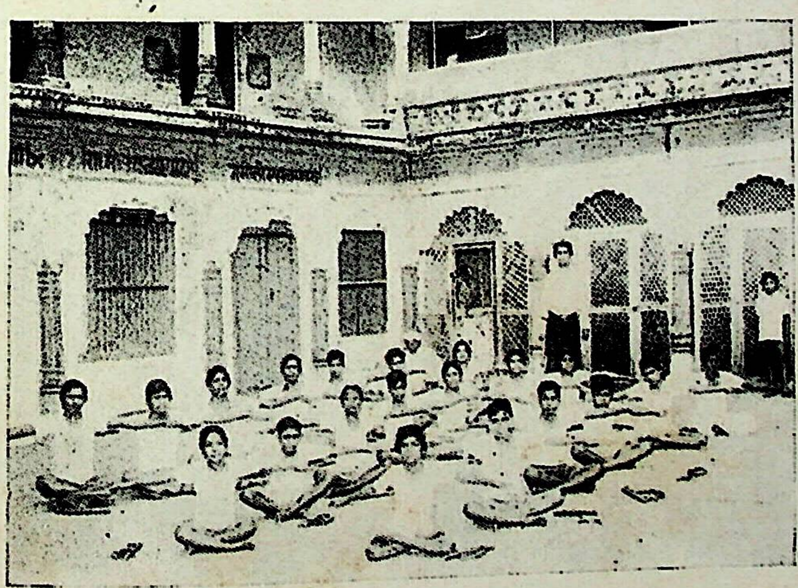

विद्यालय के छात्र व्यायाम करते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत विद्यालय के वर्तमान अध्यापक, छात्र एवं कर्मचारी

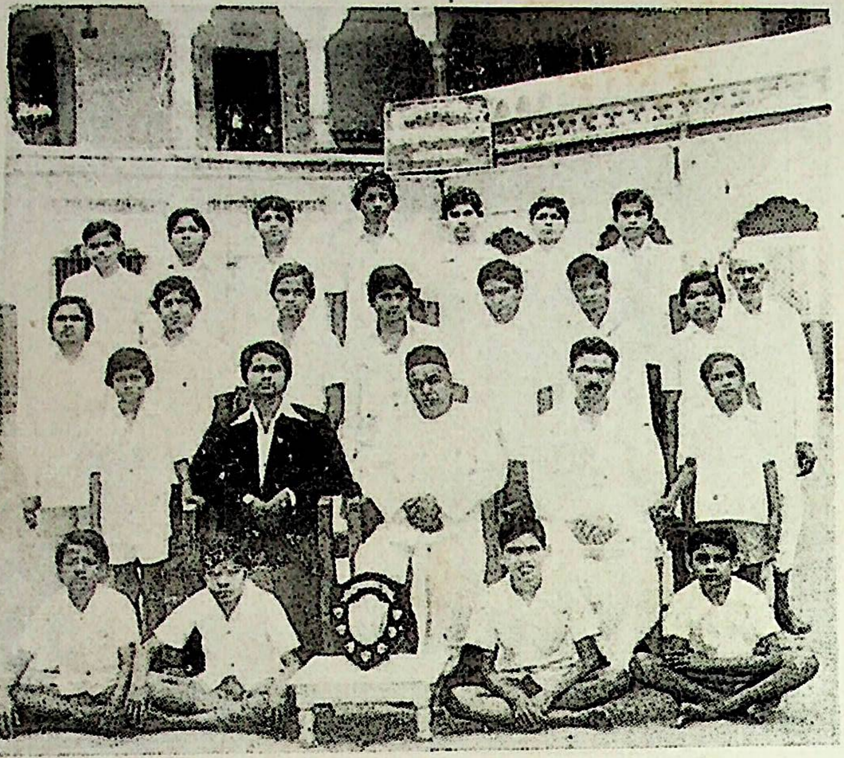

कुर्सी पर बांये से बैठे हुए–श्री पं मुन्नालाल जी शास्त्री पं.फूलचन्दजी शास्त्री व सन्तोषकुमार मुनीम

संस्कृत विद्यालय के छात्र एवं अध्यापक

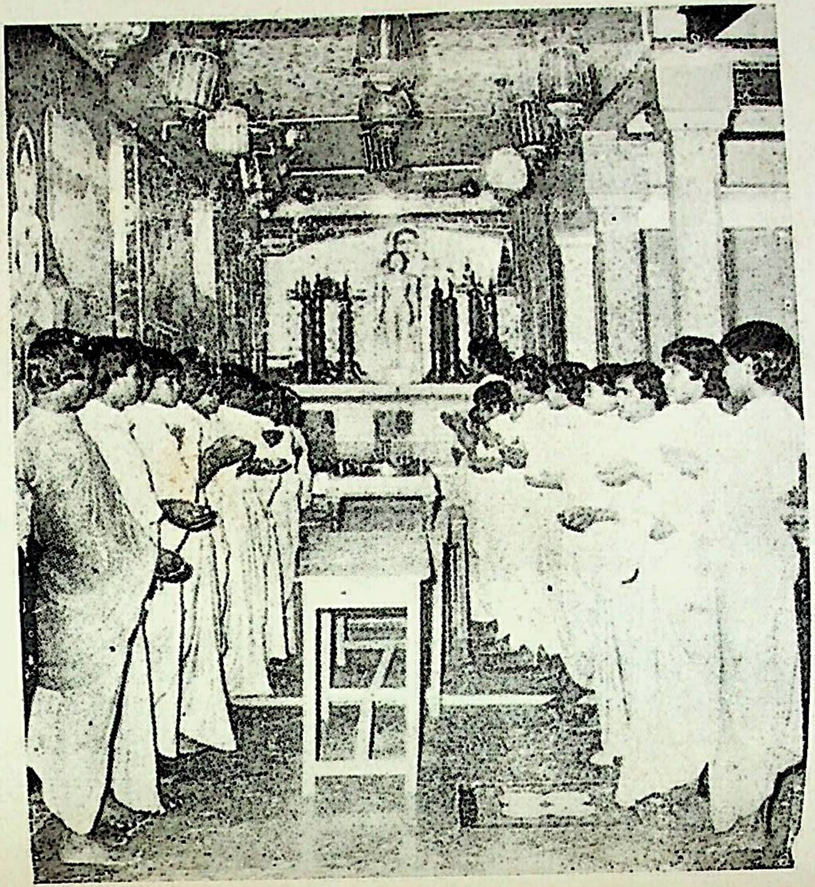

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीरकजयन्ती महोत्सव वर्ष का
शुभारम्भ एवं कार्यक्रम

आश्विन वदी ११ सं. २०३७ को श्री नाभिनन्दन दिग. जैन संस्कृत विद्यालय की स्थापना को ७४ वर्ष पूर्ण हुए। अतः इसकी प्रगति के ७५ वें वर्ष में प्रवेश करने पर हीरक जयन्ती मनाने का निश्चय हुआ। "हीरकजयन्ती वर्ष" का शुभारम्भ क्वार वदी ११ सं. २०३७ की रात्रि में एक भव्य समारोह में किया गया। इसकी अध्यक्षता माननीय पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य ने की। इस विद्यालय के संस्थापक स्व. सिं. नाथूराम जी साव के पौत्र सिं. श्री राजकुमार जी ने उल्लासमय वातावरण में ज्ञान ज्योति के प्रतीक दीप को प्रज्वलित कर इसका उद्घाटन किया तथा 'सभा' के माननीय अध्यक्ष श्री राजेन्द्र कुमार जी ने मंगलकलश की स्थापना की। मंगलकलश स्थापना की सम्पूर्ण विधि पं. फूलचन्द्रजी शास्त्री ने सम्पन्न कराई तथा समारोह का संचालन पं श्री अभयकुमारजी शास्त्री ने किया। माननीय अध्यक्ष एवँ वक्ताओं ने अपने भाषण में इस विद्यालय के उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करते हुए संस्कृत तथा धार्मिक शिक्षा की उपयोगिता पर पर्याप्त प्रकाश डाला। भक्तिरस से परिपूर्ण वाद्य संगीत के साथ यह समारोह मध्यरात्रि तक चलता रहा।

"हीरक जयन्ती" को मूर्तरूप देने के लिए पं. श्री अभयकुमारजी शास्त्री को 'स्मारिका' के सम्पादन का कार्य भार सौंपा गया। जो उन्होंने दिनरात श्रम करके बड़ी लगन सूझ-बूझ तथा तत्परता के साथ इस कार्य को पूरा किया। एतदर्थ हम उनके बड़े आभारी हैं।

स्मारिका प्रकाशन हेतु श्री नरेन्द्रकुमार जी ताम्रकार संचालक "राज प्रि. प्रेस" विदिशा से सम्पर्क किया गया। उन्होंने इस कार्य को बड़ी जिम्मेदारी से सम्भाला और अल्प समय में ही इस कार्य को पूर्णकर हमें अनुगृहीत किया है। इनकी तत्परता एवं सौजन्य के प्रति हम बड़े कृतज्ञ हैं।

हीरक जयन्ती का वृहद् आयोजन श्रुतपंचमी पर एक सप्ताह के कार्यक्रमों के साथ दि. २-६-८१ से ७-६-८१ तक विविध कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न करना तय हुआ कार्यक्रम निम्नानुसार हैं।

दिनांक २ जून ८१ मंगलवार प्रातः ७ वजे ध्वजारोहण; विद्यालय के छात्रों के कार्यक्रम, रात्रि ८ बजे शास्त्रप्रवचन, हीरक जयन्ती समारोह का उद्घाटन (उद्घाटन कर्ता दानवीर श्रीमंत सेठ डालचन्द जी सागर) रात्रि ९ बजे नृत्यकार अग्निपुत्र राजेन्द्रकुमार द्वारा अग्नि तलवार कीलों आदि पर साहसिक तथा अद्भुत नृत्य।

दिनांक ३ जून ८१ बुधवार प्रातः ७/३० बजे धर्मोपदेश, धार्मिक, शिक्षण, रात्रि ८ वजे शास्त्र प्रवचन, अतिथि पार्टियों द्वारा आरती प्रतियोगिता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिनांक ४ जून ८१ गुरुवार प्रातः ७/३० बजे तत्व चर्चा, धार्मिक शिक्षण, अपरान्ह ३ बजे विद्वद्गोष्ठी; वर्तमान शैक्षणिक स्थिति पर विचार। रात्रि ८ बजे शास्त्र प्रवचन के उपरांत श्रावक शिरोमणी मुनिभक्त श्री भागचन्द जी पाटनी कलकत्ता की अध्यक्षता में 'हीरक जयन्ति स्मारिका'' का विमोचन, स्वस्ति श्री १०५ भट्टारक चारुकीर्ति पंडिताचार्यवर्य स्वामी जी मूड़वद्री के कर-कमलों द्वारा एवं विद्यालय का प्रगति विवरण, रात्रि ६/३० बजे "दहेज के दुखद परिणाम" नाटक का मंचन (श्री स्याद्वाद शिक्षण परिषद सागर)।

दिनांक ५ जून ८१ शुक्रवार प्रातः ७/३० बजे धर्मोपदेश धार्मिक शिक्षण, अपरांह ३ बजे विद्वद्गोष्ठी धार्मिक एवं सामाजिक विषयों पर विचार। रात्रि ८ बजे शास्त्र प्रवचनोपरांत विद्यालय के परम सहायकों अध्यापकों, भूतपूर्व अधिकारियों, स्नातकों का सम्मान (अध्यक्ष स. सिं. धन्यकुमार जी कटनी)।

दिनांक ६ जून ८१ शनिवार प्रातः ६/३० बजे श्री १००८ श्री जिनेन्द्रदेव का विमान जी एवं "ज्ञानरथ" चल समारोह अपरान्ह श्रुत पूजन, जलविहार, रात्रि ८ बजे शास्त्र प्रवचनोपरांत आमसभा, श्रुतपंचमी माहात्म्य पर विद्वानों के भाषण।

दिनांक ७ जून ८१ रविवार प्रातः ७ बजे सामूहिक पूजन उपरांत धर्मोपदेश, अपरान्ह ३ बजे विद्वद्गोष्ठी। रात्रि ८ बजे समापन समारोह, पुरस्कार वितरण अतिथि गण विदाई आदि, रात्रि ६/३० बजे अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन (सम्भावित कवि-सर्व श्री हजारीलाल जी काका, सरमनलाल 'सरस' सकरार; सरोज इन्दौर; जिनेश्वरदास जिनेश, मिश्रीलाल जी एड. गुना, प्रकाशजी पटना, हुक्का जी बिजनौर, नेमीचन्द जी शिवपुरी, सुरेश सरल',जवाहरलाल 'आग', 'प्रभात' सिरोंज, हुकमचन्दजी आदि)।

इसी अवसर पर समाज को नूतन दिशा बोध देने के लिए एक वृहद विद्वत्सम्मेलन आयोजित करने का निश्चय किया गया। जिसमें देश के ख्याति प्राप्त जैनधर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व, आदि विषयों के मर्मज्ञ मनीषी विद्वानों को आमन्त्रित किया गया। आमन्त्रित विद्वानों में श्री पं. कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री पं जगन्मोहन लाल जी, पं. फूलचन्दजी सि शास्त्री वाराणसी, डा. पन्नालाल जी साहित्याचार्य सागर डा. ज्योति प्रसाद जी लखनऊ डा. लालबहादुर जी शास्त्री दिल्ली, पं हुकमचन्द जी भारिल्ल; पं. बाबूलाल जी जमादार डा. नरेन्द्र प्रकाश जी, दर्शनाचार्य गुलाबचन्द्र जी पं तेजपाल जी काला प. भुवनेन्द्रकुमार जी पं. मोतीलाल जी पं. चन्द्रमौलि जी शास्त्री, पं. अमृतलाल जी जैन-दर्शनाचार्य; पं. सुमेरचन्द जी, पं. नेमीचन्द्र जी पं. प्रकाश जी हितैषी, पं. नाथूलाल जी श्री बाबूलाल जी पाटोदी, पं. विमल कुमार जी सोंरया, डा. कस्तूरचन्द्रजी कासलीवाल. पं. भंवरलाल जी न्यायतीर्थ, डा. रमेशचन्द्र जी डा. लालचन्द्र जी, श्री कैलाशचन्द जी चौ. आदि प्रमुख हैं।

आरती प्रतियोगिता हेतु दलपतपुर, शाहपुर, दमोह, अभाना, बांदकपुर, गढ़ाकोटा, की पार्टियों को लिखा गया। आमंत्रित महानुभावों में से अधिकांश की स्वीकृतियाँ प्राप्त हुईं लेकिन श्री मढ़िया जी (जबलपुर) में आचार्य विद्यासागर जी के सान्निध्य में चल रहे शिविर के कारण तथा जयपुर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह में जाने के कारण कतिपय महानुभावों ने यहाँ आने में अपनी असमर्थता व्यक्त की फीरोजाबाद में इसी समय चल रहे शिक्षण शिविर के कारण भी कुछ लोग यहाँ आने में असमर्थ रहे। पर— हीरक जयन्ती समारोह की सफल सम्पन्नता हेतु सभी की हार्दिक शुभकामनाएं हमें प्राप्त हुईं है—एतदर्थ हम उनके प्रति आभारी हैं।

हीरक जयन्ती समारोह के ही उपलक्ष्य में—श्री स्या. शि. परिषद शाखा बीना ने दिनांक २४-१-८१ से ७-६-८१ तक एक १५ दिवसीय स्याद्वाद शिक्षण शिविर का आयोजन किया जो स्थानीय समाज तथा बाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालिकाओं में एक अपूर्व धार्मिक जागृति का काम कर रहा है।

शिक्षण शिविर का उद्‌घाटन दि. २४-५-८१ को नगरपालिका अध्यक्ष, परिषद के अधिष्ठाता एवं सभा के परम सहायक श्रीमान् सि. आनन्दकुमार जी द्वारा किया गया, तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता पं. वंशीधर जी व्याकरणाचार्य द्वारा की गई। इस अवसर पर समाज से तन, मन, धन से सहयोग देने हेतु निवेदन किया गया, मैं इन सभी के प्रति आभारी हूँ।

पूज्यपाद आचार्य विद्यासागर जी महाराज पूज्य १०५ भट्टारक चारुकीर्ति स्वामी जी मूड़विद्री तथा पूज्य गुरुवर १०५ क्षु. सन्मतिसागर जी महाराज के आशीर्वाद से यह शुभ कार्य सम्पन्न हो रहा है। यह पूर्ण सफल होगा ऐसी हमें आशा तथा पूर्ण विश्वास है।

अभी कुछ ही समयपूर्व श्री ना. नं दि. जैन संस्कृत विद्यालय के भोजनालय का छप्पर जीर्ण शीर्ण होने से टूटकर गिर गया है जिसका निर्माण होना आवश्यक है। भोजनालय का वर्तमान स्थान अपर्याप्त है। यह सि. राजकुमार जी की भूमि से जुड़ा हुआ है। अतः भोजनालय के विस्तार हेतु सि. राजकुमार जी से निवेदन किया, और उन्होंने वड़े हर्ष के साथ अपने यह उद्‌गार व्यक्त करते हुए कि हमारे पूर्वजों ने जिस विद्यातरु को आरोपित, संरक्षित, पल्लवित, पुष्पित, और फलित किया है उसकी समृद्धि हेतु मेरा तन, मन, धन सब कुछ समर्पित है। भोजनालय से संलग्न अपनी ५०० वर्गफीट भूमि भोजनालय के विस्तार हेतु [redacted] दी। [redacted] सि. राजकुमार जी की सहयोगात्मक उदारवृत्ति अपने पूर्वजों जैसी ही है। इससे हमें वड़ी प्रसन्नता है। उनके इस महान योगदान के लिए "सभा" उनकी वड़ी आभारी व कृतज्ञ है। भविष्य में समाज को इनसे बड़ी आशाएं तथा अपेक्षाएं हैं। मैं यह उम्मीद करता हूँ कि वे इस विद्यालय के चहुमुँखी विकास हेतु अपनी उदार दृष्टि तथा कृपाभाव भविष्य में भी इसी भाँति वनाये रखेंगे।

इस अवसर पर उन महानुभावों के योगदान को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता जिन्होंने अपनी हार्दिक शुभकामनाओं के साथ स्मारिका में प्रकाशनार्थ अपने विज्ञापन प्रदानकर हमें आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। सभा उन सबके प्रति भी आभार व्यक्त करती है।

वर्तमान नगरपालिका अध्यक्ष सि. आनन्दकुमार जी ने अतिथियों के निवासार्थ अपना भवन एवं भोजनादि में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया है, उनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ। वीरसेवा संघ एवं नगर की अन्य संस्थाओं द्वारा सहयोग देने का आश्वासन दिया मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। जिन सम्माननीय सज्जनों ने कार्यक्रम को सम्पन्न करने के हेतु जो आर्थिक सहयोग प्रदान कि मैं उनका भी आभारी हूँ। हीरक जयन्ती कार्यक्रम सम्पन्नार्थ दान दातारों की सूची निम्नप्रकार है।

१००१) श्री कुन्दनलाल भैयालाल जी
[redacted]
२५१) ,, सि. आनन्दकुमार जी
२५१) ,, सिद्धार्थ कुमार जी वुखारिया
२५१) ,, श्री गुप्तदान जी
२०१) ,, छवीलचन्द विमलकुमार सराफ
१०१) ,, सनतकुमार मोतीलाल जी
१०१) ,, मुन्नालाल जी रामलाल नायक
१०१) ,, तारचन्द जी लावरे वाले
१०१) ,, श्रीमती मीरावाई धर्मपत्नी वालचन्दजी कठरया
१०१) ,, श्रेयांस कुमार जी
५१) ,, श्रीमती इन्द्रानीवाई धर्मपत्नी खेमचन्द जी
५१) ,, अकलंककुमार प्रकाशचन्द्र जी
५१) मे. खेतसिंह नन्हेलाल जी
५१) , चौ. दुलीचन्द अभयकुमारजी
५१) ,, गनेश प्रसाद जी पान वाले

(सं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५१) श्री चौ. प्रेमचन्द श्रीचन्द्र जी
३१) ,, लखमीचन्द वीरेन्द्रकुमार जी
३१) ,, नरेन्द्रकुमार जी बुखारिया
२१) ,, सुमेरचन्द जी कठरया
२१) ,, बाबूलाल जी पदमकुमार जी
२१) ,, प्यारेलाल जी मिठया
२१) ;, शीलचन्द जी मृगावली
२१) ;, डालचन्द जी नायक
२१) ,, कपूरचन्दजी खुरई वाले
२१) ;, धन्नालाल कोमलचन्द

ग्यारह रुपया दान देने वाले दातार निम्नप्रकार हैं।

चौ० मूलचन्द जी, प्रेमचन्द जी, आजाद कुमारजी, मुन्नीलाल वड़े गांव, डा. सनमतकुमार जी; जिनेश्वरदास सुरेशचन्द जी, लखमीचन्द जी वसंतकुमार जी, पं फूलचन्द श्री कुमार जी, शीलचन्द जी, गुलझारीलाल जी, प्रेमचन्दजी शाह, प्रकाशचन्द शाह, आनन्द कुमारजी चौ. कन्हैयालाल जी, दशरथलाल जी, श्रेयांस हार्ड वेयर स्टोर, हजारीलाल जी, चौ. सुरेशचन्द जी, निर्मलचन्द जी दीपचन्द जी, विमलकुमार प्यारेलाल जी, अशोककुमार जी।

दिनांक ३०-५-८१ तक लिखाई गई राशि का विवरण है। पत्रिका छप जाने के कारण वाद के दातारों के नाम देने से असमर्थ रहा हूँ। हीरक जयन्ती कार्यक्रम बनाने, आयोजित करने, सम्माननीय महानुभावों से चर्चा करने आदि में किसी प्रकार की भूलचूक हुई हो तो मैं हृदय से क्षमा प्रार्थी हूँ। □

विनीत

विमलकुमार सराफ मन्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीरक जयन्ती वर्ष समारोह के शुभारम्भ के अवसर पर सभा के अध्यक्ष श्री राजेन्द्रकुमार जैन 'मंगल कलश' की स्थापना करते हुए

सि० राजकुमार जी बीना 'हीरक जयन्ती वर्ष' समारोह का दीप प्रज्वलित करके शुभारम्भ करते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीरक जयन्ती वर्ष समारोह के शुभारम्भ के अवसर पर सभा के मंत्री श्री विमलकुमारजी सर्राफ पं० बंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीना का स्वागत करते हुये

ना० नं० दि० जैन सं० वि० की हीरकजयंती स्मारिका के सम्पादक

श्री अभयकुमार जैन व्याख्याता
(प्रधान सम्पादक)

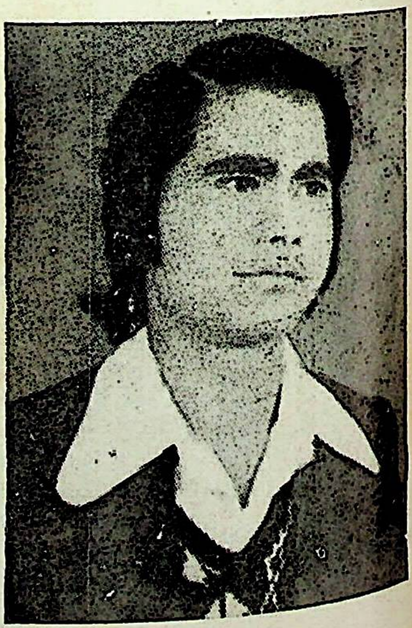

श्री पं० मुन्नालालजी शास्त्री
(सह सम्पादक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड चतुर्थ

पुष्पवाटिका-लेखमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड चतुर्थ (पुष्प-वाटिका) लेखमाला

क्रम संख्या	लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१.	संस्कृत विद्यालयों की देन	—पं. नाथूलाल जी शास्त्री	१
२.	वर्णी जी का सं वि की स्थापना में योगदान	—डा. पन्नालाल जी साहित्याचार्य	३
३.	शिक्षा और हमारा कर्तव्य	—पं. तेजपाल जी काला	५
४.	विद्या और उसके रूप	—पं. फूलचन्द जी शास्त्री	११
५.	किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या	—पं. मुन्नालाल जी शास्त्री	१३
६.	श्रमण संस्कृति की प्राचीनता	—डा. ज्योतिप्रसाद जैन	१६
७.	जैन धर्म	—डा महेन्द्रसागर प्रचंडिया	१६
८.	जैन धर्म की प्रभावना में नारियों का योगदान	—श्रीमती सुशीलाबाई जैन	२१
९.	जैनादर्शों की व्यवहारिकता	—डा हुकमचन्द भारिल्ल	२४
१०.	जैन तत्वज्ञान पर एक दृष्टि	—डा. शोभानाथ पाठक	२७
११.	जैन संस्कृति का मूलाधार त्याग	—पं. अगरचन्द जी नाहटा	३०
१२.	जैनाचार मानवसुख का मूलाधार	—पं. नेमीचन्द जी शास्त्री	३४
१३.	जैनाचार का स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से महत्व	—पं उदयचन्द शास्त्री	४०
१४.	हम चारित्र बिछाकर नैतिकता ओढ़ रहे हैं	—सुरेश 'सरल'	४३
१५.	हम चरित्र निर्माण करें	—नेमीचन्द जी गोंद वाले	४६
१६.	जीवन आलोकित करने का संयम दृढ़ आधार है	—कल्याणकुमार 'शशि'	४९
१७.	श्रावक के वाट आवश्यक कर्म	—भागचन्द जी पाटनी	५१
१८.	युवकों के उत्थान में बुजर्गों की भूमिका	—प्रो सुपार्श्वकुमार जैन	५७
१९.	भगवान वाहुवली एक जीवन चेतना	—डा निजामउद्दीन	६०
२०.	संस्कृतिक गरिमा का प्रतीक बुन्देलखण्ड	—विमलकुमार सोंरया	६२
२१.	युगादि पुरुष श्री नाभिनंदन की गौरव गाथा	—पं. दयाचन्द जी साहित्याचार्य	६५
२२.	प्राकृत वांगमय और उसकी देन	—डा. दरबारीलाल कोठिया	७१
२३.	द्रव्यसंग्रह एक अध्ययन	—ऋषभचन्द शास्त्री	७७
२४.	जैनदर्शन में द्रव्य	—डा लालचन्द जैन	८२
२५.	यूनानीदर्शन और जैन दर्शन	—डा. रमेशचन्द जैन	८९
२६.	प्राकृत भाषा एवं आधुनिक भाषाएं	—डा. प्रेमसुमन जैन	९७
२७.	जैन कथा साहित्य का वैशिष्टय	—डा. जगदीशचन्द जी जैन	१०१
२८.	जैनदर्शन एवं बौद्धधर्म	—डा. कोमलचन्द जी	१०६
२९.	महावीर जयन्ती धर्म का हिमालय	—सुरेश सरल	११०

—००—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत विद्यालयों की देन

● पं० नाथूलाल जी सि० शास्त्री

आदरणीय पंडित जी अ० भा० दिग० जैन विद्वत्परिषद् के उपाध्यक्ष व जैनधर्म एवं जैनदर्शन के पुरानी पीढ़ी के उच्चकोटि के विद्वान् हैं। आपका जीवन बड़ा सादा, संयमित व नियमित है। सरलता, सदाशयता, सादगी, सच्चरित्रता, सौजन्य, मृदुता, विनम्रता, उदारता, धार्मिकता आदि मानवीय उदात्त गुण आपके व्यक्तित्व में स्पष्ट झलकते हैं। धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में आपका विशेष योगदान रहता है। विद्वत्वर्ग तथा समाज में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है।

प्रस्तुत लेख में आपने संस्कृत विद्यालयों की उपयोगिता तथा महत्व पर संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। आज देश में जैनविद्या के पारंगत विद्वान् धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, शोध-खोज-अनुसन्धान आदि क्षेत्रों में कर्तव्यरत दिखलाई देते हैं, ये सब इन्हीं विद्यालयों की देन हैं। यदि ये विद्यालय न होते तो आज जो जैनधर्म, समाज का स्वरूप व स्थिति है, वह न होती। अतः जैन धर्म, समाज एवं संस्कृति के संरक्षक, संबर्द्धक, प्रचारक तथा प्रसारक ये संस्कृत विद्यालय ही हैं—यह बिल्कुल सत्य है। पण्डित जी का यह लेख पठनीय व गम्भीरता से चिन्तनीय है।

—सम्पादक

पूज्य गुरुवर्य श्री गोपालदास जी वरैया एवं पूज्य पाद श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी की कृपा से जैन संस्कृत विद्यालयों और पाठशालाओं की स्थापना हुई तथा उनमें पढ़कर सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् समाज में तैयार हुए। संस्कृत विद्यालयों में संस्कृत, धर्म, न्याय, दर्शन, साहित्य, एवं व्याकरण का अध्ययन कर इन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की और अपनी विद्वत्ता का सदुपयोग साहित्य-सर्जन, ग्रन्थ-सम्पादन, शोध-अनुसन्धान, संस्था-संचालन, अध्यापन एवं उच्चतम चारित्रधारण आदि में कर जैन-संस्कृति, जैनाचार-विचार एवं जैनधर्म का संरक्षण व सम्बर्द्धन किया है और वर्तमान में कर रहे हैं।

इस अर्थ एवं अणुयुग में भी हमारे ये विद्वान् सतोष-पूर्वक सदाचार तत्पर रहकर राष्ट्र तथा समाज की सेवा में संलग्न बने हुए हैं। यह समाज की ओर से विद्वानों की ओर उपेक्षा का ही परिणाम है कि पहले के समान नये विद्वान् तैयार नहीं हो रहे हैं, जो समाज में ही रहकर आजीविका प्राप्त कर सकें; क्योंकि समाज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें उचित आजीविका देना नहीं चाहती। फिर भी संस्कृत विद्यालयों से जो विद्वान् लाभ उठा रहे हैं, वे अन्य क्षेत्रों में अच्छे पदों पर कार्य करते हुए भी यथाशक्ति समाज-सेवा करते रहते हैं।

आज भी हमारे संस्कृत विद्यालय बड़े उपयोगी हैं। इनमें जैनधर्म एवं जैन वाङ्मय के उच्च ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता है। सच्चरित्र एवं शिष्टाचार के संस्कार उनमें डाले जाते हैं तथा विनम्रता, सौहार्द, सहानुभूति, सहिष्णुता और पारस्परिक प्रेम जैसे मानवीय गुणों का विकास भी किया जाता है। इस तरह सदाचार-सम्पन्न मनीषी विद्वान् इन विद्यालयों में तैयार होते हैं। आज ऐसे अनेक पी० एच० डी०, साहित्य—जैनदर्शन-प्राकृत-आचार्य उपाधिधारी विद्वान् विश्वविद्यालयों, कालेजों आदि में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं, जो हमारा, हमारी समाज का, हमारे इन संस्कृत विद्यालयों का गौरव बढ़ा रहे हैं।

वर्तमान में जिस रूप में ये संस्कृत विद्यालय चल रहे हैं, उनसे हमें निराशा नहीं रखना चाहिए। इनके कार्यकर्ता यदि सेवाभावी और कर्तव्यनिष्ठ बने रहें तो विशेष प्रगति होती रहेगी—यह सुनिश्चित है।

—उपाध्यक्ष-भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद
सम्पादक—'सन्मति-वाणी' शीश महल
इन्दौर (म० प्र०)

धर्मो नाम कृपामूलः सा तु जीवानुकम्पनम्।
अशरण्यशरण्यत्वमतो धार्मिकलक्षणम्॥

दया ही धर्म का मूल है और जीवों की रक्षा करनी ही दया है। इसलिए रक्षाविहीनों की रक्षा करना धर्मात्मा का लक्षण है। —क्षत्रचूड़ामणि—५-३५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूज्य वर्णी जी का संस्कृत विद्यालयों की स्थापना में योगदान

● डा० श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य पी-एच. डी.

आदरणीय पं० जी सा० संस्कृत भाषा के अधिकारी विद्वान्, अच्छे कवि और सिद्धहस्त लेखक हैं। आपमें चिन्तक, विचारक, टीकाकार, भाषान्तरकार और सम्पादक की भी अपूर्व क्षमताएँ हैं। आपके द्वारा सम्पादित, अनूदित, टीकाकृत तथा मौलिकरूप से लिखी गई अनेक कृतियाँ तथा ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं। अनेक पुरस्कार, प्रशस्ति पत्र तथा मान-पत्र आपको मिल चुके हैं। साहित्यक, सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में आपका महान् एवं सराहनीय योगदान है। विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष हैं। सदैव रचनात्मक प्रवृत्तियों को क्रियान्वित करते रहते हैं। एक त्यागी-व्रती जैसी नियमित-संयमित दिन चर्या है। सतत ज्ञानाभ्यास में निरत रहते हैं। आप बड़े प्रशान्तमूर्ति, मृदुस्वभावी व भद्र परिणामी हैं।

प्रातः स्मरणीय पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी संस्कृत शिक्षा के बड़े प्रेरक थे। उन्हीं की सत्प्रेरणा से विभिन्न स्थानों पर संस्कृत विद्यालय तथा पाठशालाएँ स्थापित हुई हैं। संस्कृत विद्यालयों की स्थापना में पूज्य वर्णी जी महाराज के महान् योगदान को आदरणीय पण्डित जी सा० ने इस लेख में अपनी लेखनी द्वारा प्रकट किया है।

—सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक समय ऐसा आ गया था। जब जैन धर्म के ज्ञाता पुरुषों की अत्यन्त विरलता हो गयी थी। जयपुर तथा आगरा आदि स्थानों में ही कुछ स्वाध्यायी विद्वान् रह गये थे। इधर आर्य समाज की ओर से जगह-जगह जैन धर्म के ऊपर कटु आक्षेप कर शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया जाता था। तब स्व० 'गुरुणां गुरु' गोपालदास जी बरैया ने मुरेना में सिद्धान्त विद्यालय की स्थापना करायी थी और उसके पश्चात् पूज्यवर गणेशप्रसाद जी वर्णी महाराज ने बनारस में स्याद्वाद महाविद्यालय और सागर में सत्तर्कसुधातरंगिणी पाठशाला स्थापित की थी। इनका अनुकरण कर इन्दौर, सहारनपुर, साढूमल, ललितपुर, बरुवासागर, पपौरा, द्रोणगिरि तथा बीना आदि स्थानों में संस्कृत विद्यालय स्थापित किये गये। इन विद्यालयों की स्थापना में पूज्य वर्णी जी की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन ने बड़ा काम किया है।

इन विद्यालयों में पढ़कर तैयार हुए विद्वान् आज समाज में गौरवपूर्ण स्थान को प्राप्त हैं तथा उन्होंने जैन साहित्य के उद्धार और प्रकाशन आदि में बड़ा भारी योगदान किया है। इन्हीं विद्वानों की सिंह गर्जनाओं से जैनधर्म की प्रभुता विस्तृत हुई है तथा शास्त्रार्थ की चुनौतियाँ बन्द हुई हैं।

जिन धवल, जयधवल और महाधवल ग्रन्थों के दर्शनों के लिए लोग तरसते थे आज इन विद्वानों के प्रयत्न से वे ग्रन्थ हिन्दी टीकाओं के साथ प्रकाशित हो स्वाध्याय के लिये सर्वजनसुलभ हुए हैं। संस्कृत भाषा के माध्यम से जैनविद्या के प्रचार में जितना कार्य वर्णी जी ने किया है इस युग में उतना कार्य किसी अन्य महानुभाव से नहीं हो सका है।

बनारस का स्याद्वाद महाविद्यालय वर्णी जी ने किस परिस्थिति ओर किस विधि से स्थापित किया था—इसका इतिहास देखने से उनकी कर्तृत्व शक्ति का पता चलता है। मात्र एक रुपये की सहायता से इतना विशाल विद्यालय स्थापित कर देना, यह उन्हीं की कुशलता का परिणाम है। बुन्देलखण्ड की जैन जनता में तो वर्णी जी ने वह मन्त्र फूंका कि अनेक बालक जैन धर्म की उच्च शिक्षा के लिए इन विद्यालयों में प्रविष्ट होने लगे। स्व० श्री पं० देवकीनन्दन जी, स्व० श्री पं० वंशीधर जी न्यायालंकार, स्व० श्री पं० जीवन्धर जी इन्दौर, स्व० श्री पं० दयाचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री तथा सिद्धान्त शास्त्र के महान् वेत्ता पं० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री इन्हीं विद्यालयों की देन हैं। इन विद्वानों ने वर्णी जी की पदानुगमन करके ही समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

प्राचार्य—श्री गणेश दि० जैन सं० महाविद्यालय
सागर (म० प्र०)

मंगलाचरण

भुवनाम्भोजमार्तण्डं धर्मामृतपयोधरम्।
योगिकल्पतरुं नौमि देवदेवं वृषध्वजम्॥
—आ० शुभचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षा और हमारा कर्तव्य

● जैनरत्न पं० तेजपाल जी काला, नादगांव

पं० तेजपाल जी काला ख्यातिप्राप्त विद्वान् और सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी असीम ज्ञानसाधना सतत स्वाध्याय और विद्वत्-सम्पर्क का प्रतिफल है। आत्मसुधार और समाजसेवा में आपकी गहरी रुचि है। अतएव इन विषयों पर आप अपनी २० वर्ष की अवस्था से ही लिखते आ रहे हैं। मन्त्री, सहा. मंत्री, अध्यक्ष, प्रतिनिधि या सभासद के रूप में विभिन्न संस्थाओं में रहकर आप अपनी सेवाओं से समाज को प्रेरणा एवं दिशाबोध देकर स्वकर्तव्य का निर्वाह भली-भांति करते आ रहे हैं।

काला जी का प्रस्तुत लेख बड़ा प्रेरक और समाज को नूतन दिशाबोध देने वाला है। आज के भौतिकवादी पाश्चात्य सभ्यता के युग में अर्थकरी लौकिक शिक्षा लोगों को सत्पथ और जीवन के यथार्थ लक्ष्य से भ्रष्ट कर लोभी, आचार-विचारहीन, खान-पान व चरित्र से भ्रष्ट बना रही है। फलतः समाज विशृंखलित, विकृत व विफल हो रहा है और युवा-पीढ़ी दिग्भ्रमित, अनुशासनहीन उच्छृंखल, कदाचारी, स्वार्थी व धर्मपराङ्मुख हो रही है। अतः आज सर्वाधिक आवश्यकता है धार्मिक-नैतिक शिक्षा से युक्त लौकिक शिक्षा की। यह शिक्षा सच्चरित्र, सत्यनिष्ठ सन्तोषी जीवनयापन की प्रेरणा देने के साथ-साथ न्याय और ईमानदारी से अर्थोपार्जन करते हुए स्वपरकल्याण के लिए प्रेरित भी करती है। पूर्वजों द्वारा संस्थापित-आरोपित शालाएँ, पाठशालाएँ, विद्यालय, महाविद्यालय ऐसी ही संस्कार-शालाएँ हैं जहाँ सुसंस्कृत, सेवाभावी, चरित्रवान सुयोग्य नागरिक तैयार होते हैं। हमारा कर्तव्य बालकों को ऐसी ही सुशिक्षा दिलाने का होना चाहिए।

—सम्पादक

जैन दर्शन में प्राणियों के चार प्रमुख भाग बताये गये हैं—(१) मनुष्य (२) देव (३) तिर्यंच और (४) नारकी। इनमें मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। तिर्यंच तर्थात् पशु-पक्षी कीड़े-मकोड़े आदि की हीनता तो हमारे प्रत्यक्ष ही है। नारकियों के कष्टों और दु.खों का पार नहीं। देव यद्यपि दिव्य शरीर एवं भोगोपभोग के सभी साधनों से सदा परिवेष्टित रहते हैं, जीवनयापन हेतु भी उन्हें किसी तरह का कष्ट नहीं उठाना पड़ता, तथापि अपने से वैभवशाली ऋद्धिधारी देवों को देख उन्हें मानसिक कष्ट बहुत होता है। आखिर मृत्यु का दुख तो उन्हें भी भोगना पड़ता है। यद्यपि जन्म-मरण, जरा-रोग, निर्बलता, निर्धनता पराधीनता, भय, भूख-प्यास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि के दुःख तो मनुष्यों को भी भोगना पड़ते हैं-तथापि मनुष्य समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ इसीलिए माना गया है कि सच्चा और शाश्वत मोक्षसुख इसी मनुष्यगति से सम्भव है। इसी भव से पुरुषार्थ करके यह संसार भ्रमण के अनादिकाल के चक्र से मुक्त हो सकता है। अन्य किसी गति के जीवों को यह सौभाग्य सुलभ नहीं है।

शाश्वत समीचीन मोक्षसुख की उपलब्धि में ज्ञानगुण का अपना विशेष महत्व है। यद्यपि ज्ञानगुण सभी जीवों में हीनाधिक रूप में पाया जाता है; किन्तु उसकी पूर्णता के बिना मोक्ष-अवस्था को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। ज्ञान गुण की पूर्णता (सर्वज्ञता) की प्राप्ति मनुष्य के ही सम्भव है। इसी लिए प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अतः मोक्षसुख की उपलब्धि में सम्पूर्ण एवं एकमात्र सहायक इस ज्ञान गुण के विषय में विचार करना क्रम प्राप्त हो जाता है।

ज्ञान और शिक्षा—

ये दोनों एक ही अर्थ के वाचक शब्द हैं। शिक्षा का अर्थ 'शासन करना' है। यह मनुष्य को मन और इन्द्रियों पर, जो चंचल और वेलगाम घोड़ों की तरह स्वच्छन्द और आपत्तिदायक होती हैं, शासन करना सिखलाती है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य मन और इन्द्रियों का स्वयं गुलाम न होकर उन पर वह अपना नियंत्रण रखता है। जिस शिक्षा में यह बात नहीं पायी जाती वह शिक्षा—शिक्षा नहीं, कुशिक्षा है। ज्ञान नहीं, कुज्ञान है।

मन और इन्द्रियाँ इतनी चंचल होती हैं कि ये मनुष्य की बुद्धि को कभी स्थिर नहीं रहने देतीं। इस बुद्धि अस्थैर्य के कारण मनुष्य सारासार विचार; विवेक, सदाचरण, संयम आदि, जिन पर इसके सुख का सारा दारमदार है, सब कुछ भूल जाता है और कुमार्गरत होकर अनाचार प्रवृत्ति करता है। फलतः अन्त में दुःखी होकर मरता है और पुनः दुर्गतियों में जन्म-मरण कर दुःखी हो घूमता है।

जिस शिक्षा से मन और इन्द्रियों की विषयाशक्ति पर नियन्त्रण रखने की क्षमता प्राप्त हो वह शिक्षा-सत्शिक्षा है और यह शिक्षा प्राप्त करना मानव जीवन का, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, मूल लक्ष्य होना चाहिए। जीवन की वह खास गरज है।

इसमें सन्देह नहीं कि आज समस्त राष्ट्र शिक्षा-प्रचार में प्रचुर धन व्यय करते हैं। भारत सरकार भी इस काम में पीछे नहीं है। देश में अनेक वड़े-वड़े विश्व-विद्यालय हैं और असंख स्कूलस् और कालेज हैं। उनमें जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है वह पाश्चात्य और भौतिक शिक्षा का अनुकरणमात्र है। इससे भौतिकता का विकास आशातीत हुआ है और हो रहा है तथापि इस शिक्षा से मनुष्य में जिस मानवता और अध्यात्म का विकास होना चाहिए था, वह नहीं हो रहा है। फलतः सारा विश्व ही आज महायुद्ध के भय से आतंकित है। भारत भी भुखमरी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार आदि दुष्चक्र में बुरी तरह संत्रस्त है। आधुनिक इस भौतिक शिक्षा से जनता का कैसा अकल्याण हो रहा है?—यह वात बड़े-बड़े शिक्षाविज्ञों के अनुभव में भी आ चुकी है।

वास्तव में भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्व अंग्रेजी दासता के समय जब देश में शिक्षा के प्रचार के वारे में विचार किया गया तो उस लार्डमैकाले ने कहा था कि 'पराधीन भारतियों को इसी पाश्चात्य शिक्षा में ढाला जाय ताकि रंगरूप में वे भारतीय रहते हुए भी वेषभूषा; खान-पान आदि सब में पाश्चात्यों की नकल हो।' हुआ भी ऐसा ही। आज हम देखते हैं कि भारत को आजाद हुए ३३ वर्ष हो जाने पर भी पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण होने के कारण देश मानवीय भारतीय संस्कृति से विपरीत भौतिक पाश्चात्य संस्कृति का ही गुलाम बन गया है।

पाश्चात्य शिक्षा से शिक्षित लोगों में आचार-विचार सब भारतीयता के प्रतिकूल हैं। सदाचार और खानपान आदि भी भ्रष्ट हैं। धर्म पर श्रद्धा नहीं है; उसे वे मखौल समझते हैं। महानज्ञानी महर्षियों के अध्यात्म शास्त्रों को गपोड़ें बतलाते हैं, वेषभूषा और रहन-सहन भी पाश्चात्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की नकल है। पाश्चात्य संस्कृति का दास्यत्व अभी भी गया नहीं है। इस विदेशी शिक्षा के कारण देश में आज अशान्ति है। अध्यात्म-शिक्षा से रहित होने के कारण व्यक्ति का जीवन वर्तमान में भी दुखी है और पारलौकिक दृष्टि से भी अनन्त संसार का भागी है। अतः मानव जन्म पाकर भी भ्रान्त और व्यर्थ है।

हमको ऐसी कुशिक्षा नहीं चाहिए जिससे हमारा यह लोक और परलोक—दोनों बिगड़ जाय, हम अपने मन और इन्द्रियों पर शासन न कर सकें।

शिक्षा प्राप्त करने का मूल उद्देश्य मनुष्यों को सच्चा स्वाधीन शाश्वत सुख प्राप्त हो। उस सुख का स्थान मोक्ष है। अतः मोक्षप्राप्ति में सहायभूत शिक्षा है, अन्य नहीं।

मानव-जीवन की सफलता हेतु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये ४ पुरुषार्थ मुख्य हैं। इनके बल पर ही मानव जीवन सफल और सुखी माना जाता है। इनमें प्रथम ३ पुरुषार्थ साधन हैं और अन्तिम 'मोक्ष' साध्य है। धर्म, अर्थ, काम में भी धर्म की मुख्यता है। इसी से इसे प्रथम स्थान प्राप्त है। धर्म पुरुषार्थ के साथ ही अर्थ और काम पुरुषार्थ कार्यकारी माने गये हैं। धर्म के अभाव में अर्थ और काम-दोनों निरर्थक हैं। इसीलिए कहा गया है—

परस्परविरोधेन त्रिवर्गो यदि सेव्यते।
अनर्गलमतः सौख्यमपवर्गोऽप्यनुक्रमात्॥

गरज यह है कि धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों पुरुषार्थों के अविरोध में सहायक जो शिक्षा हो वही शिक्षा ग्राह्य है। धर्म की उपेक्षा रखकर केवल येनकेन प्रकारेण अर्थोपार्जन और काम सेवन किया जाय तो वह सुखाभिलाषी जीवों को फलदायी नहीं होता। अन्ततः उससे अशान्ति और दुःख ही प्राप्त होता है। यह अनुभव सिद्ध बात है।

मोक्ष का सच्चा शाश्वत सुख प्राप्त करना यदि ज्ञानी पुरुषों का जीवन-लक्ष्य है तो प्रचुर अर्थ सम्पन्न होना और यथेष्ट काम सेवन करना एवं भोगोपभोगों की सामग्रियों का संचय करते रहना जड़वादी लोगों का सुख है। लेकिन धर्महीनता से प्राप्त सद्यः भौतिक सुख वास्तव में सुख नहीं, सुखाभास है। यदि बाहर से सुखी दीखने वाले उन समस्त साधन-सम्पन्न देशों और धन-कुवेर मनुष्यों का अन्तस्तल टटोला जावे तो उपर्युक्त कथन की सचाई में कोई बाधा नहीं आयेगी। अतः यह मानना पड़ेगा कि जीवन में सुख मिलने के लिए प्रथम पुरुषार्थ धर्म का बड़ा महत्व है। धर्महीन जीवन पशु-तुल्य है। एथावता धर्म का परिज्ञान कराने वाली धर्म-शिक्षा के प्रचार की आज महती आवश्यकता है। धर्म-शिक्षा पूर्वक दी जाने वाली अर्थोपार्जन में उपयुक्त लौकिक शिक्षा ही उपयुक्त होती है। यह स्मरणीय है कि अर्थ और काम जीवन के साधन हैं, लक्ष्य नहीं।

शिक्षा का प्रारम्भ बचपन से होता है। बचपन कच्चे घड़े की तरह होता है। उसे बचपन में कच्चे घड़े की तरह जिस तरह ढाला जाय उसी तरह ढल जाता है। बचपन में ढाले गये अच्छे-बुरे संस्कार मनुष्य के जीवन के अन्त तक बने रहते हैं। अतः बचपन में ही समुचित शिक्षा के द्वारा बच्चों को योग्य दिशा दी जानी चाहिए। किन्तु न जाने क्यों? भ० महावीर का अनुयायी जैन समाज अपने कोमल वय के बच्चों को बचपन से ही पाश्चात्य लौकिक शिक्षा से शिक्षित बनाने में गौरव अनुभव करता है। भले ही वह धर्मसंस्कारहीन पशुतुल्य व्यसनी जीवन व्यतीत करे।

हमें इंग्लिश भाषा पढ़ने से कोई विरोध नहीं है। व्यवहार या अर्थोपार्जन की दृष्टि से इंग्लिश ही नहीं संसार की समस्त भाषाओं का परिज्ञान किया जाय, उतना अच्छा है। लेकिन जिन संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में हमारे धर्मशास्त्र और अन्य भी लौकिक विषयों का परिज्ञान कराया गया है, उन्हें ही हम अपने बच्चों को नहीं पढ़ाते हैं।

वास्तव में स्कूल और कालेजों में जीवन का आधा भाग पूर्ण हो जाने पर भी जो शिक्षा पूर्ण की जाती है उससे बहुत थोड़े ही लोग अर्थसम्पन्न बन पाते हैं, शेष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंख्य शिक्षार्थी तो बेकार और बेरोजगार होकर असन्तुष्ट जीवन ही व्यतीत करते हैं। न तो वे आर्थिक दृष्टि से अपने को सुखी अनुभव करते हैं और पारलौकिक जीवन तो धर्मशिक्षा के अभाव में उनका बिगड़ ही जाता है।

वर्तमान शिक्षा के कारण जो संस्कारहीनता, अनुशासन हीनता, गुरुजनों के प्रति विद्रोह, तोड़फोड़ की प्रवृत्ति आदि अमानवीय बातें उच्चशिक्षा प्राप्त छात्रों में देखने को मिलती हैं उससे तो स्वयं सरकार और बड़े-बड़े शिक्षा विद भी चिंतित हैं। शिक्षा की इस अवांछनीय स्थिति को देख अब यह सोचा जाने लगा है कि शिक्षार्थी की रुचि के अनुसार उसे उसी प्रकार की औद्योगिक शिक्षा दिलाई जावे और साथ में उन्हें नैतिक शिक्षा भी अनिवार्य रूप से दी जावे।

स्वर्गीय महामना लोकमान्य तिलक महोदय ने इस पाश्चात्य शिक्षा की सारहीनता का अनुभव कर उसी समय देश में राष्ट्रीय शालाओं की स्थापना का बिगुल बजा दिया था। उनकी राष्ट्रीय शालाओं में जो विद्यार्थी तैयार हुए उन्होंने भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित होकर देश के भौतिक और आर्थिक विकास में बहुत बड़े उल्लेखनीय कार्य किये हैं और रहे हैं। स्वतन्त्रता के सेनानी स्व० महात्मा गांधी भी नैतिक शिक्षा को जीवन का अनिवार्य अंग मानते थे। तथापि जीवन विकास की दृष्टि से वर्तमान लौकिक शिक्षा की सारहीनता का अनुभव करते हुए भी आज जैन समाज का लाखों रुपया इसी धर्महीन शिक्षा के प्रचार में व्यय हो रहा है।

वस्तुतः शिक्षा वही उपादेय हो सकती है जिससे मनुष्य का मन सुसंस्कृत और विकसित होवे, उसकी आत्मा के ज्ञान-दर्शन गुणों का विकास होवे और उसका संसार बंधन टूटे, कम से कम ढीला तो बने। इसी शिक्षा के साथ अर्थोपार्जन की शिक्षा उपादेय मानी गई है। केवल मात्र अर्थकरी शिक्षा आत्म पतन करने वाली होती है।

नैतिक और धर्म शिक्षा से ही मनुष्य का मन उन्नत बनता है और आत्मा का विकास होता है। इसी धर्म शिक्षा से प्राप्त ज्ञान सच्चा ज्ञान है। इसी शिक्षा से मन और इन्द्रियों पर शासन करने की क्षमता प्राप्त होती है और आत्मा के ज्ञान दर्शन गुण स्वरूप की पहचान होने लगती है। इससे ही तो प्राप्त मानव-जीवन सफल माना गया है। अन्यथा धर्महीन अर्थ और भोगोपभोग सम्पन्न जीवन पशुओं की तरह ही जीता है और मरता है तथा अनन्त संसार का पात्र बन जाता है। क्या मूल्य है? ऐसे सारहीन जीवन का?

इसलिए लौकिक शिक्षा के पहले हमारी आत्मोन्नति करने वाली धर्मशिक्षा के प्रचार-प्रसार की समाज में बड़ी आवश्यकता है। इस शिक्षा के द्वारा ही विद्यार्थी सुयोग्य, सदाचारी: सुशील, कर्मठ व कर्तव्य परायण हो सकते हैं। ऐसे सदाचार सम्पन्न विद्यार्थी ही समाज और देश की उन्नति कर सकते हैं! उनका जीवन भी गौरवान्वित हो सकता है। किसी ने कहा भी है 'यदि किसी देश की उन्नति देखना है तो वहाँ के विद्यार्थियों को टटोलें।

पचास-साठ वर्ष पहले देश में यत्र तत्र रात्रि पाठशालाएँ चलती थीं, जिनमें छात्र धर्म शिक्षा प्राप्तकर सुयोग्य सुसंस्कारी बनते थे। उनमें से कई बड़े-बड़े धर्म ग्रन्थ का अध्ययन कर विशिष्ट विद्वानों द्वारा धर्म और समाज का इतिहास गौरवशाली बन गया। धर्म और समाज का धार्मिक दृष्टि से अच्छा अभ्युदय हुआ। जो छात्र पाठशालाओं में पढ़कर व्यापारिक जीवन में उतरे उन्होंने भी अपने धर्म संस्कार वश अपने उपार्जित धन से समाज को ऊँचा उठाने में और धर्म की उन्नति करने में अच्छा योगदान दिया। किन्तु अर्थ लोभ में धर्म शिक्षा का वह क्षेत्र अब लुप्त होता जा रहा है। रात्रि-पाठशालाएँ बन्द हो गईं। बड़े-बड़े विद्यालयों में ताले लगाने की नौबत आ गई है। जीवन का दृष्टि कोण अब केवल भोग रह गया है। त्याग और संयम की ओर किसी की दृष्टि नहीं जाती है। देश और समाज के अधःपतन का यही विकृत दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण को बदलने की आज तीव्र आवश्यकता है। व्यक्ति और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाज के जीवन विकास में धर्म शिक्षा की बड़ी भारी विशेषता है।

बहुधा लोगों को यह विश्वास हो गया है कि धर्म-शिक्षा से हमको लौकिक (पेट भराई) के कार्यों में कोई सफलता नहीं मिलती है। धर्म शिक्षा से मतलब केवल सिद्धान्त शास्त्रों के ज्ञान से ही नहीं है अपितु उन धर्म-ग्रन्थों से भी है कि जिनमें आयुर्वेद, ज्योतिष, यमतंत्र, संहिता आदि विषय भी भरे हैं। जिनके पढ़ने से भी मनुष्य उस-उस विषय में निष्णात बनकर अपने स्वतन्त्र व्यवसाय से अच्छा धनोपार्जन कर सकता है। जैनसाहित्य के विपुल भण्डार में आज भी ऐसे-ऐसे अलौकिक रत्न भरे हैं जिनकी कीमत हमको ज्ञात नहीं है। आज उसी साहित्य के अनुसंधान से पाश्चात्य विद्वानों ने नाना तरह के आविष्कार कर संसार को आश्चर्य में डाल दिया है। हमारे पूर्वज दिव्यज्ञान धारी महर्षियों ने संसार का कोई भी विषय अछूता नहीं रखा। कमी हम लोगों में उसका उपयोग करने की है; लेकिन हम नकलनवीशों को अपना घर ढूढ़ने की फुरसत ही कहाँ है ?

तथापि जीवन निर्वाह की दृष्टि से लौकिक शिक्षा प्राप्त करने का निषेध नहीं है; किन्तु धर्म-शिक्षा के अभाव में केवल मात्र लौकिक शिक्षा से जीवन संस्कारहीन बन जाता है, जिसका परिणाम दुःखद होता है और दुर्गति का कारण बनता है। लौकिक शिक्षा से सभी धनोपार्जन में सफल नहीं हो जाते। अनुकूल कर्मोदय के अभाव में बहुत से निर्धन बनकर ही जीवन यापन करते हैं। उनका तो यह लोक भी बिगड़ जाता है और परलोक भी। किन्तु धर्म-शिक्षा प्राप्त मनुष्य यदि दुर्भाग्य से लौकिक शिक्षा नहीं प्राप्त कर सका तो कम से कम वह धर्म शिक्षा के फल-स्वरूप सन्तोष पूर्वक कर्तव्यरत रहते हुए संयम के आराधन पूर्वक आत्म कल्याण तो कर सकेगा। परलोक में भी सुखी होगा और परम्परा से मोक्ष-सुख भी प्राप्त कर लेगा। धर्मशिक्षा से उसके मानव जीवन की सार्थकता हो जायेगी। धर्मशिक्षा के सद्भाव में उस विवेकी आत्मा में सुखदाता सम्यग्दर्शन की निर्मल ज्योति का प्रकाश सदैव होता रहेगा। क्या यह बात लौकिक शिक्षा में हैं।

जीवन में धर्मशिक्षा की आवश्यकता पर अब समाज के धुरीणों का भी लक्ष्य जाने लगा है। प्रचुर धर्मसाहित्य भी प्रकाशित हो रहा है। पाठशालाएँ भी खुल रही हैं; परन्तु समाज में उनका उपयोग करने की प्रवृत्ति बहुत कम है। श्रीमंत लोग तो अपने बच्चों को इन धर्म पाठशालाओं में पढ़ने को भेजते ही नहीं या तो अपने बच्चों को धर्मशिक्षा देना नहीं चाहते, उनको पब्लिक स्कूलों में हजारों रुपया खर्च करके पढ़ने को भेजने में गौरव अनुभव करते हैं या पाठशालाओं में साधारण स्थिति के बच्चों के साथ अपने वैभव सम्पन्न बच्चों को पढ़ाने में लज्जा अनुभव करते हैं। समाज में जितने भी बड़े-बड़े धर्म विद्यालय या पाठशालाएँ हैं उनमें श्रीमंत घर के बच्चे पढ़ते हुए नहीं दीखेंगे। जब ये श्रीमन्त बच्चे भविष्य में धर्मज्ञान से शून्य होंगे तो फिर इनके द्वारा धर्म की परम्परा कैसे चलेगी ? — यह विचारणीय है।

वास्तव में आज के श्रीमन्तों को सर सेठ हुकमचंद जी का अनुकरण करने की आवश्यकता है। सर सेठ हुकम चंद ने अपने घर की संतति और बहू-बेटियों को धर्मशिक्षा देने के लिए स्वयं समाज के विशिष्ट विद्वानों को अपने यहाँ सम्मान पूर्वक आश्रय दिया था। वे उनका बड़ा आदर करते थे। स्वाध्याय-शाला भी चलाते थे जिसका फल यह देखने में आता है कि उनके सुपुत्र रा० ब० सेठ राजकुमार सिंह जी आदि भी धर्म की परम्परा में हाथ बंटाते हैं। रा० ब० सेठ टीकमचन्द जी ने भी इसी तरह सर सेठ भागचन्द जी को धर्मशिक्षा दिलाकर उन्हें समाज का गौरव स्वरूप बना दिया। माननीय साहू शान्ति प्रसाद जी को भी उनके पिता द्वारा धर्म-शिक्षा दिलाई गई थी। तब वे भी समाज के शिरोमणि बन गये और इन्होंने धर्म की परम्परा चलाई। आज इसी प्रकार वर्तमान में समाज के धनी पुरुष भी सर सेठ हुकमचन्द जी सा० का अनुकरण कर अपने-अपने यहाँ एक-एक भी अच्छे सिद्धान्त वेत्ता विद्वान को रखकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने यहाँ के बच्चों को धर्मशिक्षा से समन्वित करें तो निश्चित ही समाज में धर्म की परम्परा स्थिर रह सकेगी। उनको देखकर साधारण समाज के बच्चों को भी धर्म-शिक्षा लेने में अभिरुचि पैदा होगी। समाज में धर्म की परम्परा निरन्तर बनी रहेगी। जिस समाज में विद्वानों का समुचित आदर नहीं होता वह समाज कभी भी सम्मानपूर्वक जी नहीं सकता। धर्म की परम्परा भी नहीं बनी रह सकेगी। श्रीमंत लोग अपने एक-एक बच्चे को लौकिक शिक्षा देने वाले शिक्षक को हजार-हजार रुपये देंगे लेकिन समाज के विद्वान् से कम वेतन में भूखे रहकर काम लेना चाहेंगे। ऐसी हीन दृष्टि जिस समाज में विद्वानों के प्रति हो वह समाज धार्मिक दृष्टि से ऊंचा उठ नहीं सकता।

गरज यह है कि आज समाज में धर्म शिक्षा की बड़ी भारी आवश्यकता है। इसके लिए समाज धुरीणों को चाहिए कि वे धर्मशिक्षा प्रचार की दृष्टि से जितना भी कर सकें उतना करें। जिस शिक्षा से रत्नत्रय धर्म का प्रकाश फैले। उसी में समाज के धन का सदुपयोग होना चाहिए।

—सम्पादक 'जैन दर्शन' नांदगांव (महाराष्ट्र)

दैवतेनापि पूज्यन्ते, धार्मिकाः किं पुनः परैः।
अतो धर्मरताः सन्तु शर्मंगे स्पृहयालवः॥

धर्मात्मा लोग इस लोक में देवताओं द्वारा भी पूजे जाते हैं। इसलिए सुख चाहने वाले को धर्म में लीन होना चाहिए।

—क्षत्रचूड़ामणि—५-४१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्या और उसके रूप

● पं० श्री फूलचन्दजी सि० शास्त्री

आप इस विद्यालय के प्रधानाचार्य हैं। जैनधर्म एवं दर्शन के निष्णात विद्वान् हैं। आप पुरानी पीढ़ी के विद्वान् हैं। जैनाचार आपकी रग-रग में समाया हुआ है। नियमित पूजा-भक्ति, शास्त्रप्रवचन, सात्विक आहार-बिहार सादी वेशभूषा और संयमित जीवन आपकी विशेषता है। धार्मिक उत्सवों और कार्यक्रमों में आपकी रुचि है। सभी मांगलिक कार्य आपसे ही सम्पन्न कराये जाते हैं। आयुर्वेद का आपको अच्छा अनुभव है। इस अनुभव का लाभ भी समाज को प्राप्त होता है।

प्रस्तुत लेख में पण्डितजी ने विद्या के द्विविध रूपों पर प्रकाश डालते हुए पारमार्थिकी विद्या के विकास करने की प्रेरणा दी है।

—सम्पादक

विद्या, शिक्षा, कला, ज्ञान, विज्ञान आदि अनेक शब्द एकार्थवाची हैं, फिर भी शब्द भेद से अर्थभेद उनमें है। मानव-समाज में इस विद्या का महत्व अधिक है; क्योंकि नीतिकार विद्याहीन मानव को मानव नहीं, अपितु पशु मानते हैं—'विद्याविहीनाः पशुभि समानाः'। अतः सिद्ध है कि मानव कहलाने का सच्चा अधिकारी विद्याशील व्यक्ति ही है, विद्याविहीन व्यक्ति नहीं। कारण इसका यही है कि सच्ची विद्या व्यक्ति को संस्कारित कर मानवोचित श्रेष्ठ गुणों से मंडित करती है।

वह विद्या दो प्रकार की होती है—(१) लौकिक तथा (२) पारमार्थिक लौकिक विद्या भी सत् और असत् के भेद से दो प्रकार की है। न्यायपूर्वक आजीविकोपार्जन की विद्या सत्-लौकिक विद्या है और अन्याय व पापकार्यों से आजीविकोपार्जन असत्-लौकिक विद्या कही जाती है। वर्तमान में असत् लौकिक विद्या का प्रचार-प्रसार सर्वाधिक है। इसी से जगत के प्राणिमात्र संत्रस्त व दुःखी हैं। हर देश प्राणि संहारक अस्त्र-शस्त्रों के आदान-प्रदान व प्रयोग से आर्थोपार्जन में संलग्न है। भौतिकता की चकाचौंध में भ्रमित मानव आज भौतिक उपलब्धि और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समृद्धि में ही सुख की तलाश कर रहा है। पर उसका यह प्रयास बालू से तेल निकालने जैसा निष्फल और निरर्थक सिद्ध हो रहा है। क्योंकि वास्तविक सुखोपलब्धि तो आत्मोपलब्धि में ही है। कारण कि वास्तविक सुख आत्मजन्य होता है। भौतिक उपलब्धि या समृद्धिजन्य नहीं। यह आत्मोपलब्धि या आत्मजन्य सुख की प्राप्ति पारमार्थिकी विद्या से ही हो सकती है। पारमार्थिकी विद्या ही आध्यात्मिक विद्या कहलाती है।

यद्यपि सत् लौकिक विद्या से भी सुखोपलब्धि होती है; लेकिन वह सुख ऐहिक सुख है जो अस्थिर व दुःखान्त है। यह ऐहिक सुख उस रोगी के इलाज के समान है जिस इलाज से रोग जड़मूल से नष्ट तो नहीं होता, पर कुछ समय के लिए वह शान्त हो जाता है और बाद में पुनः वह जाग्रत हो जाता है। यह इलाज, इलाज नहीं कहला सकता। लौकिक सत् विद्या भी इसी प्रकार लोकोपयोगी होने पर भी सर्वथा ग्राह्य नहीं है। पारमार्थिक विद्या ही सर्वजनहितकारी व जीवों के लिए उपकारी है। अतः वही सर्वथा ग्राह्य व उपादेय है।

इस पारमार्थिकी विद्या की प्राप्ति हेतु पं० दौलतराम जी ने कहा है—

'तातैं जिनवर कथित तत्व अभ्यास करीजे।
संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लख लीजे ॥'

जिनोक्त तत्वों के सतत अभ्यास से आत्मविश्वास सुदृढ़ होता है, जिससे मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि होती है। फलतः प्राणी शाश्वत अक्षय सुख को पा लेता है। अतः पारमार्थिकी-आध्यात्मिक विद्या ही हमारे लिए सर्वथा उपादेय व ग्राह्य है।

इसी पारमार्थिकी विद्या के प्रचार-प्रसार हेतु हमारी प्रबुद्ध समाज ने पूर्वकाल में अनेक विद्यालय व पाठशालाएँ खुलवायीं। उनका संरक्षण, पोषण और संवर्द्धन किया। इनमें पढ़कर अनेकानेक व्यक्तियों ने सत् लौकिक, नैतिक व पारमार्थिक शिक्षा प्राप्त की। फलतः समाज में अलौकिक चेतना जाग्रत हुई और आज आत्मतत्वविवेची आचार्य, साधु, ऐलक, क्षुल्लक आदि त्यागीवर्ग एवं विद्वत्वर्ग समाज में दिखाई दे रहे हैं जो जैनशासन का अखिल विश्व में प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

श्री नाभिनन्दन दिग० जैन सं० विद्यालय बीना का योगदान भी इस दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। यह हर्ष का विषय है कि यहाँ अब मध्यमा तक शिक्षण देने का प्रावधान हो गया है। आशा है, आगे समाज एवं संस्थाधिकारी इसे आचार्योपाधि तक पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे। यह सब सुविधा का ही सुफल है।

यद्यपि सद्विद्या के ग्राहक अत्यल्प हैं, पर इससे हमें हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। क्या रत्नों के ग्राहक कम होने से जौहरी अपनी दूकान बन्द कर देता है? नहीं। क्योंकि वह सोचता है कि साधारण व्यापारी के हजारों ग्राहक वह लाभ नहीं दे पाते जो लाभ हमें एक ग्राहक दे जाता है।

इसी तरह अर्थकरी विद्या के हजारों ग्राहकों से वह लाभ समाज को नहीं मिल सकता, जो आध्यात्मिक विद्या के एक ही ग्राहक से मिल सकता है।

—प्रधानाचार्य
श्री नाभिनन्दन दिग० जैन सं० विद्यालय
बीना (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या

पं० मुन्नालाल जी एम. ए. साहित्यशास्त्री

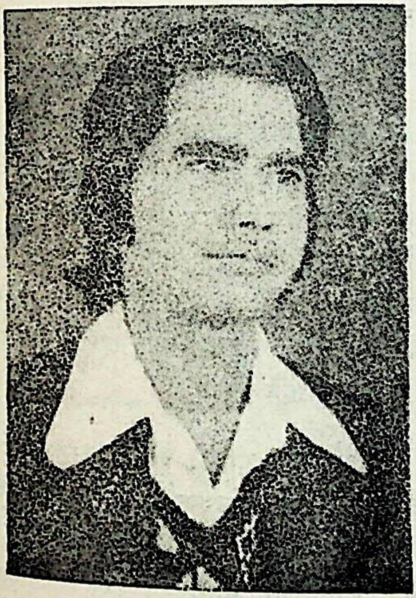

पं० मुन्नालाल जी शास्त्री यहाँ के श्री ना नं. दिग. जैन संस्कृत विद्यालय के एक लगनशील, कर्मठ कुशल संस्कृत अध्यापक हैं। संस्कृत में एम. ए और साहित्य-शास्त्री परीक्षाएँ उत्तीर्ण हैं। अध्ययन और अध्यापन में आपकी गहरी अभिरुचि है। युवकोचित उत्साह और कार्यपटुता भी विद्यमान है।

प्रस्तुत लेख में श्री शास्त्री जी ने विद्या के अद्भुत माहात्म्य को प्रदर्शित किया है। परिश्रम तथा मनोयोग पूर्वक प्राप्त की गई उत्तम विद्या व्यक्ति को अद्भुत सामर्थ्यवान, योग्य, संस्कारित व सम्मानित व्यक्ति बना देती है। आध्यात्मिक विद्या की आराधना से तो व्यक्ति जगत-पूज्य भी बन सकता है। नि:सन्देह, विद्या अनुपम धन है। इसकी महिमा अचिन्त्य है।

—सम्पादक

ऐसा प्रसिद्ध है कि कल्पलता या कल्पवृक्ष से हमारी सभी मनोभिलाषाएँ तथा आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं। अवसर्पिणी के प्रथम, द्वितीय और तृतीय कालों में क्रमश: उत्तम, मध्यम एवं जघन्य भोग भूमियों की स्थिति रही है। इन कालों में लोग कल्पवृक्षों से ही अपनी सभी मनोकामनाएँ और आवश्यकताएँ पूर्ण करते थे। आज के इस पंचम काल में विद्या ही एक ऐसा कल्पवृक्ष है जो मानव की सभी अभीप्सित कामनाओं को पूर्ण कर उसे पूर्ण सुखी समृद्ध व सन्तुष्ट बना सकती है। लौकिक, अलौकिक, पारलौकिक, भौतिक अथवा आध्यात्मिक-किसी भी क्षेत्र में हो, इसके माध्यम से हम सफलता व समृद्धि प्राप्त कर सकते हैं, दुर्लभ से दुर्लभ व कठिन से कठिन वस्तु भी इससे प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए तो इसके बारे में कहा जाता है कि 'कल्पवृक्ष के समान विद्या हमें क्या क्या नहीं प्रदान कराती है? अर्थात् सभी कुछ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह विद्या लौकिक और पारलौकिक के भेद से मूलतः दो प्रकार की है। लौकिक विद्या के अनेक रूप होते हैं। आज की सारी भौतिक उपलब्धियां, वैज्ञानिक आविष्कार आदि सब इसी लौकिक विद्या के अद्भुत चमत्कार हैं। तार, बेतार, जलयान, वायुयान, टेलीविजन, राकेट्स, उपग्रह, कल-कारखाने, नानाविध मशीनों व यन्त्र आदि सभी इसी लौकिक विद्या की देन या उसीका प्रतिफल हैं। आज की दुनियाँ में समृद्धिशाली, सम्पन्न राष्ट्रों की प्रगति के मूल में वहाँ लौकिक विद्या का समुचित प्रचार-प्रसार व विकास का होना है। इसी लौकिक विद्या के विकास से वे राष्ट्र समृद्धिशाली व प्रगतिशील बने हैं।

विद्या का दूसरा रूप है पारलौकिक। इसे आध्यात्मिक विद्या या ज्ञान भी कहा जाता है। विद्या का यही रूप वास्तविक व उपादेय है। शाश्वत अक्षय सुख की उपलब्धि में यही मुख्य सहायक है। इसकी बराबरी लौकिक विद्या नहीं कर सकती है। आत्मकल्याण का इच्छुक मुमुक्षु इसी आध्यात्मिक विद्या की उपासना में सचेष्ट व तत्पर रहता है। आध्यात्मिक विद्या के सतत अभ्यास व आराधन से अनेक दिव्य शक्तियाँ, ऋद्धियाँ तथा सिद्धियाँ उसे अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। सभी भौतिक उपलब्धियाँ उनके सामने तुच्छ व नाचीज होती हैं। फिर भी सच्चा साधक सच्चा मोक्षमार्ग का पथिक उनकी ओर से निरपेक्ष व उदासीन रहता है। क्योंकि उपलब्धियाँ उसकी अभीष्ट नहीं होतीं, प्राप्तव्य नहीं होतीं।

नीतिकारों ने विद्या के माहात्म्य के विषय में बहुत कुछ लिखा है। एक जगह उन्होंने बतलाया है कि 'यह विद्या ही व्यक्ति का सच्चा सौन्दर्य है। व्यक्ति का छिपा हुआ श्रेष्ठ धन विद्या ही है। उत्तमोत्तम भोगों को प्राप्त कराने वाली यह विद्या ही है। यश और सुख को बढ़ाने वाली भी यही है। गुरुओं की भी गुरु यही है। विद्या विदेश में भाई-बन्धुओं की तरह परम सहायक होती है। विद्या वस्तुतः श्रेष्ठ देवी है। राजदरबार में विद्या के कारण ही सम्मान मिलता है, धन के कारण नहीं। अधिक क्या कहा जाय—जो विद्या से रहित हैं, वे निरे पशु हैं।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्।
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणं गुरुः॥
विद्या बन्धुजनों विदेशगमने विद्या परा देवता।
विद्या राजसु पूज्यते नहिं धनं विद्याविहीनः पशुः॥
विद्याहीनाः न शोभन्ते, निर्गन्धः इव किंशुकाः।

अन्यत्र नीतिकार ने विद्या को परम्परया सुख का कारण बतलाते हुए लिखा है कि विद्या व्यक्ति को विनय प्रदान करती है। विनय से व्यक्ति में पात्रता अर्थात् योग्यता आती है। योग्यता से धन की प्राप्ति होती है। धन से धर्म किया जाता है जिससे हमें सुख की प्राप्ति होती है अर्थात् सुख मिलता है।

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमान्प्रोति, धनाद्धर्मः ततः सुखम्॥

माता की तरह विद्या विद्यार्थियों की रक्षा करती है, पिता की तरह उन्हें अच्छे कार्यों में लगाती है, परिश्रम-जन्य मानसिक खेद को दूर कर पत्नी की भांति उन्हें प्रसन्न किया करती है और चारों ओर यश और लक्ष्मी का विस्तार करती है। कहाँ तक इसकी महिमा कहें, कल्पवृक्ष की भांति यह क्या-क्या नहीं कर सकती है। अर्थात् सभी कुछ कर सकती है।

जैसे माता अपने पुत्र को दुग्ध पिलाकर बड़ा करती है वैसे ही विद्या-माता ज्ञानामृत का पान कराके अज्ञानान्धकार को मेट सच्चा मार्गदर्शन देती है। इसीलिए आ. श्री पद्मनन्दि जिनवाणी माता को स्मरण करते हुए लिखते हैं—

विधाय माता प्रथमं त्वदाश्रयं,
श्रयन्ति तन्मोक्षपदं महर्षयः।
प्रदीपमाश्रित्य गृहे तमस्तते,
यदीप्सितं वस्तु लभते हि मानवः॥

हे माता! महान् ऋषिगण पहले तेरा आश्रय लेकर ही मोक्षपद को प्राप्त करते हैं। जैसे—अन्धेरे घर में मनुष्य दीपक का आश्रय लेकर अपनी अभीष्ट वस्तु को पा लेता है। (प० पं० वि० २ लो० ७७६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीतिकारों ने विद्या को सर्वश्रेष्ठ धन घोषित किया है; क्योंकि विद्याधन में दूसरे धन की अपेक्षा कई विशेषताएँ होती हैं। जैसे—रुपया-पैसा, सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात आदि धन-सम्पत्ति को तो चुरा सकते हैं, डाकू लूट सकते हैं, भाई बान्धवों में वह बँट सकता है, आग-पानी में वह नष्ट हो सकता है, कोर्ट-कचहरियों में बरबाद हो सकता है, राजा भी उसे छीन सकता है; लेकिन विद्यारूपी धन इन सब कारणों से कभी भी नष्ट नहीं हो सकता और न किसी के द्वारा छीना-झपटा या बढ़ाया ही जा सकता है। इसी तरह अन्य धन तो खर्च करते रहने पर घटते रहते और समाप्त होते रहते हैं; लेकिन विद्याधन खर्च करते रहने पर भी कभी घटता नहीं; अपितु बढ़ता ही रहता है। खर्च न करने पर अवश्य घट जाता है—

विद्या के भंडार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खर्च त्यों-त्यों बढ़ै, बिन खरचैं घट जात॥

× × ×

न चोरहार्यं न च भ्रातृभाज्यं,
न राजहार्यं न च भारकारि।
व्यये कृते बर्द्धत एव नित्यं,
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्॥

निःसन्देह, विद्या की महिमा अचिन्त्य है। सभी तरह की उन्नति का मूल कारण विद्या ही है। व्यक्ति, जाति, समाज, राष्ट्र या परिवार की उन्नति, विकास और समृद्धि के द्वारा ही की जा सकती है। आज विश्व के जो राष्ट्र श्रेष्ठ व उन्नत बने हैं, वे विद्या के बल से ही बने हैं। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमारा समृद्धिशाली व सुखी हो, हमारी समाज समुन्नत हो, हमारा राष्ट्र प्रगतिशीलता की दौड़ में आगे हो तो हमें अपने यहाँ के प्रत्येक को विद्यावान्, ज्ञानवान् और बुद्धिमान् बनाना होगा। इसके सम्पूर्ण भारत में विद्या का प्रचार-प्रसार होना अनिवार्य है।

वस्तुतः विद्या सर्वसिद्धिदाता देवी है जिसकी उपासना-आराधना से सभी कुछ प्राप्त किया जा सकता है, सभी अभिलाषाएँ पूर्ण की जा सकती हैं। सभी तरह की समृद्धियाँ भी हासिल की जा सकती हैं। क्योंकि यह सब कुछ प्राप्त कराने में सक्षम है। विनय, विवेक, प्रतिष्ठा, यश, सौजन्य, समादर, सम्पत्ति, सभी तरह की समृद्धि आदि सभी कुछ इस विद्या से प्राप्त किया जा सकता है। दुनियाँ में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे इस विद्या के द्वारा प्राप्त न किया जा सकता हो। इसी से इसकी तुलना कल्पवृक्ष से की जाती है।

—संस्कृत-अध्यापक-श्री ना० नं० दि० जैन सं० वि०
बीना (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रमण संस्कृति की प्राचीनता

● इतिहास मनीषी डा० ज्योतिप्रसाद जैन,
एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

इतिहासमनीपी विद्यावारिधि आदि उपाधियों से विभूषित डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन, लखनऊ इतिहास एवं पुरातत्व के एक मर्मज्ञ मनीषी विद्वान् तो हैं ही, जैनधर्म एवं जैनवाड्.मय के भी एक विश्रु त अध्येता-अनुसन्धाता-प्रणेता भी हैं। 'जैनसन्देश'—शोधांक का कुशल सम्पादन आप वर्षों से करते आ रहे हैं। आपकी पैनी दृष्टि से ऐतिहासिक तथ्य छिपे नहीं रह सकते हैं। अनेक ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर कर आपने इतिहास को नया मोड़ दिया है। भारत के गणमान्य इतिहासज्ञ इतिहासकारों में से आप एक हैं। आपकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हैं। सैंकड़ों लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं।

जैनसंस्कृति, जिसका प्राचीन सार्थक नाम 'श्रमण-संस्कृति' है, अवैदिक तथा प्राग्वैदिक है और भारत की प्राचीनतम संस्कृति है। अधिकांश भारतीय तथा पाश्चात्य इतिहासज्ञ मनीषियों ने ऐतिहासिक पुरातत्वीय आधार, शिलालेख, जैन एवं जैनेतर आगम-पुराण-इतिहासादिक ग्रन्थों के आधार पर इसकी प्राचीनता प्रमाणित की है। इतिहासमनीषी विद्वान् डा० ज्योतिप्रसाद जी ने इसी तथ्य को अपने इस लेख में उजागर किया है, जो पठनीय-मननीय है। — सम्पादक

श्रमण-संस्कृति अखिल भारतीय संस्कृति की वह शुद्ध देशज सर्वप्राचीन धारा है, जो मूलतः न केवल अवैदिक थी वरन् प्राग्वैदिक भी है। 'श्रमण'—शब्द संस्कृतभाषा का है और इसके प्राकृत रूप शमन, समण एवं समन होते हैं, और इनकी व्युत्पत्ति 'श्रम' 'शम' धातुओं से की जाती है। जो 'श्रम' (तपादि पुरुषार्थ) द्वारा आत्मसाधना करते हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ-काम आदि समस्त आत्मीक विकारों का 'शमन' करने में संलग्न रहते हैं और पूर्णरूपेण 'समत्व' की साधना करते हैं, वे साधक 'श्रमण' कहलाते हैं। जैन-मुनियों के लिए यह संज्ञा विशेषरूप से व्यवहृत होती आई है। प्राचीन साहित्य में अन्तिम जैन तीर्थंकर भगवान महावीर के लिए भी 'समणे भगवं महावीरे (श्रमण भगवान महावीर) प्रयोग वहुलता के साथ हुआ प्राप्त होता है। इस परंपरा के साधक मुनि यदि 'श्रमण' कहलाए तो उनके अनुयायी गृहस्थ 'श्रमणोपासक' 'श्रमण-श्रावक' या 'श्रावक'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहलाए। वस्तुतः जैनधर्म, उसके साधक श्रमणः साधु-साध्वियाँ, उपासक गृहस्थ श्रावक-श्राविकाएँ तथा इन सबसे संबधित संस्कृति ही उक्त श्रमणधारा का सदैव से प्रतिनिधित्व करते आए हैं। अर्हंत-केवलि-जिन या तीर्थंकर इस संस्कृति के प्रस्तोता रहे हैं और उनके अनुयायी मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविकाएँ उसके पोषक एवं वाहक रहते आए हैं।

यह अत्युक्ति नहीं है कि अहिंसा, आचार, निवृत्ति एवं अध्यात्मप्रधान यह श्रमणधारा ऐतिहासिक दृष्टि से प्रागैतिहासिक सिन्धुघाटी-सभ्यता के उदय के भी बहुत पहले से चली आ रही है। स्वयं जैन तत्वज्ञान एवं अनुश्रुतियों से ही नहीं, वरन् ऋग्वेदादि वैदिक साहित्य, श्रीमद् भागवत आदि ब्राह्मणीय पुराणग्रन्थों, बौद्ध-साहित्य, पुरातत्व आदि विविध साक्ष्यों से इस तथ्य का समर्थन होता है। आधुनिक प्राच्यविद् एवं इतिहासकार भी उसे बहुधा स्वीकार करने लगे हैं।

किसी समय कतिपय यूरोपीय प्राच्यविदों ने जैनधर्म को बौद्धधर्म की ही एक उत्तरवर्ती शाखा घोषित कर दिया था। सतत खोज एवं अध्ययन के फलस्वरूप इस भ्रम का अन्धकार हटता गया और यह तथ्य प्रमाणसिद्ध मान लिया गया कि जैन धर्म की स्वतन्त्रत सत्ता सुदूर अतीत से रहती आयी है। बौद्ध धर्म के संस्थापक शाक्यमुनि गौतम बुद्ध के ज्येष्ठ समकालीन निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र श्रमण भगवान महावीर (५९९-५२७ ईसा पूर्व) जैन धर्म के प्रवर्तक नहीं, वरन् अन्तिम तीर्थंकर थे और उनसे अढ़ाई सौ वर्ष पूर्व हुए २३ वें तीर्थंकर (८७७-७७७ ईसा पूर्व) भी एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। जब महाभारत में वर्णित घटनाओं एवं उसके प्रधान नायक नारायण कृष्ण को भी ऐतिहासिक मान्यता मिल गई तो स्वयं उनके सगे ताऊ जातभाई २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के अस्तित्व में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं रहा। ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के कतिपय मन्त्रों में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख पाया जाता है और लगभग पार्श्वनाथकालीन मध्यएशिया के मिलंदयन सम्राट् नेबुचेदनजर के गिरिनगर में प्राप्त दान-पत्र से भी सिद्ध हुआ कि उस काल में भी तीर्थंकर अरिष्टनेमि की उपासना प्रचलित थी और रैवतकपर्वत (गिरनार) उनका पवित्र तीर्थ माना जाता था क्योंकि रामायण में वर्णित घटनाओं को स्थूलतः तथा उसके नायक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र की सत्ता भी मान्य की जाती है तो प्रायः उसी काल में हुए २० वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ का अस्तित्व स्वयंसिद्ध है। इतना ही नहीं, मुनिसुव्रत के पहले १९ अन्य तीर्थंकर हो चुके थे, जिनमें कई नामों का उल्लेख वेदों में भी प्राप्त होता है। स्वयं प्रथम तीर्थंकर आदिपुरुष ऋषभदेव के कई प्रत्यक्ष एवं परोक्ष उल्लेख ऋग्वेद के मंत्रों में प्राप्त है और भागवत आदि अनेक ब्राह्मणीय पुराणों में उन्हें विष्णु का एक प्रारम्भिक अवतार मान्य किया है।

इन उल्लेखों से ऋषभ का जैनधर्म या आर्हत-मत के साथ सम्बन्ध भी स्पष्ट सूचित होता है। ये ग्रन्थ इस जैन अनुश्रित का भी पूर्णतया समर्थन करते हैं कि भगवान ऋषभदेव के जेष्ठपुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर ही इस महादेश का नाम 'भारतवर्ष' प्रचलित हुआ!

महाभारतकार महर्षि व्यास ने भी ऋषभदेव का स्तवन किया है और बौद्ध-ग्रन्थ धम्मपद तथा बौद्धाचार्य आर्यदेव ने भी उनका उल्लेख किया है। इन तथ्यों के आधार पर डा० एस० राधाकृष्णन् प्रभृति कई प्रौढ़ मनीषियों का अभिमत है कि ऋषभदेव की सत्ता तथा उनसे सम्बन्धित जैन अनुश्रुतियों का अतिरंजनीय नहीं माना जा सकता। कुछ पुरातत्वज्ञों का यह भी मत है कि प्रागैतिहासिक सिन्धुघाटी-सभ्यता के अवशेषों में जो वृषभयुक्त नग्न कायोत्सर्ग योगियों के मुद्रांकन मिले हैं (हड़प्पा के अवशेषों में तो एक नग्न योगिमूर्ति का धड़ भी मिला है) उनसे यह अनुमान किया जाता है कि उक्त काल में एवं उक्त प्रदेशों में बृषभ-लांछन दिगम्बर योगिराज प्रथम तीर्थंकर भ० ऋषभदेव की उपासना प्रचलित थी।

वास्तव में आर्हत-बार्हत, व्रात्य-वैदिक, श्रमण-ब्राह्मण, निर्ग्रन्थ-सग्रन्थ, निवृत्ति-प्रवृत्ति, अनेकान्ती-वेदान्ती आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि रूपों में जैन एवं जैनेतर परम्पराओं का द्वन्द्व भारतीय संस्कृति में सुदूर अतीत से रहता चला आया है। दोनों में क्रिया-प्रतिक्रियाएँ भी हुईं, आदान-प्रदान भी हुए, अनेक अंशों में एक धारा ने दूसरी धारा को प्रभावित भी किया तथापि अपना-अपना स्पष्ट व्यक्तित्व, मौलिकता एवं अस्तित्व भी बनाए रखा।

पूर्वोक्त प्रागैतिहासिक पुरावशेषों के अतिरिक्त अन्य जितने भी पुरातत्व, शिलालेख आदि अवशेष आज उपलब्ध हैं, वे सब प्रायः ऐतिहासिक काल की परिधि के भीतर ही हैं। उनके द्वारा सूचित कालों के बहुत पूर्व से श्रमण-संस्कृति का अस्तित्व निर्विवादरूप से सिद्ध है। अतएव इस संस्कृति तथा उसके आधारभूत जिनधर्म या आर्हतधर्म की प्राचीनता में कोई सन्देह ही नहीं है; बल्कि तथ्य यह है कि श्रमण-संस्कृति भारतवर्ष की सर्वप्राचीन जीवित संस्कृति है।

—ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ (उ० प्र०)

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यः शृणोति न हितानि।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति॥

अन्धा कौन है? जो न करने योग्य बुरे कार्यों में संलग्न रहता है। बहरा कौन है? जो हित की बात नहीं सुनता। गूंगा कौन है? जो समय पर प्रिय वचन बोलना नहीं जानता। —प्रश्नोत्तर रत्नमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन धर्म

● विद्यावारिधि डा.महेन्द्र सागर प्रचंडिया डी. लिट्. साहित्यालंकार

डा. सा श्री वार्ष्णेय कालेज-अलीगढ़ में हिन्दी विभाग में प्रवक्ता तथा शोध निदेशक हैं। स्थानीय तथा भारतीय स्तर की अनेक संस्थाओं के आप संचालक, सहसंचालक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या मानद सदस्य हैं। जैनधर्म एवं जैनवाङ्मय के अधिकारी विद्वान् और सुलेखक हैं। अहिंसावाणी और वायस आफ अहिंसा के आप सम्पादक भी हैं। शोध-खोज-अनुसन्धान में आपकी गहरी रुचि है। विषय विश्लेषणात्मक शैली सुन्दर है। आपकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी लेखनी से प्रसूत जैनधर्म का विश्लेषणात्मक विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

—सम्पादक

किसी व्यक्ति, शक्ति अथवा सत्ता द्वारा प्रवर्तित मान्यता का व्यवस्थित रूप वस्तुतः मत कहलाता है। मत में परकीय सत्ता, शक्ति अथवा व्यक्ति की बंदना अथवा उपासना हुआ करती है। धर्म सदा प्राकृत हुआ करता है। उसका कोई निर्माता नहीं होता। जैन धर्म एक प्राकृतिक धर्म है। यहाँ आत्म विकास के लिए गुणों की वंदना और उपासना का विधान है। नमस्कार—मंत्र में पाँच परमेष्ठियों अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु--की चर्चा है। ये गुणों के पुंजविशेष हैं।

हाँ, लोक में धर्म के प्रसार प्रचारार्थ समय-समय पर तीर्थंकरों का जन्म हुआ करता है। विदेह क्षेत्र में बीस तीर्थंकरों की मान्यता है तो भरत क्षेत्र में चौबीस तीर्थंकरों का विधान है। इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों का ऐतिहासिक अस्तित्व विद्यमान है। ऋषभ देव आदि तीर्थंकर हैं जिनके प्रथम पुत्र भरत हुए हैं जिनके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है। चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर कहलाते हैं। अज्ञानतावश यह कह दिया जाता है कि जैनधर्म के संचालक भ० महावीर थे। पर यह भी सच नहीं है कि भ० ऋषभ देव जैनधर्म के प्रवर्तक थे। यह सच है कि अपने समय के जन समूह और समुदाय हेतु व्यवस्थित जीवनार्थ अनेकमुखी कलात्मक विद्याओं का प्रवर्तन उन्होंने किया। आचार-संहिता स्थिर की और तीर्थ का प्रवर्तन किया।

जैन उपासना और लौकिक प्रचलित अजैन उपासना पद्धति, उद्देश्य में पर्याप्त अन्तर है। यहाँ किसी व्यक्ति विशेष की उपासना नहीं की जाती। आत्मा के गुणों का चिन्तवन करना होता है। उनके गुणों का स्मरण कर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी वीतरागी मुद्रा को देखकर भक्त अपने को पहिचानने का प्रयत्न करता है। यहाँ प्रभु-प्रतिमा के सम्मुख भोग-सामग्री चढ़ाने का कोई भी विधान नहीं है। अर्घ चढ़ाए जाते हैं संकल्प के साथ। आठ कर्मों के क्षय करने हेतु भक्त सच्चे और पक्के भाव से शुभ संकल्प करता है। जैसे जन्म जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपाभीति स्वाहा अर्थात् जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु की झंझट से मुक्त्यर्थ जल का क्षेपण किया जा रहा है। इसीलिए यहाँ अर्घ निर्माल्य होता है अर्थात् उसे पुनः ग्रहण नहीं कया जा सकता। तीर्थंकर अथवा कोई परकीय शक्ति किसी का कुछ लाभ. मनौती पूर्ण करेगी ऐसी धारणा वस्तुतः मिथ्या है और उस पर आस्था रखना वस्तुतः मिथ्यात्व कहलाता है।

जैन धर्म व्यक्ति, वर्ग उदय के साथ-साथ सर्वोदय के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। उसके अनुसार प्रत्येक प्राणी सर्वथा स्वतंत्र है। उसमें प्रभु वनने की पूर्ण क्षमता विद्यमान है। अपने कर्म क्षय करता हुआ जीव विकास को प्राप्त होता है। सिद्धित्व प्राप्त करना वस्तुतः उसके विकास की पूर्णता है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करते हैं। तत्व स्वरूप में आस्था-श्रद्धान रखना दर्शन है। तत्व-वोध और भेद विज्ञान को समझना और मानना ज्ञान कहलाता है और तत्व-बोध को आत्मसात करना, उनमें लय हो जाना वस्तुतः चारित्र है ऐसा होने पर प्राणी का आवागमन के चक्र से छूटना हो जाता है। यही वस्तुतः प्राणी की मुक्तावस्था कहलाती है।

जिन का अर्थ है जीतने वाला अर्थात् कषाय-कुल को जीतने वाला जिन कहलाता है और जिन-जिनेन्द्र का अनुयायी कहलाता है जैन। सामान्यतः जैनचर्या को सुचारुरूपेण संचालित करने अथवा होने के लिए जिन-जिन बातों का आश्यकता होती है और वे सभी वातें जिनके द्वारा तत्व-बोध होता है और यथार्थ जीवन जीने के लिए मंगल मार्ग का प्रवर्तन होता है, उनकी चर्चा जिस वाङ्मय में होती हैं उसे 'आगम' कहा जाता है। विषय की दृष्टि से आगम को चार भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक भाग को अनुयोग कहते हैं। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग नामक ये चार अनुयोग पूरे आगम के रूप को स्वरूप प्रदान करते हैं। प्रथमानुयोग में जिनेन्द्र देवों पर आधृत अनेक कथाएं और पुराण रचे गए हैं। करणानुयोग में कर्म सिद्धान्त और लोक विभाग, चरणानुयोग में जीव का आचार-विचार तथा द्रव्यानुयोग से चेतन-अचेतन द्रव्यों का स्वरूप व तत्वों का निर्देश सम्वन्धी वातों की विशद विवेचना सम्वद्ध है।

इस प्रकार जैन धर्म एक प्राचीन प्राकृत धर्म है। उसका अपना इतिहास है। उसका अपना साहित्य है। उसकी अपनी संस्कृति है। उसकी अपनी सभ्यता है। शुद्ध जीवन-चर्या, समाज अथवा समुदाय में सामान्यतः जानी और पहिचानी जाती है। इस दृष्टि से जैन कभी रात्रि भोजी नहीं होता। वह स्वयं जीता है और दूसरों को जीने देता है। सत्य और अहिंसा का अनुयायी होता है।

संचालक
जैन शोध अकादमी
आगरा रोड, अलीगढ़, उ. प्र.
(२०२००१)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्म की प्रभावना में नारियों का योगदान

श्रीमती सुशीलाबाई जैन, बीना

वहिन सुशीला जी एक धार्मिक रुचि सम्पन्न विदुषी महिला हैं। धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि लेती हैं। महिलासमाज में धार्मिक चेतना बनाये रखती हैं। प्रवचन, तत्वचर्चा, स्वाध्याय, भजन-पूजन आदि में आपकी विशेष रुचि है।

जैनधर्म की प्रभावना में प्राचीनकाल से लेकर आज तक नारियों ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निवाही है। हमारे धर्मग्रन्थों-पुराणों में ऐसी अनेक नारियों के उल्लेख तथा चरित्र वर्णित हैं, जिन्होंने स्वय जैन धर्म का पालन किया तथा दूसरों को भी प्रेरित व प्रभावित कर जैनधर्म को जन-जन में फैलाने में योगदान दिया है। उदाहरणार्थ—महारानी चेलना ने महाराज श्रेणिक को जैनधर्मावलम्वी वनाया था और फिर उन्होंने जो धर्मप्रभावना की, उससे सभी परिचित हैं। इसी भाँति सैकड़ों सती साध्वियाँ, आर्यिकाएँ, श्राविकाएँ, ब्रह्मचारिणियाँ व विदुषी महिलाएँ हैं, जिनका चरित्र वर्णित है। उनमें से कुछ का उल्लेख इस निवन्ध में किया गया है।

—सम्पादक

जैनधर्म एक महान् धर्म है। यह शाश्वत, स्वतन्त्र व अनादि-अनन्त है; क्योंकि यह आत्मधर्म है, मानवधर्म है। जो इसे धारण करता है, वह संसार-सागर से पार हो जाता है। यह प्राणिमात्र का कल्याणकारक व पतितोद्धारक धर्म है। निकृष्ट से निकृष्ट और पतित से पतित व्यक्ति को भी यह ऊँचा उठा देता है। यह प्राणियों को संसार के दु:खों से छुड़ाकर मोक्षसुख में पहुँचा देता है। इसमें छोटे-वड़े, ऊँच-नीच का भेद नहीं किया जाता इसी से यह सभी के द्वारा शीघ्र ग्रहण कर लिया जाता है। इसकी उदारता तथा महानता से प्रभावित होकर लोग इसे शीघ्र अपना लेते हैं। इसी महान् धर्म की प्रभावना में भारतीय नारियों का भी वड़ा योगदान रहा है। उन्होंने इस अहिंसामयी धर्म को जन-जन तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिक निभायी है।

पूर्वकाल में अनेक ऐसी नारियाँ हुई हैं, जिन्होंने इस पतितोद्धारक धर्म को स्वयं धारण किया और संकटों के आने पर भी उन्होंने इसे नहीं छोड़ा। अन्त में इसी धर्म-पालन की दृढ़ता के फलस्वरूप वे घोर संकटों से बचीं। बाद में उन्होंने इस धर्म का डंका बजाकर सभी दिशाओं में इसकी कीर्ति को फैलाया। ऐसी धर्म प्रभावक नारियों में कुछ इस प्रकार हैं—सती सीता, सती मैना सुन्दरी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सती अञ्जना, रानी मनोरमा; सती द्रोपदी, सती मनोवती; रानी चेलना; सती रेवती, सती सुशीला, वृषभसेना, सती चन्दनबाला, राजुल; रयनमंजूषा, सरला; पुष्पलता आदि।

आज (वर्तमान में) भी अनेक ऐसी नारियाँ हो चुकी हैं और अभी हैं जिन्होंने जैनधर्म की वड़ी प्रभावना की है और कर रही हैं। इनमें कुछ इस प्रकार हैं—पूज्य माता ज्ञानमती, सुपार्श्वमती अभयमती एवं स्व० चिरोंजाबाई जी तथा ब्रह्म० चन्दाबाई, ब्र० अनीता, ब्र० सुनीता, ब्र० कल्पना, ब्र० कमलेश, ब्र० सुमन, ब्र० पुष्पा आदि। ये स्वयं जैनधर्म के मार्ग पर चल रही हैं और सतत ही जैनधर्म के प्रचार-प्रसार द्वारा दिग-दिगन्त में जैनधर्म के माहात्म्य पर प्रकाश विकीर्ण कर रही हैं।

सती सीता के प्रभावी उज्ज्वल चरित्र की कथा पुराण-वर्णित है। उन्हें रावण के घर यद्यपि ११ दिन ही रहना पड़ा तो भी उन्होंने अपने उज्ज्वल चरित्र पर आंच नहीं आने दी। लोकापवाद के कारण राम ने जब इन्हें जंगल में छुड़वा दिया तो भी वे धार्मिक आस्था से जरा भी विचलित नहीं हुईं और न किसी तरह का दुःख ही माना; अपितु सारथी को सन्देश में यही कहा कि 'जैसे लोकापवाद के कारण महाराज रामचन्द्र ने मुझे त्याग दिया वैसे वे श्रीजिनधर्म को न छोड़ दें।' यह थी उनकी धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा और उसकी प्रभावना की अपूर्व लगन।

सती सीता के उस प्रसंग को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता जब श्रीराम के कहने पर वे अपने शीलव्रत की अग्नि-परीक्षा देने तो सहर्ष तैयार हो गईं। अपार जन-समूह के बीच जब सती सीता जलते हुए अग्निकुण्ड में कूंदी तो अग्निकुण्ड लहलहाते जल-सरोवर में बदल गया। उनके अखण्ड शीलव्रत के कारण अग्नि भी जलमय हो गई। देवों ने उन्हें कमलासन पर विराजमान कर ऊपर से पुष्पवृष्टि की।

इस विस्मयकारी दृश्य से सारा जन समुदाय बड़ा प्रभावित हुआ। लोगों की जैन धर्म में आस्था तथा श्रद्धा और भी सुदृढ़ हो गई। यह था सती सीता का धर्मप्रभावना का अपूर्व प्रसंग। आज भी इस घटना से लोग प्रभावित होकर जैनधर्म में आस्थावान् होते हैं और इसे पालन करते हैं।

मैना सुन्दरी ने कुष्टीपति को पाकर भी मन में ग्लानि नहीं की तथा तन-मन से सेवा-सुश्रूषा की। श्रीसिद्धचक्रमण्डल विधान का वृहद् आयोजन कर अपूर्व धर्म प्रभावना के साथ भक्तिभाव पूर्वक पूजा-अर्चना की और अपने पति श्रीपाल तथा उनके सभी ७०० कोढ़ी साथियों को निरोग कर दिया था। एक, दो, दस नहीं; बल्कि सात सौ कोढ़ियों को एक साथ निरोग (कुष्टरहित) कर देना एक अद्‌भुत तथा विस्मयकारी कृत्य था। लोग इस अद्‌भुत परिवर्तन को देख दंग रह गये। मैनासुन्दरी के पिता, जिनकी जैनधर्म और जैन गुरुओं में जरा भी आस्था नहीं थी, भी बिल्कुल बदल गये और उन्होंने श्रद्धापूर्वक जैनधर्म का पालन किया और अपने राज्य में इसका खूब प्रचार-प्रसार किया।

मनोवती का चरित्र भी जैनधर्म की प्रभावना की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। इन्होंने दर्शन-प्रतिज्ञा लेकर उसका पूर्ण निर्वाह किया और जिनदर्शन न मिलने पर भोजन-पानी ग्रहण करना भी बन्द कर दिया और मन में किसी प्रकार का खेद नहीं किया। मनोवती की दर्शन-प्रतिज्ञा की चर्चा स्वर्गों तक में फैल गई और देवों ने आकर श्री जिनमन्दिर स्थापित किया और उसकी दर्शन-प्रतिज्ञा पूरी की।

मनोवती घर से निष्कासित पति के साथ कष्टों को झेलती रही, पर उसने अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह बराबर किया। फलस्वरूप उनकी स्थिति बदली और वे पुनः राज्याधिकारी बने। सम्पन्न और सुखी होने पर श्री जिनमन्दिर का निर्माण कराया और धार्मिक जागृति कर जैन धर्म की प्रभावना की।

इसी प्रकार 'अञ्जना सती' ने भी २२ वर्ष पति के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वियोग को सहन किया और घर से निष्कासित कर वन में छोड़ दिये जाने पर भी अपने धर्म को नहीं छोड़ा। जैनधर्म की प्रभावना में सती अञ्जना का चरित्र भी बड़ा प्रसिद्ध है।

महासती चन्दनवाला का अपूर्व चरित्र भी बड़ा प्रेरक व प्रभावक है। अनेक आपदाओं और संकटों को झेलते हुए भी उसने धैर्य को नहीं छोड़ा। वह अपने धर्म पर अडिग रही। भगवान को आहारदान देकर उसने धर्म की जो अपूर्व प्रभावना की, उससे सभी परिचित हैं। देवों ने भी उसके इस कृत्य की सराहना की और उस पर पुष्प वृष्टि की। उसके भी सारे संकटों का अन्त उसी दिन हो गया था। वाद में आर्यिका के व्रत धारण कर उसने भी भ० की अमृत वाणी का प्रचार-प्रसार जन-जन में किया।

जैन पुराणों में 'राजुल' की कथा भी बड़ी हृदया-वर्जक है। नेमिकुमार के विरक्त हो वन में चले जाने पर वह भी उनकी अनुगामिनी वन अध्यात्म-मार्ग की पथिक वन गई। पिता द्वारा दूसरा योग्य वर तलाश दिये जाने की वात कहे जाने पर उसने भारतीय संस्कृति के अनुरूप दो टूक जवाव देते हुए पिता से स्पष्ट कह दिया—'मैंने अपने जीवन में जिसे अपना माना है, उसके सिवाय अन्य किसी को मेरे हृदय में स्थान नहीं है। मैं भी उन्हीं पूज्य आत्मा के पद-चिन्हों पर चलकर आत्म कल्याण करूंगी।'

इस प्रकार राजुल नेमि के चरणों में जाकर आर्यिका के व्रत धारण कर लेती है और तपस्या द्वारा स्त्रीलिंग छेदकर सोलवें स्वर्ग में देव हो जाती है। यह राजुल-चरित्र भी जैन धर्म प्रभावक है।

पुरातन काल में ऐसी अनेक नारियों ने जैन धर्म की महिमा को प्रकट किया और उसकी प्रभावना की। आज भी ऐसी कितनी ही नारियाँ हैं जो इस भोग प्रधान भौतिक-वादी युग में भी जैनधर्म का डंका बजाकर इसकी प्रभावना चतुर्दिक विकीर्ण कर रही हैं। यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि भारतीय धरा पर सर्व कालों में जन-संस्कृति का प्रवाह अक्षुण्ण बना रहा।

वर्तमान में जो नारियाँ शीलवती या पतिव्रता; और धर्मपरायणा होकर जैनधर्म की साधना तथा इसके प्रचार-प्रसार में संलग्न व समर्पित हैं उनमें से कुछेक इस प्रकार हैं—

पूज्य माता सुपार्श्वमती जी अपने सांसारिक जीवन में शादी के ३ माह बाद ही विधवा हो गई थीं। उन्होंने धैर्य और धर्म को नहीं छोड़ा। ज्ञान प्राप्त कर धर्म क्षेत्र में कूद पड़ीं। व्रत संयम धारण कर अब स्वपरकल्याण में निरत हैं, संलग्न हैं। धर्म प्रभावना कर रही हैं।

पूज्य माता ज्ञानमती जी भी व्रत-संयम की आरा-धना पूर्वक आज की नई पीढ़ी को नई चेतना, नई दिशा, नई जागृति और अपूर्व साहस दे रही हैं। पूज्य माता विशुद्धमती जी भी ज्ञान व चरित्र का भण्डार हैं। वे भी धर्म-साधना और धर्म प्रचार में संलग्न हैं। ब्र० चन्दा-वाई का जीवन पूर्णतया ज्ञानयज्ञ के लिए ही समर्पित रहा। कई वाल ब्रह्मचारिणियाँ भी वर्तमान में धर्म-क्षेत्र में कूदकर विषयवासनाओं को तिलाञ्जलि देकर जैन-धर्म की प्रभावना कर रहीं हैं। अनेक ऐसी धार्मिक श्राविकाएँ भी हैं जो गार्हस्थ जीवन में गृहस्थ-धर्म का निरतिचार पालन करते हुए जैनधर्म के प्रचार-प्रसार, संवर्द्धन व प्रभावना में तन, मन और धन से अपना सह-योग प्रदान करती रहती हैं।

जैन धर्म की महिमा अगाध, अचिन्त्य व अपरम्पार है। इसकी प्रभावना में आदिकाल से अब तक नारियों के योगदान की भी भूमिका वड़ी महत्वपूर्ण रही है। हमें जैनधर्म प्रभावक नारियों से प्रेरणा लेनी चाहिए कि हम पतितोद्धारक इस महान् धर्म को अपने जीवन में उतारें यथाशक्ति तन, मन और धन से इसकी प्रभावना करते रहें, जन-जन में इसके माहात्म्य को फैलायें। यह हमारा परम कर्तव्य है। इत्यलम्

अहिंसामयी जैन धर्म की जय !

—जैन मन्दिर के पीछे, बीना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनादर्शों की व्यवहारिकता

● डा० हुकमचन्द भारिल्ल एम. ए., साहित्यरत्न, पी-एच. डी.

अध्यात्म-प्रवक्ता डा० हुकमचन्द जी 'भारिल्ल' जयपुर, जैन-जगत के जाने-माने विद्वान् और लेखक हैं। अध्यात्म में रुचि अधिक होने से अध्यात्म-ग्रन्थों के स्वाध्याय, लेखन एवं प्रचार-प्रसार में संलग्न रहते हैं। आपकी प्रवचन शैली आकर्षक व प्रतिपादन-शैली सरल व बोधगम्य है।

प्रस्तुत लेख में आपने भ० महावीर द्वारा प्रतिपादित आदर्शों का व्यवहारिक-रूप प्रतिपादित किया है। जैनादर्श कल्पना-लोक की मात्र ऊँची उड़ानें नहीं हैं, अपितु ठोस धरातल पर प्रयोगसिद्ध मृत्युञ्जय वैज्ञानिक सिद्धान्त हैं जो व्यावहारिक जीवन को सुखी-शान्त और समृद्ध बनाने में पूर्ण सफल हैं। अतः वे पालनीय व आचरणीय हैं।

—सम्पादक

हवा, पानी और भोजन आदि का जो महत्व हमारे जीवन में है उससे कम धर्म, धार्मिक आस्था और धार्मिक आदर्शों का नहीं, किन्तु हम हवा, पानी और भोजन आदि की जितनी आवश्यकता और उपयोगिता अनुभव करते हैं उतनी धर्म और धार्मिक आदर्शों की नहीं।

समस्त प्राणी सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं तदर्थ निरन्तर प्रयत्न भी करते हैं, किन्तु वास्तविक सुख क्या है और सुखी होने का सच्चा मार्ग क्या है? यह न जानने के कारण उनके प्रयत्न सफल नहीं हो पाते। हवा, पानी और भोजन आदि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं, किन्तु दुःख के कारण भौतिक जगत में नहीं, मानसिक जगत में विद्यमान है। जब तक अन्तर में मोह-राग-द्वेष की ज्वाला जलती रहेगी तब तक पूर्ण सुखी होना सम्भव नहीं है। मोह-राग-द्वेष की ज्वाला शान्त हो इसके लिये धर्म, धार्मिक आस्था और धार्मिक आदर्शों से अनुप्रेरित जीवन का होना अत्यन्त आवश्यक है।

धार्मिक आदर्श भी ऐसे होने चाहिये जिनका सम्बन्ध जीवन की वास्तविकताओं से हो। जो आदर्श व्यावहारिक जीवन में सफलतापूर्वक न उतर सकें, जिनका सफल प्रयोग दैनिक जीवन में संभव न हो, वे आदर्श कल्पना लोक के सुनहरे स्वप्न तो हो सकते हैं किन्तु जीवन में उनकी उपयोगिता संदिग्ध ही रहेगी।

व्यावहारिक जीवन की कसौटी पर जब हम तीर्थंकर भगवान महावीर के आदर्शों को कसते हैं तो वे पूर्णतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खरे उतरते हैं। हम स्पष्ट अनुभव करते हैं कि उनके आदर्श कल्पनालोक की ऊंची उड़ानें नहीं, वे ठोस धरातल पर प्रयोगसिद्ध सिद्धान्त हैं और उनका पालन व्यावहारिक जीवन में मात्र संभव ही नहीं; वे जीवन को सुखी, शान्त और समृद्ध बनाने के लिये पूर्ण सफल एवं सहज साधन हैं।

जीवन को पवित्र, सच्चरित्र एवं सुखी बनाने के लिये तीर्थंकर महावीर ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पांच महान् आदर्श लोक के सामने रखे। व्यावहारिक जीवन में इनके सफल प्रयोग के लिये उन्होंने इन्हें साधु और सामान्यजनों (श्रावकों) को लक्ष्य में रखकर महाव्रत और अणुव्रत के रूप में प्रस्तुत किया। उक्त आदर्शों को पूर्ण रूप से जीवन में उतारने वाले 'साधु' एवं शक्ति व योग्यतानुसार धारण करने वाले 'श्रावक' कहलाते हैं। शक्ति और योग्यता के वैविध्य को लक्ष्य में रखकर श्रावकों की ग्यारह कक्षायें निश्चित की हैं, जिन्हें ग्यारह प्रतिमायें कहा जाता है।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित महान आदर्श अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर यह आक्षेप किया जाता है कि वे इतने सूक्ष्म एवं कठोर हैं कि उनका प्रयोग व्यावहारिक जीवन में सम्भव नहीं है। यद्यपि यह सत्य है कि भगवान महावीर ने हिंसादि पापों के रंचमात्र भी सद्भाव को श्रेयस्कर नहीं माना है तथापि उनको जीवन में उतारने के लिए अनेक स्तरों का प्रतिपादन किया है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उन्हें जीवन में अपनाना संभव ही नहीं, वरन् प्रयोगसिद्ध है। जहां साधु का जीवन पूर्ण अहिंसक एवं अपरिग्रही होता है वहीं श्रावकों के जीवन में योग्यतानुसार सीमित परिग्रह का ग्रहण होता है तथा जहाँ गृहस्थ बिना प्रयोजन चींटी तक का वध नहीं करता है, वहीं देश, समाज, घर-बार, मां-बहिन, धर्म और धर्मायतनों की रक्षा के लिये तलवार उठाने में भी संकोच नहीं करता। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान महावीर के भूमिकानुसार आचरण एवं अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण को समझे बिना ही उक्त आक्षेप किया जाता हैं। जैनाचरण के व्यावहारिक पक्ष को सैद्धान्तिक रूप में चरणानुयोग के शास्त्रों से एवं प्रयोगात्मक रूप में जैनपुराणों के अनुशीलन से भलीभांति जाना जा सकता है।

हिंसादि पापों के त्याग की प्रक्रिया भगवान महावीर के शासन में सप्रयोजन है। जैसे हिंसा चार प्रकार की कही गई है—

(१) संकल्पी हिंसा, (२) उद्योगी हिंसा, (३) आरम्भी हिंसा और (४) विरोधी हिंसा।

केवल निर्दय परिणाम ही हेतु संकल्प—(इरादा) पूर्वक किया गया प्राणघात 'संकल्पीहिंसा' है। व्यापार आदि कार्यों में तथा गृहस्थी के आरम्भादि कार्यों में सावधानी वरतते हुए भी जो हिंसा हो जाती है वह 'उद्योगी' और 'आरम्भी' हिंसा है। अपने तथा अपने परिवार, धर्मायतन, समाज-देशादि पर किये गये आक्रमण से रक्षा के लिए अनिच्छापूर्वक की गई हिंसा 'विरोधी-हिंसा' है। उक्त चार प्रकार की हिंसाओं में एक संकल्पीहिंसा का तो श्रावक सर्वथा त्यागी होता है, किन्तु बाकी तीन प्रकार की हिंसा उसके जीवन में विद्यमान रहती हैं। यद्यपि वह उनसे भी बचने का पूरा-पूरा यत्न करता है, आरम्भ और उद्योग में भी पूरी-पूरी सावधानी रखता, है तथापि उसका आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा से पूर्णरूपेण बच पाना संभव नहीं है। यद्यपि उक्त हिंसा उसके जीवन में विद्यमान रहती है, तथापि वह उसे उपादेय नहीं मानता, विधेय भी नहीं मानता।

भगवान महावीर ने सदा ही अहिंसात्मक आचरण पर जोर दिया है। जैन आचरण छुआछूत न होकर जिसमें हिंसा न हो या कम से कम हिंसा हो, के आधार पर निश्चित किया गया है। पानी छानकर काम में लेना, रात्रि में भोजन नहीं करना, मद्य-मांसादि का सेवन नहीं करना आदि समस्त आचरण अहिंसा को लक्ष्य में रखकर ही अपनाए गये हैं।

भगवान महावीर ने अहिंसा को परमधर्म घोषित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है। सामाजिक जीवन में विषमता रहते अहिंसा नहीं पनप सकती। अतः अहिंसा के सामाजिक प्रयोग के लिये जीवन में समन्वयवृत्ति, सह-अस्तित्व की भावना एवं सहिष्णुता अति आवश्यक है। उन्होंने जन-साधारण में संभावित शारीरिक हिंसा को कम करने के लिये सह-अस्तित्व, सहिष्णुता और समताभाव पर जोर दिया तो वचारिक हिंसा से बचने के लिए अनेकान्त का समन्वयात्मक दृष्टिकोण भी प्रदान किया।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित उक्त पांच महान आदर्श यदि हम शक्ति और योग्यतानुसार अपने जीवन में उतार लें, उन्हें व्यावहारिक रूप में अपना लें, तो निश्चित रूप से विश्वशान्ति की दिशा में अग्रसर होंगे।

संचालक
पं० टोडरमल स्मारक संस्थान,
जयपुर, (राजस्थान)

दो बगीचे

किसी ने एक बार श्रीमद् राजचन्द्र से पूछा—'आपका ये शरीर कृश क्यों हो रहा है ?' तो श्रीमद् राजचन्द्र जी ने उन्हें जवाब दिया—'भाई, हमारे दो बगीचे हैं—एक शरीर का बगीचा और दूसरा आत्मा का बगीचा। हमारा पानी आत्मा के बगीचे में जाता है, शरीर के बगीचे में नहीं। इसी लिए हमारा शरीर का बगीचा सूख रहा है।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन तत्वज्ञान पर एक दृष्टि

डा० शोभनाथ पाठक, एम ए, पी-एच. डी.

डा० पाठक जैनसिद्धान्त के अच्छे ज्ञाता हैं। आपने अपनी पी-एच. डी. उपाधि हेतु शोध कार्य जैनविषय "भगवान महावीर कथा" पर किया हैं, जो पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित भी हो चुका है। आप एक सिद्धहस्त लेखक हैं। विभिन्न विषयों पर अभी तक आपके करीब १५०० लेख भारत व मारीशस में छप चुके हैं। प्रस्तुत लेख में आपने 'जैनतत्वाज्ञान' पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

—सम्पादक

जैनदशन में मोक्ष-हेतु हैं—सम्यक्-दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-मार्गः—तत्त्वार्थसूत्र-१/१) 'दर्शन' का अर्थ है 'श्रद्धा' और 'सम्यक्' का अर्थ है। समीचीन। इस तरह 'सम्यग्दर्शन' से तात्पर्य हुआ 'सच्चा श्रद्धान'। मोक्षमार्ग के साधक में सर्वप्रथम तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में अटूट गहरी सच्ची श्रद्धा होना नितान्त आवश्यक है। अध्यात्ममार्ग के पथिक के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण पाथेय है। सम्यग्ज्ञान दूसरा महत्वपूर्ण पहलु (साधन) है। जिन शास्त्रोक्त सिद्धान्तों व तत्वों का गम्भीर अनुभव व ज्ञान होना श्रद्धा के समान ही आवश्यक व उपादेय है। तीसरा साधन है-सम्यक्-चारित्र अर्थात् सम्यक् आचरण। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की चरितार्थता इसी सम्यक् चरित्र में सम्पन्न होती है। ये तीनों मोक्षोपयोगी हैं। जैनदर्शन में इन्हें 'रत्नत्रय' कहा जाता है।

'जीव' निसर्गतः ज्ञानदर्शनमयी व चैतन्यस्वभावी है; लेकिन उसके शुद्धस्वरूप (स्वभाव) को वासनाजन्य पौद्गलिक कर्म ढके रहते हैं। जिससे उसका शुद्ध स्वरूप प्रकट नहीं हो पाता। जैन-दर्शन में कर्मों को पृथ्वी, जल आदि के समान ही भौतिक माना गया है। ये जीव को सर्वांशतः व्याप्तकर इस दुःखमय संसार में डाले हुए हैं। कर्म-सम्बद्ध जीव ही पुरुषादि के रूप में हमें दीख पड़ते हैं। ये कर्म जीव के साथ अनादिकाल से सम्बद्ध हैं। पर अपने पुरुषार्थ से इन्हें दूर कर कर्ममुक्त और संसारमुक्त हो सकता है। एक बार कर्मों से मुक्त हो जाने पर फिर यह जीव मुक्त हो जाता है। संसार-भ्रमण उसका हमेशा के लिए छूट जाता है। इसी को मोक्ष कहा जाता है और यही इस मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है।

जैनदर्शन में कर्मों के ८ भेदों का सविस्तार प्रतिपादन है। इनके नाम हैं—ज्ञानावरणीय; दर्शनवरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इन कर्मों के उत्तरभेद १४८ हैं। ये कर्मों की १४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतियाँ कहलाती हैं। इनका भी जैनदर्शन में सविस्तार वर्णन है।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—ये सात जिनप्रतिपादित तत्व हैं—'जीवाजीवास्रव-बंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्वम्—(तत्वार्थसूत्र-अ० प्र०)।

१. जीव—चैतन्य स्वभावी ज्ञानदर्शनमयी है। मुक्त और संसारी के भेद से यह दो प्रकार का है। मुक्त जीव संसार से मुक्त हो चुके हैं। शुद्ध चैतन्यस्वभाव की अपेक्षा उनमें परस्पर कोई भेद नहीं होता लेकिन संसारी जीव अनन्त हैं जो नरक, तिर्यंच मनुष्य और देव इन चारों गतियों में विभक्त हैं।

२. अजीव—वह है जो ज्ञानदर्शन व चैतन्य गुणों से रहित है। पौद्गलिक कर्मों का समावेश अजीव में होता है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श—ये चार पुद्गल के गुण हैं। संसार में इन जीव और अजीव (कर्मों) का सम्बन्ध अनादि से है।

३. आस्रव—जैनदर्शन में 'योग' को आस्रव कहा गया है और शरीर, वचन और मन की क्रिया का नाम योग है—('काय-वाङ्-मनः कर्मयोगः,' 'स आस्रवः) तत्वार्थसूत्र-६-१-२। कर्मों के आने द्वार ही आस्रव हैं। यह आस्रव द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है। पौद्गलिक कर्मों का आना द्रव्यास्रव है और कर्मोत्पादक रागादि भाव भावास्रव कहलाते हैं।

४. बन्ध—कर्मों का जीवात्मप्रदेशों के साथ बँध जाना बंध कहलाता है। जब रागी द्वेषी जीव कर्म योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है तब उसे बन्ध कहते हैं। दूध और पानी की तरह ये कर्म जीव के सर्व प्रदेशों में एक मेरु होकर बंध जाते हैं। तत्वार्थसूत्र में बन्ध के ५ कारण बतलाए हैं—'मिथ्याविरति प्रमादकषाययोगाः बन्धहेतवः'। १—मिथ्यात्व=अतत्व में तात्विक दृष्टि रखना। २—अविरति=दोषों से विरत न होकर सदा उनमें लगे रहना। ३—प्रमाद=कर्तव्य व अकर्तव्य कार्यों में अविवेक के कारण सावधान न होना। ४—कषाय=समभाव की मर्यादा को तोड़ना। ५—योग=मन, वचन और काय की प्रवृत्ति। इनसे जीव कर्मबन्ध करता है।

५. संवर—आने वाले कर्मों के मार्ग को सर्वथा बन्द कर देना संवर है—'आस्रवनिरोधः संवरः—तत्वार्थ-सूत्र। यह संवर आस्रव से विपरीत क्रिया वाला है। यह संवर भी द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का होता है। नवीन पुद्गल कर्मों का सर्वथा निरोध 'द्रव्यसंवर' मुमुक्षु के उन मानसिक तथा नैतिक प्रयत्नों के लिए उपयुक्त है जिनके द्वारा वह कर्म के मार्ग का निरोध कर देता है।

६. निर्जरा—तपादि के प्रभाव से बंधे हुए कर्मों को निर्जीर्ण करना निर्जरा है। यह सविपाक और अविपाक के भेद से दो प्रकार की होती है। अपने समय पर आकर कर्मों का फल देकर झड़ जाना सविपाक निर्जरा है और समय के पूर्व कर्मों को उदय में लाकर उनका फल भोगना और उन्हें निर्जीण करना अविपाक निर्जरा है।

७. मोक्ष यह अन्तिम तत्व है। सम्पूर्ण कर्मों के अभाव हो जाने से मोक्ष होता है। मोक्ष का तात्पर्य ही मुक्ति से होता है—'कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः'—तत्वार्थसूत्र अ० १०। कर्ममुक्त होते ही यह जीव अपने नैसर्गिक शुद्धस्वरूप को पा लेता है तथा उसे अनन्त-चतुष्टय की उपलब्धि हो जाती है। अनन्तचतुष्टय हैं—अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य।

मोक्षमार्ग के सोपानों को जैनदर्शन में 'गुणस्थान' कहा जाता है। ये गुणस्थान मोक्षसाधक के अध्यात्मिक विकास की विभिन्न दशाएँ या श्रेणियाँ हैं। ये १४ होते हैं—१. मिथ्यात्व (विवेकहीनता की दशा) २. सासादन (सत्-असत् के भेद का उदय, ३. मिश्र-(सम्यक्-मिथ्यात्व रूप मिले-जुले भाव) ४. अविरत सम्यग्दृष्टि (व्रतरहित पर सच्चा श्रद्धान) ५. देशविरति (एक देश व्रतों का पालन) ६. प्रमत्तविरत (प्रमादसहित दशा) ७. अप्रमत्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरत (प्रमाद रहित व्रतपालन की दशा) ८—अपूर्वकरण (आत्मा के अपूर्व-अपूर्व परिणाम) ९. अनिवृत्तिकरण (परिणामों की समानता) १०. सूक्ष्मसाम्पराय (कषाय का अत्यन्त सूक्ष्म हो जाना) ११. उपशान्तमोह (मोह का उपशमन) १२. क्षीणमोह (मोह की क्षीणता) १३. सयोगकेवली (योग सहित केवल ज्ञान की दशा) १४. अयोग-केवली (योगों का अभाव और केवलज्ञान की दशा) आध्यात्मिक विकास की यह चरम स्थिति है। इस अवस्था को पाते ही जीव मुक्त हो जाता है। यह संसार से मुक्त हो हमेशा-हमेशा के लिए सिद्ध-शिला पर अवस्थित हो जाता है। लोक के अग्रभाग पर सिद्ध-शिला है। यही सिद्धों की निवास-भूमि है। साधकों के लिए यही चरम मुक्तावस्था है।

—आदिम जाति अनुसन्धान संस्था

३५, शिमला हिल्स, भोपाल

(म० प्र०)

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यः शृणोति न हितानि

को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥

अन्धा कौन है ? जो न करने योग्य बुरे कार्यों में संलग्न रहता है। बहरा कौन है ? जो हित की बात नहीं सुनता। गूंगा कौन है ? जो समय पर प्रिय वचन बोलना नहीं जानता।

—प्रश्नोत्तर रत्नमाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन संस्कृति का मूलाधार-त्याग

● पं० श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर

आदरणीय नाहटा जी लब्धप्रतिष्ठ उच्चकोटि के विद्वान् तथा साहित्यकार हैं। आपकी साहित्य-साधना, साहित्य-सर्जना एवं समाज-सेवा अप्रतिम हैं। आप विगत अर्द्धशताब्दी से कुशल लेखन, सम्पादन व समाज सेवा करते आ रहे हैं। पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख प्रायः प्रकाशित होते ही रहते। कोई भी विषय आपकी लेखिनी से अछूता नहीं रहा। विद्यावारिधि, पद्मभूषण आदि उपाधियों से आप विभूषित हैं। आप अपने निजी विशाल ग्रन्थ भण्डार में स्वाध्याय, चिन्तन और लेखन में संलग्न रहते हैं।

जैनसंस्कृति का मूल आधार त्याग ही है। जैनधर्म का भव्यप्रासाद त्याग पर ही आधारित है। इसकी प्रत्येक प्रक्रिया में त्याग के ही बीज निहित हैं। श्रावक तथा श्रमण-दोनों ही धर्मों में त्याग की ही प्रधानता है। त्याग के आधार पर ही छोटे-बड़े पदों की व्यवस्था इस धर्म में पायी जाती है। जो जितना बड़ा त्यागी होता है वह उतना ही अधिक पूज्य होता है। निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि के चरणों में बड़े-बड़े श्रीमान् तथा धीमान् नतमस्तक होते हैं और उनके त्याग के माहात्म्य के गीत गाते हुए अपने को धन्य मानते हैं। श्रावक की ११ प्रतिमाओं और उत्तम क्षमादि १० धर्मों में त्याग की ही महत्ता पायी जाती है। अस्तु, त्याग ही जैनसंस्कृति का मूलाधार है; क्योंकि यथार्थ सुख-शान्ति त्याग से ही प्राप्त होती है—इसी तथ्य को विद्वान् लेखक ने इस निबन्ध में दर्शाया है।

—सम्पादक

आत्मा अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र और शक्ति-सम्पन्न होते हुये भी अनादि काल से चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण कर रहा है। इसका प्रधान कारण है—आत्मविस्मृति। आत्मा अपने शुद्धस्वरूप, गुण या स्वभाव को भूलकर पर-भावों में रचा-पचा रहता है। इसी से कर्मबन्ध होता है और उसके फलस्वरूप संसार में भटकता है। इसलिए आवश्यकता है—आत्माभिमुखता की। परामुखता, पराश्रयता, पराधीनता ही दुःख है। स्वाश्रयता, स्वाधीनता एवं स्वभाव में रमणता ही सुख है।

पौदगलिक पदार्थों या वस्तुओं को अपना मानकर या उसमें सुख की कल्पना करके यह आत्मा निरन्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके संग्रह, संरक्षण की अभिवृद्धि में लगा हुआ है। उनके विनाश या अप्रत्याशित अनुपस्थिति में दुःख व विनाश का अनुभव करता है। अर्थात् पर-पदार्थों में अपनत्वबुद्धि और उनके प्रति ममत्वभाव है वही दुखों का मूल कारण है और ममत्व का प्रतिपक्ष समत्व ही शान्ति और आनन्द का मार्ग है। महापुरुषों ने अपने अन्तर-विवेक और साधना से इस परमकल्याणकारी तत्व को जाना, अनुभव किया तथा आत्मबन्धुरूप समस्त प्राणियों को इस कल्याण मार्ग को बतलाकर इस ओर आकर्षित किया। जिन प्राणियों ने महापुरुषों के उपदेशों से लाभ उठाया उनका कल्याण हुआ। उन्होंने शान्ति और आनन्द को प्राप्तकर अन्त में मोक्ष भी पाया।

तीर्थंकरों ने कहा भी है कि संग्रह, मोह और ममत्व ही दुःख के कारण हैं और पर-पदार्थों का त्याग तथा आत्मरमणता ही सुख का कारण है। पर-पदार्थों के ममत्व के कारण ही जीव अपना स्वरूप भूलकर निरन्तर संग्रह एवं भोग में प्रवृत्तमानव है, उसे त्याग का नाम ही नहीं सुहाता। महापुरुषों के उपदेशों को हितकर मानते हुये भी व्रतों को स्वीकार ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होता; क्योंकि अनादिकाल से उसके ऐसे दृढ़ संकल्प बन गये हैं कि 'भोगों में ही सुख है और त्याग में दुःख है'—यही मिथ्यात्व है जो वस्तु के सच्चे स्वरूप की प्रतीति नहीं करने देता। सम्यग्दर्शन से बहिर्मुखता मिटती है और अन्तर्मुखता प्राप्त होती है। आत्म-स्मृति या जागरण ही सम्यग्दर्शन है।

आध्यात्मिक ग्रन्थों में आत्मा के ३ भेद किये हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। शुद्धस्वरूप का पूर्णरूप से प्रकट हो जाना ही 'परमात्मा'—पद है। सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा है और मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। शरीरादि ओर पौद्‌गलिक पदार्थों को अपना मानना, उनमें सुख मानना, भोगोपभोग में आशक्त रहना ही बहिरात्मा का लक्षण है। सम्यग्दृष्टि यद्यपि कर्मोदय के कारण पर-पदार्थों का त्याग नहीं कर सकता, पर उनमें मूर्च्छा व आशक्तिभाव कम करता है या छोड़ता है। उसके आगे जब वह देशव्रती बनता है तो सीमित त्याग-भावना को पनपाता है। सर्वव्रती बनने पर त्यागमार्ग में पूर्णरूप से अग्रसर हो जाता है।

'पर-पदार्थ अपने हैं ही नहीं'—ऐसी दृढ़प्रतीति जब हो जाती है तब त्याग में कठिनता नहीं लगती, भोगों में आकर्षण नहीं रहता। विरक्ति (वैराग्यभाव) बढ़ता जाता है। आवश्यकता को सीमित करते हुए पर-पदार्थों के त्याग में वह निरन्तर प्रगतिशील रहता है। ऐसी आत्माओं को चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, राजा; इन्द्र आदि बड़े-बड़े अधिकारी सिर झुकाते हैं। भोग पर त्याग की यह महान् विजय, त्याग की महत्ता को भली-भांति प्रकट कर देती है। दीन; रंक, बालक या स्त्री कोई भी हो, जब संसार की विषय-वासना या पर-पदार्थों की मूर्च्छा (आशक्ति) को छोड़कर त्यागी बन जाता है तो वह सबके लिए आदरणीय व पूज्य बन जाता है।

त्यागी का सुख इतना महान् है कि उसके सामने चक्रवर्ती और इन्द्र के सुख भी तुच्छ और निःसार हैं। एक त्यागी मुनि के आत्मिक आनन्द के सामने वे कौंड़ी भी कीमत नहीं रखते। त्याग की मस्ती भोग में नहीं मिल सकती; क्योंकि भोग पराश्रित हैं और त्याग स्वाश्रित है। भोग के साथ रोग और दुःख लगा हुआ है। भोगों के अतिमात्रा में सेवन से रोग हो जाता है, शारीरिक-मानसिक क्षति होती है और अन्त में भोगों के प्रति अरुचि हो जाती है।

भोगों के साधन जुटाने में सैकड़ों प्रकार के परिश्रम करने पड़ते हैं और उनके संरक्षण की भी सदैव चिन्ता बनी रहती है तथा उनके नष्ट हो जाने पर अभाव या वियोगजन्य दुःख का अनुभव तो सभी करते ही हैं। भोगों के साथ उपाधि, आधि और व्याधि तीनों लगे रहते हैं। इसीलिए विषय भोगों को ज्ञानी पुरुषों ने त्यागा जबकि उन्हें सारे साधन और सुविधाएँ प्राप्त थीं। तीर्थंकर राजाओं के यहाँ जन्मते हैं जहाँ उन्हें भोगोपभोग के सभी साधन सुलभ होते हैं, पर वे उन्हें छोड़कर त्यागमार्ग स्वीकार करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय परम्परा में मानव-जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया गया है—ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्याश्रम । १०० वर्ष की आयु मानकर प्रथम २५ वर्ष विद्याध्ययन तथा शारीरिक-मानसिक विकास में लगाने का विधान है । फिर धनोपार्जन, विवाह और कुटुम्ब आदि पालनरूप गृहस्थाश्रम में रहकर अन्त में भोगों से निवृत्त होकर त्यागमय और सेवामय जीवन अपनाया जाता है। वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रम क्रमशः त्याग की बढ़ती हुई भूमिका है। समस्त वस्तुओं का ही नहीं अपितु सभी इच्छाओं, वासनाओं एवं कल्पनाओं का त्याग करके जब मनुष्य आत्मनिष्ठ हो जाता है, तभी साधनामय जीवन बिताते हुए सिद्धि (परमानन्द) प्राप्त कर सकता है।

भारतीय धर्मों में तपस्या को भी बड़ा महत्व दिया गया है। तप का अर्थ है—इच्छाओं का निरोध कर अपनी समस्त शक्ति को साधना में लगा देना । तप दो प्रकार का होता है— वाह्य और आभ्यन्तर। बाह्यतप में चारों प्रकार के आहारों का सीमित या दीर्घकालीन त्याग या आंशिक या पूर्णतया त्याग होता है। वह इसीलिए किया जाता है कि विखरी हुई सारी शक्तियों को साधना में केन्द्रित किया जा सके। खाने-पीने के साधन जुटाने और तत्सम्बन्धी क्रियाओं के करने में जो श्रम, समय तथा शक्ति लग रही है, वह आध्यात्मिक साधना में लगाई जा सके, इससे साधना में गति, स्फूर्ति एवं शक्ति बढ़ेगी।

दान भी त्याग का ही एक रूप है। हमारे पास जो भी धन-सम्पत्ति, शक्ति, ज्ञान तथा जीवनोपयोगी साधन हैं, उनका उपयोग केवल अपने तक ही सीमित न रखकर जिनको जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, उनको उन्हें दे देना ही 'दान' है। हम धनादि से अपने ममत्व का त्याग करते हैं, तभी दूसरों को उन्हें देने रूप दान किया जा सकता है। पर-पदार्थ अपने हैं ही नहीं तो उन पर ममत्व रखना, यह तो अवश्य एक बड़ी भूल है, जिसे जीव आत्म विस्मृति के कारण निरन्तर करता जा रहा है।

जब मनुष्य साधना में लीन हो जाता है तो त्याग करना नहीं पड़ता किन्तु स्वयं हो जाता है। पर-पदार्थों के संग्रह, संरक्षण एवं भोगों में उसकी रुचि ही नहीं रहती। त्याग की यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। जब तक गहरी आसक्ति है तब तक प्रयत्नपूर्वक त्याग करना पड़ता है। बाहर दिखाने को त्याग कर दिया, पर भोगों के प्रति आकर्षण बना रहा, तो वह त्याग सच्चा त्याग नहीं है। जब आत्मा अपने स्वभाव में रमण करने लगती है तब देहादि किसी पर-पदार्थ का उसे ध्यान नहीं रहता। उनका त्याग अपने-आप हो जाता है । मोक्ष क्या है? कर्मबन्धन से छूट जाना मोक्ष है। कर्मबन्धन के कारण हैं—राग-द्वेष विषय और कषाय—इन सब का त्याग ही वास्तव में मोक्ष है। इनके त्याग के बिना मोक्ष मिल ही नहीं सकता।

मनुष्य जब जन्म लेता है, तो शरीर के अतिरिक्त और कोई भी चीज साथ में नहीं लाता, और जब परलोक जाता है तब भी कोई चीज साथ में नहीं ले जाता। बीच की ही अवस्था में वह धन, परिवार आदि पर-पदार्थों को अपना मानकर उन पर ममत्वभाव कर लेता है तो उसे त्यागने में बड़ी कठिनाई मालूम देती है। अन्तिम समय तक वह धन, कुटुम्ब आदि का त्याग करना नहीं चाहता, पर विवश होकर उनको त्यागना तो पड़ता ही है। इससे उसे बहुत दुःख होता है। ज्ञानीपुरुष पर-पदार्थों को अपना मानते ही नहीं हैं। इसलिए उन्हें उनके त्यागने में कोई दुःख नहीं होता। परिग्रह में हम सब लिप्त हैं, पर मुनिगण उनको त्याग देते हैं, तभी आत्मानन्द का वे अनुभव कर पाते हैं।

सद्गुणों के विकास के लिए अवगुणों का त्याग तो बहुत ही जरूरी है। यदि पापों को छोड़ेंगे नहीं तो धर्म में लग ही नहीं सकते। इसलिए दुर्गुणों व दुर्व्यसनों का त्याग करते ही रहना चाहिए। जिन्होंने त्याग किया, वे महापुरुष बने और जिन्होंने राग किया, वे संसार में परिभ्रमण करते रहे। जो भोगों में आसक्त रहे, वे पापबन्धन करते रहे। आरम्भ-समारम्भ द्वारा नित्य नये कर्मों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्ध होता रहता है। सबसे बड़ा त्याग रागभाव को छोड़ना है। राग छूट गया तो द्वेष भी छूट जायेगा और वीतराग बन जायेंगे। मनुष्य का 'अहम्' ही परमात्म-पद की प्राप्ति में सबसे बड़ा बाधक है। अतः परमात्मा यदि बनना है तो रागभाव एवं अहंभाव को त्याग दें।

धर्म के दस प्रकारों में त्यागधर्म भी एक है। वैसे सभी मनुष्यों को कुछ न कुछ किसी न किसी प्रकार का त्याग करना हीं पड़ता है, पर अनिच्छा से या विवश होकर किया हुआ त्याग वास्तव में त्याग नहीं है। प्राप्त भोगों को इच्छापूर्वक छोड़ देना ही सच्चा है। त्यागी महापुरुषों का आदर्श सामने रखते हुए हमें भी अपने जीवन में अधिकाधिक त्याग करते रहना चाहिए।

जैन संस्कृति का मूलाधार त्याग ही है। तीर्थंकरों ने त्याग का अनुपम आदर्श हमारे सामने रखा, वे पूर्णत्यागी बने। महाव्रतों में अपरिग्रह को स्थान जैन तीर्थंकरों ने ही दिया है। जैनमुनियो का जीवन इसीलिए सर्वाधिक त्यागी होता है। इस महान् त्याग से ही उनमें पूज्यता होती है। इसी त्याग का प्राधान्य होने से जैन-धर्म निवृत्ति प्रधान धर्म माना गया है जिसका सारतत्व त्याग ही है। जैनधर्म का प्रत्येक प्रक्रिया में त्याग के ही बीज निहित पाये जाते हैं और त्याग ही इस धर्म की मूल आधार-शिला है। इसीसे त्याग जैनधर्म या जैन संस्कृति का मूलाधार माना गया है। सच्ची सुख-शान्ति और समृद्धि त्याग में ही सन्निहित है। ▭

—नाहटों की गली, बीकानेर
(राजस्थान)

मंगलाचरण

भवबीजाङ्कुरजलदाः रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो वा जिनो वा नमस्तस्मै॥

—आ० हरिभद्र सूरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनाचार : मानव-सुख का मूलाधार

● श्री नेमिचन्द्र जैन, एम.ए., साहित्याचार्य, सि० शास्त्री

श्री नेमिचन्द्र जी जैन कुशल प्रशासकीय क्षमता एवं धार्मिक अभिरुचि सम्पन्न जैनवाङ्मय के मनीषी विद्वान् हैं। सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में आपकी गहरी रुचि है। शाला-प्राचार्य के समस्त दायित्वों को वहन करते हुए भी आप लेखन तथा धार्मिक-सामाजिक कार्यों में अपना योगदान देते रहते हैं। संस्कृत तथा हिन्दी विषयों में एम. ए. हैं तथा साहित्याचार्य एवं साहित्यरत्न की उपाधियों से विभूपित हैं। सहयोग, सहानुभूति, सदाचार और शिष्टाचार के मानवी गुण आप में विद्यमान हैं।

'जैनाचार : मानव-सुख का मूलाधार' आपके गहन धार्मिक अध्ययन का प्रतिफल है। आज के अर्थप्रधान भौतिकवादी युग में मानव-जीवन बड़ा अशान्त तथा आपदाओं-विपदाओं से भरा हुआ है। आधियाँ-व्याधियाँ तथा तृष्णाएँ उसे घेरे हुए हैं। फलतः विश्व-मानव बड़ा सन्तप्त, बेचैन व दुःखी है। 'जैनाचार' एक ऐसी जीवन-पद्धति है जिसको अपनाकर व्यक्ति अपने वर्तमान लौकिक जीवन को शान्त व सुखी बना सकता है और पारलौकिक जीवन को भी सुधार सकता है। —सम्पादक

जैनाचार मानवीय सुख-शान्ति का मूल आधार है। यह जीवन को शान्त सुखी और निरापद बनाये रखता है। सांसारिक दुःखों से मुक्ति का उत्कृष्ट मार्ग यही है। जीवन में सन्तोष, सुख, सम्मान, समृद्धि और प्रतिष्ठा भी आचार-पालन से ही प्राप्त होते हैं। इसीसे महापुरुषों ने आचार को परम धर्म कहा है। 'आचारः परमो धर्मः'=आचार ही परम धर्म है। 'चारित्तं खलु धम्मो'=चारित्र (आचार) हीं निश्चय से धर्म है।' (आ० कुन्दकुन्द) जैनधर्म में आचार को 'चारित्र' कहा गया है। यह आचार या चारित्ररूप धर्म ही स्वपर-विवेक जाग्रत कर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर करता है और सांसारिक दुःखों से छुड़ाकर शाश्वत अक्षय मोक्ष-सुख प्राप्त कराता है।

समस्त जैन तीर्थंकर इसी आचार-धर्म का पालन कर संसार-सागर से पार हुए हैं। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि आचार की शुद्धता के द्वारा ही हम सांसारिक दुःखों से छूट सकते हैं और मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार के मार्ग पर चलने वाला स्वयं संसार के दुःखों से मुक्त होता है और दूसरे दुःखी व्यक्तियों को मुक्त होने हेतु मार्गदर्शन करता है। दुःख, मोह, क्षोभ, शोक आदि से आत्मा का उद्धार कर परमात्मा-पद की प्राप्ति कराना तीर्थंकरों का स्व-पर के लिए महान् पुरुषार्थ है।

प्रत्येक प्राणी की आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। कर्मों से वेष्टित होने के कारण उसकी वह शक्ति व ज्ञानस्वभाव प्रकट नहीं हो रहा है। वैसे यह आत्मा स्वरूप से स्वतन्त्र है : लेकिन अपनी भूल के कारण ही संसाररूपी जंगल में भटक रहा है और नानाविध दुःख यातनाएं भोग रहा है। मोह-शत्रु ने इसे पराधीन और काषायिक वासना ने संसार-बद्ध बनाया है। इस पराधीनता से मुक्त होने की प्रत्येक जीव की अभिलाषा है। इससे मुक्ति का सर्वोत्तम सर्वांगीण साधन यही जैनाचार मार्ग है।

जैनाचार निवृत्तिमूलक है। सांसारिक विषय-भोगों (जो सभी दुःखों और अशान्ति का कारण है) से उदासीन व निरपेक्ष बनाकर आत्मकल्याण की ओर उन्मुख करना ही जैनाचार का मुख्य लक्ष्य है। मानव अनादिकाल से सांसारिक भोग-विलासों में फँसा है। अतः उसे अपने जीवन के चरम लक्ष्य का भान नहीं है। ऐसे लक्ष्यविहीन मानव को क्रमिकरूप से निवृत्तिमूलक आचार-मार्ग पर ले जाने के लिए आचार्यों ने प्रयत्न किया है और इस आचार-मार्ग को दो भागों में विभक्त किया है—

१—गृहस्थाचार (गृहस्थों के लिए आचार मार्ग) और
२ यत्याचार (मुनियों का आचार-मार्ग)।

जैनाचार की इस व्यवस्था का रूप वर्तमान शिक्षण-व्यवस्था से मिलता-जुलता है। सांसारिक भोग-विलासों में भूले हुए मानव को उसी उसी प्रकार क्रमिक विकास का यह मार्ग है जिस प्रकार अपने पुत्र को एम. ए. की उपाधि प्राप्त कराने की भावना वाला जनक सर्वप्रथम इसे प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश दिलाता है और फिर माध्यमिक विद्यालय एवं विश्वविद्यालय भेजता है। बालक भी शनैः शनैः इन कक्षाओं में अपने ज्ञानकोष को विकसित करता हुआ पारंगत निष्णात विद्वान् वन जाता है। उसी प्रकार भोगों में भूला यह मानव भी जैनाचार के इस क्रमिक विकास के पथ पर चलकर अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख एवं शक्ति के भंडार स्वरूप इस आत्मा का क्रमिक विकास करने में समर्थ होता है।

जैनाचार-पथ की प्राथमिक पाठशाला

इस पाठशाला के पाठ्यक्रम में पानी छानकर पीना, रात्रि भोजन का त्याग, सप्तव्यसनों का त्याग और और आठ मूलगुणों का पालन करना निर्धारित हैं।

छना पानी क्यों ?

अनछने पानी की एक बूंद में ३६४५० सूक्ष्म जन्तु होते हैं। विषैले रोगोत्पादक जन्तुओं से युक्त अनछने पानी को पीने से नानाविध भयंकर बीमारियाँ हो जाती हैं जो कभी-कभी प्राणघातक भी बन जाती हैं। अतः इनसे बचने के लिए हमें सदैव छना हुआ पानी ही पीना चाहिए। आज के वैज्ञानिक भी यही कहते हैं और मनुस्मृति में भी ऐसा ही उपदेश है—'वस्त्रपूतं जलं पिबेत'—मनुस्मृति ६।४६।

रात्रि भोजन क्यों नहीं ?

जैनाचार में रात्रिभोजन का निषेध किया गया है; क्योंकि रात्रि में भोजन करने से हम अनेक असाध्य बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। रात्रि में सूर्य प्रकाश का अभाव रहता है, वायु में आक्सीजन की मात्रा भी कम ही रहती है तथा अनेक कीड़े-मकोड़े आकर इधर-उधर घूमने फिरने लगते हैं। ये हमारे भोजन में गिरकर उसे विषाक्त वना देते हैं। वह भोजन हमें हानिकारक होता है। वैसे भी स्वास्थ्य विज्ञान की दृष्टि से भोजन हमें सोने के ३-४ घन्टे पहले करना उचित है। अस्तु आत्मरक्षा की दृष्टि से भोजन दिन में ही करना उचित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तव्यवसनों का त्याग—

(१) जुआ खेलना, (२) मांस खाना (३) मदिरापान करना (४) शिकार खेलना (५) वेश्यागमन करना (६) चोरी करना और (७) परस्त्री सेवन करना—ये ७ व्यसन हैं। व्यसन कहते हैं बुरी आदतों को। जैनाचार के प्राथमिक पथ के पथिक को इन सप्त व्यसनों का त्याग करना अनिवार्य है; क्योंकि ये लोकनिन्दा के कारण हैं और संसार में अत्यन्त घोर दुःख देते हैं।

आठ मूलगुणों का पालन—

आचार मार्ग पर चलने वाले गृहस्थ को निम्नांकित ८ मूलगुणों का प्राथमिक रूप से पालन करना अनिवार्य है। ये नरजन्म को सार्थक और सुखी बनाने वाले हैं। इनके नामों के विषय में आचार्यों के मत भिन्न-भिन्न हैं—

(i) **आ० समन्तभद्र ने** रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में आठ मूलगुणों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं-(१) मद्य (शराब) त्याग (२) मांस त्याग और (३) मधु (शहद) त्याग और (४ से ८) पांच अणुव्रतों का पालन।

मद्य-मांस-मधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुः गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

(ii) **आचार्य जिनसेन ने** (१) स्थूल हिंसा (२) स्थूल झूठ (३) चोरी (४) अब्रह्म (५) परिग्रह (६) जुआ (७) मांस और (८) मदिरा-इन ८ के त्याग करने को ८ मूलगुण कहा है।

(iii) **पं० आशाधरजी ने** सागर धर्मामृत में शराब, मांस, शहद, रात्रि-भोजन, पांच उदम्बरफल-इन सबका त्याग और पंचपरमेष्ठी की भक्ति, जीवदया पालन और जल छानकर पीना—को आठ मूलगुण कहा है।

(iv) **आ० अमृतचन्द्र ने** पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में ३ मकार और ५ उदम्बर फलों का त्याग हिंसाविरत की भावना से करना प्रथम आवश्यक कर्तव्य बतलाया है। वस्तुतः हिंसा से विरक्ति जैनाचार का मूल है। क्योंकि जब तक मानव हिंसा से विरक्त नहीं होगा तब तक वह जैनाचार का पालन नहीं कर सकता है।

जैनाचार की प्राथमिक पाठशाला का पाठ्यक्रम यहाँ पूर्ण होता है।

जैनाचार पथ का माध्यमिक विद्यालय

५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत=कुल १२ व्रतों का पालन और ६ आवश्यक करणीय कर्तव्य माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम है। जैनाचार पथ का पथिक प्राथमिक पाठशाला के पाठ्यक्रम को पूर्ण कर माध्यमिक विद्यालय में जब प्रवेश लेता है तो उसे उपर्युक्त १२ व्रतों और ६ आवश्यक कर्मों का करना अनिवार्य हो जाता है।

अणुव्रत—ये ५ है-१. अहिंसाव्रत १. सत्याणुव्रत ३. अचौर्याणुव्रत ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत और ५. परिग्रह-परिमाणुव्रत।

अहिंसाणुव्रत—

मन, वचन; काय से संकल्पपूर्वक किसी प्राणि की हिंसा न स्वयं करना, न कराना और न करने वालों की प्रशंसा करना—यह प्रथम अहिंसाणुव्रत है। आ समन्तभद्र ने इस अणुव्रत को मात्र त्रस जीवों की हिंसा तक सीमित रखा है। अतः उन्होंने कहा है कि अहिंसाव्रत का पालक प्रतिक्षण अपने भावों को विशुद्ध रखने का प्रयास करता है क्योंकि हिंसारूप परिणामों में व्यक्ति की विशुद्धि सम्भव नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा या हिंसा का सम्बन्ध भावों पर अवलम्बित है। आ० अमृतचन्द्र ने कहा है—'आत्मा में राग इत्यादि भावों का उत्पन्न न होना अहिंसा है और रागादि विकारी भावों का उत्पन्न होना हिंसा है। यही जैन धर्म का सार है—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिः हिंसेति जिनगमस्य संक्षेपः ।।पुरुषा०।।

हिंसा-अहिंसा वाह्य क्रिया नहीं, किन्तु हमारे आन्तरिक भावों पर अवलम्बित है। इसलिए यह सम्भव है कि कोई किसी को मार डाले फिर भी उसे हिंसा का पाप न लगे। दूसरी अवस्था में कोई जीव मरे या न मरे, परन्तु जो मनुष्य प्राणिरक्षा का ठीक-ठीक प्रयत्न नहीं करता, वह हिंसक है और प्राणिरक्षा का उचित प्रयत्न करने पर भी केवल प्राणिवध से कोई हिंसक नहीं कहलाता। क्योंकि ज्ञातभाव पूर्वक जब हिंसा नहीं की जाती है तब वह हिंसा नहीं होती।

२. सत्याणुव्रत—

स्थूल झूठ न स्वयं बोलना और न अन्य से बुलवाना, दूसरों की प्राणरक्षा हेतु सत्य भी न बोलना दूसरा अणुव्रत है। जो अहिंसक होगा, वही हित मित प्रिय वचन बोलकर सत्यता का परिचय देगा। यद्यपि सत्य का विवेक भी अत्यन्त कठिन है तथापि जैनाचार के पथिक श्रावक को सत्याणुव्रत पालन करने के लिए शास्त्रविरुद्ध उपदेश देने का, किसी की गुप्त बात ज्ञातकर प्रकट न करने का, झूठा लेख लिखने का, दूसरों की धरोहर को हड़पने का, किसी के इशारे को ज्ञातकर प्रकाशित करने इस विरुद्ध क्रियाओं का त्याग करना होगा।

३. अचौर्याणुव्रत—

अर्थात् चोरी न करना, चौर्य कर्म से लाई वस्तु को न खरीदना, बिना अनुमति के अन्य की वस्तु न स्वयं ग्रहण करना और न दूसरों को देना। चोर चोरी करके दूसरों के दिल को दुःखाता है, अतः हिंसा होती है, सत्य का हनन होता है। निम्नांकित कार्यों का समावेश भी चोरी में होता है—

रिश्वत खोरी, कालाबाजारी, कुटुम्बियों को छुपाकर कार्य करना, गुप्त बातें छिपाये रखना, इत्यादि। इनके सिवाय दहेज लेना, जुआ खेलना, सट्टा लगाना, लाटरी आदि नैतिक मूल्य विहीन कार्य भी चोरी ही हैं, क्योंकि इनमें स्वार्थ और बेईमानी है। बिना टिकिट सिनेमा देखना, बस और रेलयात्रा करना, दूसरे के किये कार्य को अपना बना लेना, कृतज्ञता स्वीकार न करना, सोने चांदी में मिलावट, शासकीय टेक्स बचाना, बिना परिश्रम दूसरों का पैसा हड़पना आदि सभी कार्य चोरी ही हैं।

अतएव जैनाचार के पथिक श्रावक का यह परम कर्तव्य है कि वह सब प्रकार के चौर्यकर्म का त्याग कर स्व-पर कल्याण हेतु कार्य करे।

४. ब्रह्मचर्याणुव्रत—

ब्रह्मचर्य का अर्थ है 'आत्म-स्वभाव में विचरण करना'। अपने संयम, इन्द्रिय निग्रह, शुद्धाचरण द्वारा मन-वचन-काम से उसमें ही स्थिर रहना ब्रह्मचर्य है। आज का मानव इतनी उच्चस्तरीय भावना-युक्त नहीं हो पाता। अतः आ० समन्तभद्र ने कहा—

जो पाप के भय से न परस्त्री का स्वयं सेवन करता है और न दूसरों को सेवन कराता है, उसे परस्त्री त्यागी या स्वदारसंतोषी या ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालक कहते हैं।

नतु पदाराद् गच्छाति न परान्
गमयति च पापभीते यंद्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ।।

ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालक समस्त अन्यस्त्री मात्र को अवस्थानुसार माता, बहिन, बेटी की दृष्टि से देखता है। स्वस्त्री को भी अति आसक्ति से नहीं भोगता। यह व्रत व्यक्ति को पाप से बचाता है और स्वास्थ्यलाभ भी करता है। अधिक क्या कहें? अणुरूप से पालन किया गया ब्रह्मचर्य संसार पूज्य और देवपूज्य तक बना देता है। कहा भी है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियाणि स्वकीयानि वशे येन कृतानि वै।
जितं लोकत्रयं तेन किञ्चित्तस्य न दुर्लभम् ॥

५. परिग्रहपरिमाणाणुव्रत—

अर्थात् समस्त धन-धान्य, दासी-दास, जमीन-जायदाद आदि की मात्रा निश्चित करके उससे अधिक वस्तु को एकत्रित नहीं करना पांचवा अणुव्रत है। इस व्रत से लोभ पर विजय प्राप्त की जाती है तथा पापों से बचा जा सकता है। अधिक संग्रह करने वाला देश के साथ गद्दारी करता है, विषमता बढ़ाता है और पूंजीवाद को प्रश्रय देता है।

दूसरी ओर अपरिग्रह वृत्ति सौहार्द, सहानुभूति, परदुःख-कातरता, सहिष्णुता, उदारता, सन्तोष जैसे मानवीय उदात्त गुणों को उत्पन्न करती है। अशान्त वातावरण को शान्त करती है। अतः सुख-शान्ति के इच्छुक प्राणियों को अपने जीवन में परिग्रह का परिमाण कर सन्तोष पूर्वक यापन करना चाहिए।

गुणव्रत—

उल्लिखित अणुव्रतों का उपकार करने वाले व्रतों को गुणव्रत कहा जाता है। ये ३ हैं—१. दिग्व्रत २. देशव्रत और ३. अनर्थदण्ड व्रत। १. लोभवृत्ति को कम करने के लिए आजन्म दसों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा बांध लेना दिग्व्रत है। २. घंटा पहर दिन, पक्ष, महीना आदि निश्चित समय तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा को और भी घटा लेना देशव्रत है। ३. बिना प्रयोजन ही जिन कार्यों में पाप का आरम्भ हो, उनका त्याग करना अनर्थदण्ड व्रत है। जैसे—बिना प्रयोजन पापकर्मों को करने का उपदेश न देना। हिंसा के औजारों को नहीं देना। दूसरों का बुरा न चाहना। परिणामों को बिगाड़ने वाली किस्से, कहानियाँ न सुनना और न पढ़ना तथा बिना प्रयोजन जल न गिराना, जमीन न खोदना, फल-फूल, पत्ते न तोड़ना।

शिक्षाव्रत—

मुनिव्रतों को पालने की इनसे शिक्षा मिलती है। इसीलिए ये शिक्षा व्रत कहलाते हैं। इनकी संख्या ४ है।

१. सामायिक (समताभावों के साथ नियत समय तक आत्म ध्यान करना)
२. प्रोषधोपवास (प्रत्येक अष्टमी अथवा चतुर्दशी को एकासन या उपवास)
३. भोगोपभोग परिणाम (भोगोपभोग की वस्तुओं की मर्यादाकर शेष का त्याग)
४ अतिथि संविभाग (निष्कामभाव, भक्ति तथा आदर के साथ मुनि, त्यागी और अन्य धर्मात्मा पुरुषों ४ प्रकार का दान देना)

षडावश्यक कर्म—

जैनाचार मार्ग के पथिक श्रावक को प्रतिदिन करने का आवश्यक कार्य 'षडावश्यक कर्म'। इनके करने से उसकी सभी आवश्यक समस्याएं स्वयमेव पूर्ण हो जाती है। ये ६ होते हैं—

'देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥

(१) देवपूजा (२) गुरु की उपासना (३) शास्त्र-स्वाध्याय (४) संयम (५) तप और (६) दान। प्रतिदिन इनके करने से पुण्य का संचय होता है और यह पुण्य सुख-शान्ति दाता और समृद्धिकर्ता है।

यह है जैनाचार के अन्तर्गत गृहस्थ का आचर धर्म। इसका पालनकर्ता बड़ा भद्र-परिणामी, सदाचारी, शुद्ध सात्विक आहारी. निर्मलस्वभावी, दयालु, स्वच्छ व सन्तोषी प्राणी होता है। ऐसे सद्गृहस्थों का जीवन बड़ा सुखद व शान्त होता है तथा वे दूसरों के जीवन को भी इस भांति सुखी व शान्त बनाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनाचार पथ का विश्वविद्यालय

निवृत्तिमार्ग के माध्यमिक विद्यालय के बाद जैनाचार में मुनियों के आचार (यत्याचार) रूपी विश्वविद्यालय की विशाल परिधि है, जहाँ पर पहुँच कर मानव पूर्ण स्नातक अर्थात् समस्त परिग्रह रहित, अनन्त दर्शन-अनन्त ज्ञान-अनन्त सुख-अनन्तवीर्य का धनी होता हुआ लोकपूज्य देव बन जाता है, जिसे जैन परिभाषा में 'अर्हन्त' कहा जाता है।

संसार का हर प्राणी दुःखी है—

संसार में कोई भी प्राणी सुखी नहीं है। जिनके पास जीवन-यापन हेतु अनिवार्य आवश्यक वस्तुएँ नहीं वे तो दुःखी हैं ही, पर जिनके पास यह सब कुछ है वे भी सुखी नहीं हैं। कोई सन्तान न होने से दुःखी हैं, कोई अपनी दुराचारी नालायक सन्तान से दुःखी है, कोई दूसरों को समृद्धिशाली देख ईर्ष्यावश दुःखी है, कोई अपना कारोबार न संभाल पाने से दुःखी है, कोई भयंकर बीमारियों से परेशान हैं। जिधर भी आप देखेंगे आपको कोई पूर्ण सुखी नजर नहीं आयेगा। आप को हर एक के चेहरे पर दुःख और विषाद की रेखाएँ नजर आयेंगी। आधुनिक सभी सुविधाओं से सम्पन्न व समृद्धिशाली राष्ट्रों के कहे जाने वाले नागरिक भी मानसिक सन्ताप से अशान्त व बेचैन हैं, उनकी नींद हराम है और वे शान्ति चाहते हैं।

दुःख का कारण क्या है ?

भोग प्रधान इस युग में लोगों की बढ़ी हुई असीमित उद्दाम भोगलालसाएँ, असीमित आवश्यकताएँ, असंयमित जीवन ही लोगों के दुःखों का कारण हैं। अपनी असीमित इच्छाओं और उद्दाम भोग लिप्साओं की पूर्ति में हर व्यक्ति आर्थिक एवं भौतिक समृद्धि में लगा हुआ है क्योंकि वह उन्हीं की प्राप्ति में सुख मान रहा, पर बालू से तेल निकालने की भांति उसके सारे प्रयत्न निरर्थक व निष्फल सिद्ध हो रहे हैं। क्योंकि सुख तो आत्मिक है, अतः अपने भीतर ही है। वह इन बाह्य पदार्थों में मिल ही कैसे सकता है। कस्तूरी के मृग की भांति उसका बाहर अन्वेषण करना वृथा है।

सुख कैसे प्राप्त हो ?

सुख-प्राप्ति के लिए हमें लौटना होगा स्वयं अपनी ओर, अपनी आत्मा की ओर। झांकना होगा अपने ही अन्तरंग में। तलाशना होगा उसे अपने भीतर ही। तभी वह प्राप्त होगा, अन्यथा नहीं।

वह कैसे ?

उस सुख को पाने के लिए हमें जैनाचार के मार्ग का आश्रय लेना होगा, जो वस्तुतः सुख का मूल आधार है, । जैनाचार निवृत्ति का मार्ग है। यह हमें अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को सीमित करने की शिक्षा देता है। संयमित जीवन-यापन हेतु प्रेरित करता है। शुद्ध, सात्विक तथा सन्तुलित आहार की विधि बतलाता है। स्वहित के साथ परहित करने की प्रेरणा देता है। पारस्परिक प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, सहृदयता, सौजन्यता, जैसे उदात्त मानवीय गुणों को विकसित करता है। विश्वकल्याण के लिए विश्व बन्धुत्व का व्यापक एवं विशाल दृष्टिकोण प्रदान करता है। सभी भेद-भाव व विषमताओं को दूरकर समता स्थापित करता है।

अतः जो व्यक्ति वास्तविक सुख-शान्ति चाहता है, निरापद जीवन जीना चाहता है, उसे जैनाचार मार्ग का आश्रय लेना चाहिए और उस पथ पर चलकर अपने जीवन को पूर्ण संयमित व सुखी बनाना चाहिए। यह जैनाचार का पथ ही ऐसा है जिस पर चलकर पशु से मनुष्य, मनुष्य से देव देव और देव से परमपूज्य परमात्मा भी बना जा सकता है। यह परमात्मा-पद वह अविनाशी, जन्म-मरण रहित सिद्ध-पद है जिसेप्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य का चरम लक्ष्य होता है।

प्राचार्य
श्री पा० दि० जैन उ० मा० विद्यालय
खुरई, जि० सागर. (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनाचार-विचार व्रत-नियम-उपवास आदि का
स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से महत्त्व

● पं. उदयचन्द जी शास्त्री, कुरवाई (म. प्र.)

वैद्य पं० उदयचन्द जी शास्त्री, इसी विद्यालय के एक सुयोग्य स्नातक हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति को अपने जीवनयापन का आधार बनाकर जनसेवा में लगे हुए हैं। ये बड़े उदार, सहिष्णु, सदाचारी व सात्विकवृत्ति के हैं।

जैनधर्म में एक सद्गृहस्थ के लिए जो जीवन प्रक्रिया निश्चित की गई है और जिन व्रत-नियम, उपवास आदि का विधान है वे सब स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से भी बड़े उपयोगी व महत्व-पूर्ण हैं। स्वास्थ्यविज्ञान शारीरिक तथा मानसिक स्वस्थता हेतु शुद्ध सात्विक आहार-विहार, संयम तथा सद्विचारों पर बल देता है तो जैनधर्म भी शरीर को धर्म-साधन का मुख्य आधार (शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्) मानकर इसकी निरोगता और शुद्धता को आवश्यक मानता है। व्रत-उपवास, संयम-नियम सदाचार और सद्विचार-ये सब स्वस्थता हेतु अनिवार्य हैं। इसी से जैनाचार-प्रक्रिया में इन सबका समावेश है। प्रस्तुत लेख में श्री शास्त्री जी ने इसी विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, जो पठनीय हैं।

—सम्पादक

जैनाचार-पद्धति और जैदादर्श पूर्णतः वैज्ञानिक व विज्ञानसम्मत हैं। जैनदृष्टि से एक सद्गृहस्थ की जो दिनचर्या और आचार-प्रणाली निर्धारित की गई है वह स्वास्थ्यविज्ञान की दृष्टि से उपयुक्त व सफलसिद्ध है। जैनाचार और व्रत-नियमों का पालक प्रकान्तर से स्वास्थ्य नियमों का ही पालन करता है। स्वास्थ्य-विज्ञान एव जैनधर्म-दोनों ही पूर्ण स्वस्थता के लिए शुद्ध सात्विक आहार-विहार तथा नियमित दिनचर्या पर जोर देते हैं; क्योंकि लौकिक एवं धार्मिक-दोनों ही दृष्टियों से शरीर की मुख्यता है और शरीर का स्वस्थ होना इसीलिए अनिवार्य है (शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्) स्वस्थ शरीर के विना लौकिक एवं धार्मिक कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती।

स्वास्थ्य-विज्ञान का सीधा सम्बन्ध शरीर से है। इसमें शरीर के निरोग रहने पर अधिक बल दिया गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। स्वस्थ मनुष्य वही कहा जा सकता है जो अन्तः एवं बाह्य दोनों ही दृष्टियों से स्वस्थ हो। केवल बाह्य शारीरिक शुद्धि ही स्वास्थ्य के लिए आवश्यक नहीं है; अपितु जब तक हमारा शरीर और मन पूर्णरूपेण स्वस्थ नहीं होंगे तब तक हम पूर्णतः स्वस्थ नहीं माने जा सकते।

जैनधर्म में शुद्ध सात्विक एवं सन्तुलित खान-पान उत्तम विचार तथा व्रत-उपवास-नियमादि रूप संयम-पालन पर विशेष बल दिया गया है; क्यकि हमारे आचार-विचार व खान-पान तथा जीवन यदि संयमित नहीं होंगे तो हम स्वग्थ नहीं रह सकेंगे। कहा भी है—

जैसा खाओ अन्न, वैसा होगा मन।
जैसा पीओ पानी, वैसी होगी वाणी॥

यदि ऐसा है तो शुद्ध खान-पान और संयमित जीवन, जिस पर जैनधर्म में विशेष जोर दिया गया है, स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक हैं।

यद्यपि अन्न (आहार) ही हमें जीवन शक्ति प्रदान करता है, लेकिन वही अन्न यदि हम अयुक्तिपूर्वक अनुचित ढंग से सेवन करते हैं तो वह हमारे प्राणों का ही घातक बन जाता है। इस विषय में भी कहा गया है—

प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या हिनस्त्यसून्। अर्थात् अन्न प्राणियों का प्राण है परन्तु अयुक्तिपूर्वक सेवन करने पर वही अन्न प्राणों का घातक बन जाता है। दुष्पक्व या अपक्व भोजन अथवा अतिभोजन हमें नाना बीमारियों का शिकार बनाकर हमारी मृत्यु का भी कारण बन सकता है। अतः शुद्ध सात्विक सन्तुलित भोजन जैनधर्म एवं स्वास्थ्यविज्ञान-दोनों ही दृष्टियों से आवश्यक है।

अच्छे-बुरे विचार भी हमारे स्वास्थ्य को बड़ा प्रभावित करते हैं। अच्छे विचारों का बुरा प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है। अच्छे विचार हमारे मस्तिष्क का विकास करते हैं और हमें सदैव प्रसन्न रखते हैं। जिससे हमारा स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। सद्विचार ही हमें विवेकशील बनाते हैं। जैनधर्म सदा सद्विचारों का ही पक्षपाती रहा है।

निरोग और दीर्घजीवी होने के लिए स्वास्थ्य विज्ञान नियमित तथा संयमित जीवन; सन्तुलित सात्त्विक आहार तथा एकासन एवं उपवास आदि पर विशेष बल देता है। जैनधर्म भी आन्तरिक आत्मशुद्धि के लिए, आत्मिक विकारों की शान्ति के लिए व्रत, उपवास एकासन तथा संयमित जीवन-यापन को अनिवार्य कहता है। राष्ट्रपिता म० गांधी ने भी नियम उपवास आदि का महत्व समझा और स्वयं अपने जीवन में उन्होंने इनका पालन किया। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को सप्ताह में एक दिन उपवास अवश्य करना चाहिए तथा नियमों का पालन भी करना चाहिए। इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है और मानव दीर्घजीवी होता है। जैनधर्मानुसार संयम तथा व्रतादिक चित्तस्थैर्य आत्मशुद्धि तथा आत्मस्थिरता में परम सहायक हैं। इनके पालन तथा आचरण से व्यक्ति आत्मा में स्थिर होकर सुखानुभव करता है जो स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक होता है।

आयुर्वेदानुसार अहितकर आहार-विहार करने से आमाशय में स्थित वात; पित्त और कफ तीनों दोष कुपित होकर कोष्ठ की अग्नि को बाहर कर रस को दूषित कर देते हैं और नाना ज्वर उत्पन्न कर देते हैं। इसलिए हमें अहितकर आहार का त्यागना आवश्यक है—

मिथ्याहार-विहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं; ज्वरदाः स्युः रसानुगाः॥

हम उन वस्तुओं का सेवन करना छोड़ देते हैं, जिन्हें चिकित्सक हमारे स्वास्थ्य के प्रतिकूल बतलाते हैं। तब हम अपने जीवन की आशा के लिए पराधीन होकर इन वस्तुओं का सेवन करना छोड़ते हैं। जब ऐसा है तो फिर हमें स्वयं ही अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर प्रतिकूल पदार्थों का सेवन करना त्याग देना चाहिए। इससे हम व्यर्थ की चिन्ता से मुक्त होकर सुख शान्ति का अनुभव करेंगे और स्वस्थ भी रहेंगे। जैनधर्म किसी भी वस्तु का परित्याग स्वेच्छा से ही करने के लिए कहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्म स्वस्थ व सुखी जीवन-यापन के लिए अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का त्याग और अहिंसादि पांच व्रतों के पालन की बात सभी से कहता है। रात्रिभोजन के त्याग की बात भी स्वास्थ्य को दृष्टि में रखकर कही गई है। अभक्ष्य-भक्षण और मांस-मदिरा आदि के सेवन के दुष्परिणाम आज सभी प्रत्यक्ष देखते और अनुभव करते हैं। स्वास्थ्य में निरन्तर गिरावट; बुद्धि का कुंठित होना, धन की बरबादी, नानाविध असाध्य बीमारियाँ इन सबका ही दुष्परिणाम हैं। जो इनका सेवन नहीं करते वे स्वस्थ व सुखी रहते हैं। पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी और 'बापू' जी इसके उदाहरण हैं।

अतः जो स्वयं सुखी और शान्त रहना चाहता है और दूसरों को भी सुखी-शान्त रखना चाहता है तो वह जैन आचार-विचार, व्रत-नियम-उपवास का पालन स्वयं करे और दूसरों को भी इन्हें पालने के लिए प्रेरित करे। क्योंकि स्वास्थ्यविज्ञान की दृष्टि से जैनाचार-विचार तथा व्रतादिक प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ, सुखी व शान्त बनाने में पूर्ण सक्षम हैं। ▭

—निष्कलंक औषधालय, कुरवाई
जिला-विदिशा (म० प्र०)

भवबीजांकुरजलदाः रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो वा जिनो वा नमस्तस्मै॥

—अ० हरिभद्रसूरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ललित व्यंग

हम चारित्र बिछाकर नैतिकता ओढ़ रहे हैं

● सुरेश 'सरल'

श्री 'सरल' जी जैन जगत के एक जाने - माने सफल व्यंगकार और उच्चकोटि के कवि हैं। जैन-पत्रों में प्रकाशित आपकी रचनाएँ पाठकों के हृदयतल पर अमिट छाप छोड़ती हैं। एक कुशल इन्जीनियर होते हुए भी आप एक अच्छे साहित्यकार व उच्चकोटि के कवि हैं। विज्ञान और कला का अद्‌भुत समन्वय आपमें विद्यमान है।

वर्तमान परिवेश में सर्वत्र चरित्र एवं नैतिकता का ह्रास देख किस शिष्ट सदाचारी मानव का हृदय क्षुब्ध नहीं होता होगा ? श्री 'सरल' जी भी इसी व्यथा से व्यथित हैं। प्रस्तुत ललित व्यंग में इसी कटुसत्य को अपनी विशिष्ट शैली में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। लेख पठनीय व चिन्तनीय है।

— सम्पादक

'चारित्र और नैतिकता' की दुहाई देने वाले ही अनैतिक और चारित्रहीन पाये जावें तो आप क्या कहेंगे? इधर कुछ वर्षों से यही देखने में आ रहा। जो लेखक 'चरित्र' पर हजार पृष्ठ का ग्रन्थ लिखता है विमोचन के दिन उसका चरित्र विमोचनकर्ता और समीक्षकों के आगे-पीछे डोलता पाया जाता है। जो प्रकाशक 'नैतिकता' पर चार किताबें छाप लेता है उसे बिक्री के लिए 'अनैतिक' होते देखा गया है। जो 'चारित्र और नैतिकता' अब पोथियों तक सीमित है, बाहर जो हो रहा है, उसमें इन दोनों को छोड़कर शेष बहुत कुछ है। यह बहुत कुछ देहरी के अनुसार पर्याय धारण करता है, यानी विद्वान की देहरी पर जो 'यश और मान' कहलाता है, धनश्री की चौखट पर वह दबदबा और गुलामी के स्वरूप में लक्षित होता है, मंत्री की सभा में 'जी हाँ' है तो आफीसर के कक्ष में 'प्रमोशन' है, फिल्म वालों के फ्लेट में 'ख्याति' के नाम से तो साधु संतों की जमात में 'तत्व चर्चा' के नाम से जाना जाता है।

अभी-अभी यह नैतिकता सघन हो गई, दो सौ बोरी सिमेन्ट चुराकर पच्चीस बोरी मंदिर निर्माण के कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में प्रदान करता; या अस्पताल की सार्वजनिक मशीन से प्रायवेट मरीजों को सुविधा देना; या तस्करी से निर्दाग बचा लिए गए स्वर्ण में से थोड़े से सोने का छत्र बनाकर इष्ट को चढ़ाना और एक साथ सीमेन्ट या मशीन या छत्र के नाम पर यश, मान, दबदबा, गुलामी, जी हां प्रमोशन, ख्याति और तत्व चर्चा का संयोग जुटा लेना आधुनिक चारित्र और नैतिकता-बोध के सूत्र हैं। यह सब होते हुऐ वास्तविक चारित्र और नैतिकता नहीं है जीव-नांगन में तो इसमें कसूर किसका है ? कभी सोचा ही नहीं हमने कि किसका कसूर है ? अब यदि आपका इनका या उनका कसूर बतलाने बैठेंगे तो जमाने की पेठ में बैठे नही रह पाएंगे । इसलिए हमारे जैसे लेखक कसूर सिद्ध करने के लिए अपने 'स्वत्व' को प्रस्तुत कर देते हैं, उनकी कलम लिखती है तब—'यह हमारा कसूर मगर यह शब्द '<u>हमारा</u>' केवल लेखक के लिए नहीं होता, इसमें गोपनीय संकेत छुपे रहते हैं और भास देते हैं कि '<u>हमारा</u>' का मतलब आसपास बिखरे समाज के तमाम उन लोगों से है जो कहीं सेठ हैं, कहीं मुनीम-मैनेजर, कहीं प्रवचनकर्त्ता हैं और कहीं मुनीम-मैनेजर, कहीं प्रवचकर्ता है और कहीं श्रोता, कहीं लेखक हैं कहीं पाठक, कहीं व्यापारी हैं कहीं ग्राहक और है कहीं पुरुष कहीं नारी।

मैं चारित्र या नैतिकता की आगमानुकूल व्याख्या करने की भूमिका नहीं बना रहा, न ही उनकी भाषा-परिभाषा की आवश्यकता महसूस करता हूँ। पुराणों में वर्णित चारित्र कौन निभा सकता है, शास्त्रों में उल्लेख की गई नैतिकता कौन जी सकता है। मैं तो उस चारित्र की बात कर रहा हूँ जिसे आप समझते, जानते हैं, पर आचरण में नहीं ला पाते; जिस नैतिकता की आप सृष्टि के हर कोण से आकांक्षा करते हैं, पर अपने केन्द्र-बिन्दु से नहीं निःसृत होने देते।

मेरी भाषा में चारित्र की व्यवस्था विशिष्ट है— <u>'आपके जिन आचरणों से दूसरों को और आपको कोई ठेस न लगती हो वे ही आपका 'चारित्र' बुनते हैं।'</u>

यही चारित्र शनैः शनैः नैतिकता का आधार बनकर शुभ और सद् के स्तम्भ तैयार करता है।

एक व्यापारी जी मुझे मंदिर से अधिक अपने प्रतिष्ठान पर नैतिकता बिखेरते लगते हैं। मंदिर में वे प्रभु का ध्यान कम, भीड़ का अधिक करते हैं। कई बार वे यह तक देखने लगते लगते हैं कि अमुक विशिष्ट व्यक्ति उनके मील का कपड़ा पहिनकर आया है या अन्य का; अमुक की कलाई पर उनकी कम्पनी की घड़ी है या और की, अमुक का नमस्कार उनके लिए था या बाजू में खड़े व्यापारी के लिए। जी हां, यह मंदिर; मस्जिद, गुरुद्वारा और अन्य अन्य देवालयों में होता है। होता रहता है। लोग न समझें यह अलग बात है। वही व्यवसायी प्रतिष्ठान के कार्यालय में अधिक नैतिक दीखने लगता है, क्योंकि सोच का आधार इस समय तक बदल गया होता है। वह सोचता है—अमुक जी आज मंदिर में नहीं दीखे, अमुक जी ने दान के निमित इतने का चेक काटा है, 'अमुक जी' ने कलश लेकर ही छोड़ा 'ठिमके जी' तो हमसे अधिक लगन दिखला रहे हैं धार्मिक कार्यों में। आदि-आदि। हो सकता है, हमारे समाज को एकदम मुनियों-ऋषियों वाले चारित्र और नैतिकता की आवश्यकता न हो; पर जिस ओर जितने चारित्र की आवश्यकता है, वह हम जी ही नहीं रहे। चारित्र पढ़कर लिखा नहीं जाता, चारित्र जी कर लिखा-पढ़ा जाता है। आपके कार्य इतने सही और परहित की दिशा में हों कि उनसे प्रेरणा फूट-फूट पड़े, वही तो है चारित्र। सम्यक् चारित्र की बात तो इसके बाद आती है। मैं तो सहज चारित्र की चर्चा कर रहा हूँ; जो आपके लिए दो पवित्र रीतियाँ तो प्राप्त करा सके, परन्तु किसी की उच्छिष्ठ (जूठन) छीन लेने का बढ़ावा न दे। उस नैतिकता की बात कर रहा हूँ जो बीमार को दवा न जुटा पाए तो स्वस्थ आदमी के लिए विष की गोपन व्यवस्था भी न करे।

जी हाँ, विश्व के औषध् चारित्र और नैतिकता की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और किसी संदिग्ध मोड़ पर से गुजर रहा है, जिसे सुदिशा में ले जाने के लिए मुनि, ग्रन्थ और ईश्वर नहीं, हमारा ढूलमुल होता पारिवारिक वातावरण ही उत्तरदायी है। परिवार से जो सीखा जा रहा है वह इतना ही—हम चारित्र बिछाकर नैतिकता ओढ़ रहे हैं। भीतर न चारित्र है, न नैतिकता। न घर के भीतर, न मन के भीतर।

सरल कुटी
गढ़ा फाटक, जबलपुर

निःसंग है जो वायुसम निर्लेप हैं आकाश से,
वनराज के सम हैं निडर जीवन न पर की आस से।
जिनके निकट सिंहादि पशु भी भूल जाते क्रूरता;
उन दिव्य गुरुओं की अहो कैसी अलौकिक शूरता ॥

—कविरत्न गुणभद्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम चरित्रनिर्माण करें

सिं० नेमीचन्द जी जैन, गोंदवाले, शिवपुरी

सच्चरित्रता की प्रतिमूर्ति सिंघई श्री नेमीचन्द जी बड़े सुलझे हुए विचारों के उदाहृदय मानव हैं। विनम्रता, व्यवहार कुशलता, निर्भीकता, धवल किन्तु सादी वेशभूषा, धार्मिकता प्रसन्न-वदन, आतिथ्य आदि आपके प्रभावी व्यक्तित्व के विशेष आकर्षण हैं। आप कविहृदय तथा भावुक भी हैं।

पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभाव एवं भौतिक विकास के फलस्वरूप दिन-प्रतिदिन सच्चरित्रता का ह्रास होता जा रहा है जो समाज को दूषित करने के साथ-साथ राष्ट्र-पतन का भी कारण बन रहा है। नैतिक चारित्रिक विकास हुए बिना समाज एवं राष्ट्र का उत्थान होना कठिन है। अतः चरित्र-निर्माण आज की प्रमुख आवश्यकता है। प्रस्तुत लेख इसी सन्दर्भ में है, जो पठनीय है।

—सम्पादक

धन यदि गया गया नहीं कुछ भी, स्वास्थ्य गया कुछ जाता है।
सदाचार जो गया मनुष्य का, सर्वस्व ही लुट जाता है॥

निःसन्देह, सदाचार या सच्चरित्र मानव-जीवन की अमूल्य निधि है। अतः इसकी सुरक्षा अनिवार्य है। सच्चरित्र ही मानव को सुखी, योग्य तथा प्रतिष्ठित बनाता है तथा आपदाओं से बचाता है। लेकिन आज विश्व-मानव इससे उदासीन है।

अतः वर्तमान में हमें अपने चरित्र-निर्माण पर गम्भीरता से विचार करना है। चरित्र मानव-जीवन की वह उज्ज्वल ज्योति है जो मनुष्य को भयंकर विपदाओं, दुर्गमताओं और निराशाओं में भी नीचे नहीं गिरने देती; अपितु जीवन-पथ को सदैव प्रशस्त, सुगम बनाये रखती है। निष्कलंक चरित्र एक अमोघ शक्ति है, प्रभाव है, जो मित्र, हितैषी व शुभचिन्तक उत्पन्न करता है तथा धन, मान-सम्मान का निश्चित मार्ग खोल देता है। चरित्र कोरी कल्पनामात्र नहीं है। कहा है—'चारित्तं खलु धम्मो'—चारित्र ही धर्म है। यह सदाचार व आत्मानुशासन की ओजस्विनी शक्ति है। भगवान महावीर, बुद्ध, राम और कृष्ण के जीवन चरित्र हमें शिक्षण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थाओं में पढ़ाये जाते हैं। अपने जीवन-चरित्र की अधिकतम ऊंचाईयों तक उठकर ही ये महान् एवं पूज्य बन। सहस्राब्दियों के अनन्तर भी ये महान् आत्माएँ पूज्य एवं आराध्य हैं। हमें जीवन में इनसे प्रेरणा मिलती है और हम अनुप्राणित होते हैं।

यदि हमारे जीवन में छल-छिद्र, कुटिलताएँ-धूर्तताएँ, दुर्भाव और क्षुद्रताएँ नहीं हैं, तो हम सरल हैं, विनम्र और चरित्रवान भी हैं। किसी को धोखा न देना किसी के साथ कपट न करना, किसी की अज्ञानता या संकटग्रस्त स्थिति का लाभ लेकर शोषण न करना, सरल स्वभावी एवं चरित्रवान होना है। जीवन में सुखी, शान्तिप्रिय, निराकुल होने के लिए हमें मितव्ययी एवं चरित्रवान होना अनिवार्य है। जैनसमाज द्वारा संचालित पाठशालाएँ, विद्यालय, महाविद्यालय चरित्रनिर्माण के मूल-लक्ष्य से ही संस्थापित की गई हैं, जहाँ बालक को प्रारम्भ से ही धार्मिक शिक्षा दी जाती है। श्री नाभिनन्दन दिग० जैन संस्कृत विद्यालय भी जैन जगत की यशस्वी शिक्षण-संस्थाओं में से है। जिसकी स्थापना-काल से अब चौथी-पांचवीं पीढ़ी के बालक विद्याध्ययन कर रहे हैं। यहाँ के स्नातक बहुत अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित पदों पर पहुँचे हैं व समाज में आदर्श उपस्थित कर इस विद्यालय के गौरव को बढ़ा रहे हैं।

हम अपने जीवन को जितना संस्कारित करेंगे, उतना ही वह आदर्श और मूल्यवान होगा। कच्चे लोहे की डली से लीजिए—कुदाली, फावड़ा, गैंती बनाईये। इसके बदले आपको १०-१५ रुपया मिल जायेगा। थोड़ा और संस्कारित कीजिये—ताले बनाईये अच्छे किस्म के तो और अधिक पैसा मिल जायेगा। आप घड़ी बना दीजिए, पांच-सौ-सातसौ रुपया मिल जायेगा तो आप जितना अधिक संस्कारित करेंगे, उतना अधिक मूल्य पायेंगे। पेड़-पौधे हैं जंगल में, चाहे जिधर को बढ़ रहे हैं, कांटे लगते हैं पथिक को। वही पेड़-पौधे बगीचे में हैं, माली उन्हें संस्कारित करता है, देखरेख करता है, तो वे बहुत शोभा देते हैं उद्यान की, हमें मनमोहक भी लगते हैं और आकर्षित भी करते हैं। तो ये जो हमारी जैन शिक्षण-संस्थाएँ हैं, वे हमारे चरित्र-निर्माण की केन्द्र हैं, जीवन की दिशा बोधक हैं—प्रकाश स्तम्भ हैं।

आज की भौतिकवादी दुनियाँ में चकाचौंध में लोग अपना चरित्र-हनन कर रहे हैं। ऐसे समय में हम अपनी चारित्रिक उज्ज्वलता का आदर्श दुनियाँ के सामने रख सकते हैं, जिसकी अन्य समाज हमसे अपेक्षा भी करते हैं। एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या आज की दुनियाँ में इतना सरल, सज्जन व चरित्रवान होकर जीना सम्भव है? शायद नहीं। किन्तु क्या कोई व्यक्ति सरल और सज्जन होने से रुक सकता है? कभी भी नहीं। चरित्र-निर्माण, ऋजुता, भद्रता हमारा-आपका मौलिक गुण है। इसलिए इसे छोड़ नहीं सकते। जिस प्रकार जल के प्रवाह को, अथवा अग्नि को दाहक होने से या बादलों को बरसने से नहीं रोका जा सकता, वैसे ही सरल-निश्छल, सज्जन, चरित्रवान व्यक्ति को उसके आचरण पालन से रोका नहीं जा सकता।

यह सही है कि आज धनी, तिकड़मी, चतुर-चालाक मान-सम्मान पाते हुए देखे जाते हैं; किन्तु वह सब आस्थायी व दिखावटी होता है, उनके साथ हृदय और आत्मीयता जुड़ी नहीं होती, जो आस्था एक चरित्रवान व्यक्ति के प्रति होती है। चरित्र, जीवन की स्थायी अचल सम्पत्ति है, यह धन-दौलत की तरह चंचल नहीं है। चरित्रवान् व्यक्ति का प्रभाव सीधे मन पर पड़ता है और और वह स्थायी होता है। चरित्रहीन व्यक्ति का प्रभाव तो दूर, उसका कोई विश्वास भी नहीं करता। धन के बिना जीवन उज्ज्वल तथा यशस्वी बन सकता है, किन्तु सद्‌चरित्र के अभाव में कदापि नहीं।

वहीं राष्ट्र, धर्म, जाति और समाज उन्नति कर सकता है जो चरित्र-निर्माण पर बल देता है, विश्वास करता है। चरित्र से तात्पर्य सद् आचरण, सादगी, सरलता; ईमानदारी और सज्जनता से है। इन गुणों में चारित्रिक उज्ज्वलता की प्रतिध्वनि गूंजती है। जो व्यक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना कर्तव्य करता है, बिना किसी को बाधित किये अपनी राह चलता है, जिसका न किसी से बैर है, न दुश्मनी है, जिसे न किसी से कुछ लेना है और न भुनाना है, अपनी कथनी-करनी में एक है, वह सरल है सज्जन है। जो समाज-सेवा का व्रती है, समाज के लिए जिसके रक्त का कण-कण समर्पित है, जिसके मन में ईर्ष्या-द्वेष की भट्टी नहीं धधकती, जो दूसरों को ही आगे बढ़ाने में अपना सर्वस्व होम देने को तत्पर है; वही चरित्रवान है।

हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि हम निर्मल नीर की नाईं उज्ज्वल, निष्कलंक, चन्द्रकिरण की भांति सुखद-शीतल और जल प्रपात की तरह गतिशील बनें। हम अभिवादन की तरह विनम्र प्रार्थना की भांति सरल और प्रामाणिक बनें। तभी हमारा चरित्र-निर्माण होगा। यही हमारे राष्ट्र, धर्म एवं समाज को उन्नतिशील बनायेगा। □

—न्यू ब्लाक, शिवपुरी
(म० प्र०)

नीतिवाक्यामृत

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूताहि साधवः।
कालेन फलते तीर्थः, सद्यः साधु-समागमः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन आलोकित करने का संयम दृढ़ आधार है

● आशुकवि कल्याणकुमार 'शशि' रामपुर (उ० प्र०)

१—आत्म-नियन्त्रण में संयम है, यह तत्वों का मूल है।
माया, ममता, मोह, परिग्रह, संयम के प्रतिकूल है।।
संयम बिना शान्ति मिल जाये, यह आशा निर्मूल है।
जो जीवन को महकाता है, वह संयम का फूल है।।

यह संयम ही सार जगत में शेष असत्य असार है।
जीवन आलोकित करने का संयम दृढ़ आधार है।।

२—अणुव्रत और महाव्रत इनमें, संयम का विश्राम है।
सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित यह, सब संयम के नाम हैं।।
इच्छाओं पर जय पाने में, यह संयम सरनाम है।
चिदानन्द आनन्द कन्द इस संयम के परिणाम हैं।।

कथनी करनी एक नहीं तो पापों का भण्डार है।
जीवन आलोकित करने का संयम दृढ़ आधार है।।

३—संयम के बल पर यह नौका, सागर से तर जायेगी।
आकाँक्षा के वशीभूत तरि, जल से भर जायेगी।।
कई दिशाओं में भटके तो, दिशा उलझ जायेगी।
संयम का यदि सिरा पा गये, डोर सुलभ जायेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकल विश्व में इस संयम की महिमा अपरम्पार है।
जीवन आलोकित करने का संयम दृढ़ आधार है।।

४–यह संयम, नवयुवकों के, पथ का नेतृत्व करेगा।
यह संयम हताश जीवन में, जीवन तत्व भरेगा।।
यही पथ से किसी चरण को, नहीं भटकने देगा।
जो इस पर दृढ़ रहा पथिक, वह मंजिल तक पहुँचेगा।।

संयम की बाहें पकड़ीं तो जग से बेड़ा पार है।
जीवन आलोकित करने का संयम दृढ़ आधार है।।

卐

सुभाषितम्

इस जीवन का गर्व क्या, कहाँ देह सों प्रीति।
बात कहत ढह जात है, बालू की - सी भीति।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावक के षट् आवश्यक कर्म

● श्रावक शिरोमणि, मुनि भक्त पं. भागचन्द जी पाटनी

मुनिभक्त पं० भागचन्द जी पाटनी बड़े धार्मिक, सदाचारी, सात्विक आहारी, सरलस्वभावी, उदारचेता महापुरुष हैं। अपने व्यापारिक कार्यों में मात्र ३ घन्टे का ही समय प्रतिदिन देते हैं। शेष समय पूजा-भक्ति, सामायिक, स्वाध्याय, सत्संग, धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में व्यतीत करते हैं। आप सन्तस्वभावी व अल्पपरिग्रही हैं। मंत्री, संयोजक, सभापति या उपसभापति पद पर रहकर आप अनेक संस्थाओं में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। इन्हीं सेवाओं के फलस्वरूप अनेक स्थानों की समाजों ने इन्हें मान-पत्र व मानद उपाधियाँ प्रदान कर सम्मानित किया है। कलकत्ता महानगरी में दिगम्बर मुनि संघ के प्रवेश तथा चातुर्मास कराने में आपका योगदान सराहनीय है। मुनियों की भक्ति सेवाशुश्रूषा तथा देखभाल में आपकी गहरी रुचि है। धार्मिक साहित्य के प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार एवं धार्मिक कार्यों में आप मुक्तहस्त से उदारतापूर्वक दान देते हैं।

प्रस्तुत लेख में आपने श्रावक के ६ आवश्यक कर्तव्यों पर अच्छा प्रकाश डाला है। लेख पठनीय तथा आचरणीय है।

—सम्पादक

गृहस्थ लोग पाप-क्रियाओं का सर्वथा त्याग नहीं कर सकते। उन्हें अपने दैनिक जीवन में अनेक आरम्भ करने पड़ते है, जिनमें हिंसा आदि के दोष लग ही जाते हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए तथा पुण्यबन्ध, आत्म शान्ति और आत्मोन्नति के लिए शास्त्रों में गृहस्थ के लिए छह दैनिक आवश्यक कर्तव्य बतलाये गये हैं—

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने॥

१—देवपूजा २—गुरु की उपासना ३—शास्त्र-स्वाध्याय ४—संयम ५—तप और ६-दान ये ६ गृहस्थ के आवश्यक कर्तव्य हैं।

१, देवपूजा—अपने आदर्श देवाधिदेव श्री १००८ जिनेन्द्र भगवान की अष्ट द्रव्यों से पूजन करना 'देवपूजा' है। मन-वचन-काय से भ० जिनेन्द्र के गुणों का स्मरण, चिन्तन-मनन व वर्णन करते हुए जलादि अष्ट द्रव्यों को भगवान के समक्ष चढ़ाते हुए अविनश्वर मोक्ष-पद पाने की पवित्र भावना को 'पूजन' कहा जाता है।

पूजा के समय ख्याति-लाभ या पुत्र-सम्पदा की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाह, भरण-पोषणादि लौकिक इच्छाओं की पूर्ति की भावना नहीं रखना चाहिए। उस समय तो पूर्णतया भगवान के गुणों में ही लीन हो जाना चाहिए। पूजन के समय मुँह पूर्व या उत्तर दिशा में होना चाहिए; क्योंकि आगम में ये दोनों ही दिशाएँ उत्तम व शुभ मानी गई हैं।

देवापूजा तो वस्तुतः उनके गुणों की प्राप्ति के लिए की जाती है—(वन्दे तद्गुणलब्धये)। इससे पापों का क्षय व पुण्य का बन्ध होता है तथा मोक्ष भी प्राप्त हो सकता है यदि सच्ची पूजा की जाय तो। इसीलिए तो आचार्यों ने कहा है—

देव-शास्त्र-गुरु पूजते, निरमल बनते भाव।
पूजा से प्रभु निज मिलें, चूक न जाना दाव॥
जिनवर भक्ति जो करे, मन-वच-तन कर लीन।
इस भव में दुख ना लहै, ना भव धरे नवीन॥

पूजा-भक्ति के फल को पाने वालों की अनेक कथाएँ हमारे धर्म ग्रन्थों में प्रसिद्ध ही हैं। जैसे—कवि धनञ्जय, आ० मानतुग, वादिराज मुनि; सती मैनासुन्दरी, आ० समन्तभद्र, सती सीता, द्रोपती, मनोरमा, मेंढक आदि। अतः हमें भी पूजा-भक्ति के माहात्म्य को ध्यान में रखते हुए आत्म कल्याणा प्रातः स्नानादि प्रतिदिन कर शुद्धवस्त्र धारणकर अष्टद्रव्य से जिनेन्द्र प्रभु की पूजन करनी चाहिए। पूजन से हमारा मन और भावनायें पवित्र हो जाती हैं और दिनचर्या सुलभ हो जाती है तथा दैनिक विकट समस्याएँ भी अनायास ही हल हो जाती है।

२. गुरूपास्ति—अर्थात् गुरू की उपासना। यहाँ गुरू से तात्पर्य सच्चे धर्मगुरु से लेना चाहिए। समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रंन्थ दिगम्बर मुनि तथा ऐलक क्षुल्लक, आर्यिका, क्षुल्लिका, व्रती, त्यागी का विनय के साथ उपदेश सुनना, उनकी सेवा-शुश्रूषा करना, उनकी आवश्यकतानुसार कमण्डलु, पीछी, शास्त्र आदि उपकरण देना, विधि पूर्वक नवधा भक्ति से शुद्ध आहार देना आदि 'गुरूपासना' कहलाती है।

'गुरु' अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाले होते हैं। अतः अज्ञानान्धकार का निवारण करने से ही 'गुरु' शब्द की साभिप्राय निष्पत्ति होती है। सच्चे गुरु संसार रूपी विकट वन में सम्यक्त्वरूपी आँखों से रहित भोले प्राणियों को सम्यग्ज्ञान चक्षु प्रदान कर मुक्तिपथ की ओर प्रेरित करने वाले होते हैं—

उन गुरुवर के चरण में, नमन अनन्ते बार।
मुक्तीपथ दर्शायकें, भव से करते पार॥२१

पांचों इन्द्रियों के विषयों की लालसा रहित, सभी तरह के आरम्भ और परिग्रह के त्यागी, ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहने वाले साधु ही सच्चे गुरु हैं। आचार्य, उपाध्याय तथा सर्वसाधुओं का समावेश ऐसे गुरुओं में होता है। ये गुरु हमारे अज्ञानान्धकार को हटाकर हृदय में ज्ञानदीप जला देते हैं, जो कभी बुझता नहीं है। इनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान-चिन्तामणि के प्रकाश से हमें पथ-कुपथ की पहचान बनी रहती है और स्व-पर विवेक जाग्रत रहता है। उनका असीम उपकार हमारे ऊपर है। ऐसे परमोपकारी गुरुदेव को हमें खाली हाथ नमस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि फल की प्राप्ति फल से ही होती है। उनका कभी अनादर व उपेक्षा भी नहीं करना चाहिए। उनकी विनय और आज्ञा पर पूर्ण दृष्टि होना चाहिए।

आत्म जागृति के लिए सच्चे मार्गदर्शक वीतरागी ज्ञानी गुरु की हमारे दैनिक जीवन में आवश्यकता होती है; पर यह सुयोग दुर्लभ है। अतः उनकी अनुपस्थिति या अभाव में हमें एकान्त में बैठकर बड़ी भक्ति व अनुराग से उनकी स्तुति पढ़नी चाहिए।

गुरुभक्ति जग में बड़ी, सब सुख कारण जाण।
पाप नशे, गुण अनुभवें, अन्तिम पद, निर्वाण॥२४

३. स्वाध्याय—भ० जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट आचार्य प्रणीत सच्चे शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना, पूछना व बताना, चिन्तवन व मनन करना, चर्चा करना 'स्वाध्याय' है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'स्वाध्यायः परमं तप'---स्वाध्यायः परम तप है। इससे बुद्धि और ज्ञान का विकास होता है और परिणाम उज्ज्वल होते हैं। अतएव हमें सद्-शास्त्रों का स्वाध्याय नित्य करना चाहिए। क्योंकि शास्त्रस्वाध्याय से हम अपने मन को अधिक से अधिक समय तक चिन्तन - मनन में लीन रख सकते हैं, कर्त्तव्य-अकर्तव्य का विवेक रखकर निषिद्ध कर्मों से बच सकते हैं, हिताहित का ज्ञान रख सकते हैं। ज्ञान-नेत्र को खोलकर शास्त्र हमें अपनी आन्तरिक शक्तियों का बोध कराते हैं और आत्मा का दर्शन कराते हैं। अतः हमें इन आत्मकल्याणकारी शास्त्रों का श्रवण व पठन खूब मन लगाकर एकाग्र चित्त से करना चाहिए। ये हमारे ज्ञानादि के विकास में परम सहायक हैं। इसीलिए तो आचार्यों ने जिनवाणी की बड़ी महिमा गाई है—

आचार्यों ने जिनवाणी को माता कहकर उसे मोक्ष का कारण बतलाया है। यह अज्ञानान्धकार को मेट सच्चा मार्ग दर्शन देती है। जैसे अन्धेरे घर में दीपक का सहारा लेकर हम अपनी अभीष्ट वस्तु को पा लेते हैं उसी तरह जिनवाणी का आश्रय लेकर हम मोक्ष को पा सकते हैं। जिनवाणी सच्चे जीवन-पथ का मार्ग दर्शन कराती है।

'स्वस्य आत्मनः अध्ययनं स्वाध्यायः' अर्थात् अपनी आत्मा का अध्ययन या आत्म-निरीक्षण स्वाध्याय है। अथवा 'स्वं अध्ययनं स्वाध्यायः' अपने आप अध्ययन-मनन करना स्वाध्याय है। अतः स्वाध्याय में आत्म गुणों की खोज की जाती है, बाह्य से अन्तरंग में झांका जाता है और अहित को त्यागकर हित को अपना लिया जाता है।

सैद्धान्तिक ग्रन्थों का स्वाध्याय समय से ही करना उचित है, अकाल में इनके स्वाध्याय का निषेध किया गया है। सामायिक का समय सैद्धान्तिक ग्रन्थों के स्वाध्याय का समय नहीं है। सूर्योदय के दो घड़ी बाद इनका स्वाध्याय किया जाना उचित है। चाहे दिन हो चाहे रात छोटी-मोटी पुस्तकों का पठन-पाठन व आत्म-गुणों का चिन्तन तो हर समय किया जा सकता है।

स्वाध्याय करते समय एकासन से बैठें और फालतू चर्चा न करें और स्वाध्यायोपरान्त मनन-चिन्तन करते हुए सभी अच्छी हित की बातों को आचरण में लाने का प्रयत्न करें। शास्त्रों की विनय का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

आचार्य उमास्वामि ने तत्वार्थ सूत्र—(अ० ९ सू. २५) में स्वाध्याय के पांच भेद बतलाये हैं—(१) बांचना (२) पूछना (३) अनुप्रेक्षा (४) आम्नाय और (५) धर्मोपदेश।

संसार के कारण भूत कुशास्त्र स्वाध्याय करने के योग्य नहीं हैं। आचार्यों ने स्वाध्यायोपयोगी ग्रन्थों के ४ भागों में विभक्त किया है और वे हैं—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के ग्रन्थ। इन्हीं का स्वाध्याय किया जाना चाहिए।

स्वाध्याय ज्ञान बढ़ाने का सबसे अच्छा सुगम साधन है और ज्ञान के समान संसार में और कोई सुख को देने वाला नहीं है। अतः 'स्वाध्याय निशदिन करें लाख काम को छोड़'—यही आचार्यों की सीख हमारे लिए है।

६. संयम—सावधानी से देख-भाल कर कार्य करते हुए षट्काय के जीवों की रक्षा करना और अपनी इन्द्रियों को वश में रखना 'संयम' है। अपने अन्तःकरण में प्रतिक्षण नवीन रूप धारण करने वाले आकुलता-व्याकुलता-उत्पादक विकल्पों को भली प्रकार दवा देना 'संयम' है। क्रोधादि कषायों को रोकना और हिंसा आदि पापों से अपने को बचाना भी संयम है। अपने आप पर नियन्त्रण रखना सबसे बड़ा संयम है। संयम के दो भेद हैं—(१) इन्द्रिय-संयम और (२) प्राणि-संयम।

(अ) इन्द्रिय-संयम—पांचों इन्द्रियों और मन को वश में करना 'इन्द्रिय-संयम' कहलाता है। एक-एक इन्द्रिय के विषय में आसक्त हो प्राणी नाना कष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उठाते है और अपने प्राणों को भी गंवा बैठते हैं लेकिन जो पांचों इन्द्रियों और मन के वशीभूत हैं, उनकी गति तो भगवान ही जानें। निःसन्देह, इन्द्रियों का असंयम सभी आपदाओं का मार्ग है। कहा भी है—

आपदां कथितः पन्था, इन्द्रियाणामसंयमः।

अतः हमें इन्द्रियों के विषयों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। ये विषय घोर संकट और दुःखों के कारण हैं। शास्त्रों में एक-एक इन्द्रिय के विषयों में आसक्त प्राणियों की दुर्गति की कथाएं वर्णित हैं। हमें उनसे शिक्षा लेनी चाहिए तथा इन्द्रिय-विषयों के सेवन का यथा शक्ति त्याग अथवा परिमाण करना चाहिए।

१. स्पर्शनेन्द्रियसंयम—शरीर के सुखदायी विषयों का त्याग और परिमाण 'स्पर्शनेन्द्रिय संयम' है। इसके पालनार्थ हमें अपना रहन-सहन और पहनावा सादा रखना चाहिए और फैशन का दास नहीं बनना चाहिए। जैसे - सुन्दर कीमती कपड़े, मखमली गद्दे, सोफा-सेट, जेवर-आभूषण, ऐशो-आराम के पदार्थ, सुगन्धित तेल, साबुनें, इत्र-फुलेल, क्रीम, पाउडर आदि अनावश्यक चीजों का त्याग। इनके त्याग से हम अनावश्यक खर्च और अमूल्य समय को व्यर्थ खोने से बचा सकते हैं तथा अधिक धन कमाने की चिन्ता में जो आर्त्त-रौद्र परिणाम होते हैं, उनसे भी बचा जा सकता है और अपने अवशिष्ट समय का सदुपयोग धर्मध्यान में किया जा सकता है।

२. रसनेन्द्रिय संयम— रसना (जीभ) की लोलुपता को रोकना रसना-इन्द्रिय का संयम है। वाक्-संयम भी इसी के अन्तर्गत है। रसना-इन्द्रिय का संयम न रखने से जिह्वा की लोलुपतावश हम अनेक असाध्य तथा कष्टदायक बीमारियों के शिकार बन जाते हैं जिससे हमारा जीवन बड़ा अशान्त और घोर निराशाओं से परिपूर्ण हो जाता है और कभी-कभी इन असाध्य बीमारियों की वजह से लोगों को अपने प्राणों से भी हाथ धो लेना पड़ते हैं। अतः रसनेन्द्रिय पर संयम रख हम अनावश्यक खर्चों से बचें और स्वास्थ्य को ठीक रखें।

अनावश्यक बैर-वैमनस्य, बुराई, झगड़े और ईर्ष्या-द्वेष आदि से बचने के लिए हमें अपनी वाणी पर भी संयम रखना चाहिए और सदैव हित, मित और प्रिय वचन बोलना चाहिए। अश्लील, असत्य भाषण, कटु-वचन, हंसी-मजाक तथा गाली-गलौच इस संयम में वर्जनीय है।

३. घ्राणेन्द्रिय संयम—सुगन्ध - दुर्गन्ध में रागद्वेष की भावना नहीं होना और इन पदार्थों के सेवन का त्याग करना 'घ्राण-इन्द्रिय का संयम' है।

४. चक्षुरिन्द्रिय संयम—चक्षुरि-न्द्रिय की चंचलता को रोकना 'चक्षु-इन्द्रिय का संयम' है। द्वेषभाव, विकारीभाव, क्रूरभाव, भय या मनोरंजन के भावों से किसी वस्तु को न देखना, सुन्दर रूप पर मोहित न होना, समभाव बनाये रखना ही 'चक्षु-इन्द्रिय का संयम' है। इस संयमधारी को भावों को बिगाड़ने वाले कुमार्ग प्रेरक खोटे खेल-तमाशों तथा चलचित्रों का देखना भी वर्जनीय हैं। उसे अपने नेत्रों को देव-गुरु के दर्शन; स्वाध्याय तथा धार्मिक विषयों में लगाना चाहिए।

५. कर्णेन्द्रिय-संयम—कर्णेन्द्रिय के अहितकारी सम्पूर्ण विषयों का त्याग 'कर्णेन्द्रिय का संयम' है। धर्मोपदेश, धार्मिक चर्चाएं और जिनवाणी का सुनना कर्णेन्द्रिय के आवश्यक विषय हैं। इन्हें सुनना चाहिए। धनोपार्जन या व्यापार सम्बन्धी न्यायपूर्ण बातें भी सुनी जा सकती हैं लेकिन कुपथ पर ले जाने वाली कथा-कहानियों, उपन्यासों, गीतों तथा चर्चाओं का सुनना इस संयमधारी के लिए सर्वथा वर्जनीय हैं! अपनी निन्दा सुनकर क्रोधित न होना और प्रशंसा सुनकर हर्षित न होना भी इस संयमधारी को आवश्यक है।

६. मन-इन्द्रिय संयम—अपनी इच्छाओं और मन की आसक्ति को रोकना 'मन-इन्द्रिय का संयम' है। मन को इन्द्रियों का राजा या सरदार माना गया है। इसको वश में किये बगैर इन्द्रिय-संयम का पालन नहीं किया जा सकता। अतः अन्य इन्द्रियों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयम को सम्यक्-रीत्या पालने के लिए मन-इन्द्रिय को काबू में रखना अनिवार्य है।

(ब) प्राणिसंयम—का अर्थ है अपने जीवन की हर प्रवृत्ति में सावधानी रखना जिससे हमारे द्वारा किसी प्राणि को पीड़ा या कष्ट न पहुँचे। पृथ्वी-काय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पति और त्रसकाय के जीवों की रक्षा का भाव रखना और व्यर्थ में उन्हें न सताना या कष्ट देना 'प्राणि संयम' है। कहा भी है—

त्रस अरु थावर योनि में, जीव अनन्त प्रमाण।
प्राणी संयम है वही, हरो न उनके प्राण ॥५७॥

संयम दुर्लभ वस्तु है। इसके पालन का सुयोग मनुष्य गति में ही मिलता है। अतः इस दुर्लभ मनुष्य भव को प्राप्तकर हमें संयम का पालन अवश्य करना चाहिए। इसके पालन से वात्सल्य एवं करुणाभाव प्रकट होते हैं। पूजा-स्तुति, ख्याति-लाभ अथवा लोकैषणा की भावना से इसका पालन नहीं किया जाना चाहिए। संयम-पालन से सुख-शान्ति मिलती है। कहा भी है—

संयम सम नहिं जगत में, सुख का कारण कोय।
सब कुछ तजि संयम लेहां, संयम से सुख होय।३७।

६. तप—जिसकी सहायता से आत्मा के विकारी भावों को (कर्मों को) हटाया जाता है, उसे कर्मरहित शुद्ध निर्मल किया जाता है, वह तप कहलाता है। 'इच्छा-निरोधस्तपः' इच्छाओं को रोकना भी तप है। अशान्ति-कारक अशुभ कर्मों के आस्रव को रोकने तथा पूर्वोवार्जित कर्मों की निर्जराहेतु तप किया जाता है। यह मूलतः दो प्रकार का है तथा इसके १२ उपभेद हैं—

१. बाह्यतप—अन्तरंग तप के कारण हैं। ये ६ होते हैं—

(i) अनशन—अपनी शक्ति अनुसार अन्न आदि आहारों का त्याग।

(ii) ऊनोदर—भूख से कम खाना।

(iii) वृत्तिपरिसंख्यान—आहार-सम्बन्धी त्याग की कोई दृढ़ प्रतिज्ञा लेना।

(iv) रस-परित्याग—भोजन में रसों के त्याग की प्रतिज्ञा।

(v) कायक्लेश—आत्मगुणों की प्राप्ति हेतु त्रियोग की प्रवृत्ति को रोककर एकासन में बैठ ध्यान चिन्तन आदि करना।

(vi) विविक्तशय्यासन—आत्मकल्याणार्थ एकान्त में विस्तरों को छोड़कर एक करवट से रात्रि में सोना।

२. अन्तरंग तप—ये भावों पर निर्भर होते हैं, कर्मों का नाश करते हैं और आत्मा को निर्मल, शान्त व विशुद्ध बनाते हैं। ये भी ६ होते हैं—

(i) प्रायश्चित्त—अपनी भूलों को गुरु या बड़ों के समक्ष निवेदन करना और वे जो दण्ड दें, उसे स्वीकार करना। इससे भाव निर्मल होते हैं।

(ii) विनय—पूज्य देव-शास्त्र-गुरु तथा महापुरुषों आदि की यथायोग्य नमन, वन्दना, आदर-सत्कार आदि से विनय-भक्ति करना।

(iii) वैयावृत्ति—सेवा शुश्रूषा, साज-सम्हाल और देखभाल आदि करना।

(iv) स्वाध्याय—सत्-शास्त्रों का अध्ययन, पठन-पाठन, चिन्तन-मनन आदि।

(v) कार्योत्सर्ग—शरीर से ममत्व छोड़कर आत्म-गुणों का चिन्तवन करते हुए अथवा पंचनमस्कार मन्त्र का जाप करते हुए निर्जन स्थान में खड़े रहना।

(vi) ध्यान—आत्म-गुणों की खोज हेतु मन-वचन-काम की प्रवृत्तियों का निरोध करके अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त एक स्थान पर ठहरना। ध्यान के ४ भेद हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्त्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल। इनमें आर्त्त और रौद्र ध्यान अशुभ। ये दुःखों और दुर्गतियों के कारण हैं। धर्म्य और शुक्ल—ये दोनों शुभ होते हैं।

मायाचार से रहित, ख्यातिलाभ से परे, सद्भाव, सम्यक् श्रद्धा, व संयम के साथ किया हुआ तप ही कर्मों के संवर व निर्जरा का कारण होता है, आत्मा को निर्मल बनाने वाला होता है। तप में किसी प्रकार की चाह या इच्छा नहीं होनी चाहिए। इच्छाओं के निरोध को तप इसीलिए कहा गया है। जो तप मुक्ति-सुख को देने वाला है उससे सांसारिक सुखों की कामना करना व्यर्थ है। वे तो अपने-आप ही प्राप्त होते हैं। तप सुख-शान्तिवर्धक व बलवृद्धिकारक है। अतः अपनी शक्ति के अनुसार तप अवश्य करते रहना चाहिए।

६. दान—गृहस्थाश्रम में आरम्भ और परिग्रह-संचय से संचित पाप-भार को हलका करने के लिए तथा लोभादि कषायों को क्षीण करने के लिए प्रतिदिन आहार, औषधि, अभय और ज्ञानदान में से यथाशक्ति धर्मपात्रों (मुनि आदि) को भक्ति-भाव के साथ, दीन-दुखियों को करुणाभाव से आवश्यकतानुसार द्रव्यादि को त्याग करना 'दान' कहलाता है। यह अपने और पर के कल्याण के लिए फल की इच्छा के विना किया जाता है। धर्मपात्रों को दिया गया दान 'पात्रदान' कहलाता है और दीन-दुखी, भूखे-अपाहिज, विधवा और अनाथों को दिया गया दान 'करुणादान' कहलाता है। दान श्रद्धा-भक्ति व आदरपूर्वक किया जाना चाहिए। सद्भावों से सत्पात्रों को दिया गया दान ही श्रेष्ठ फलदायी होता है।

उपसंहार—

ऊपर श्रावक के ६ आवश्यक कर्मों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। ये गृहस्थों के प्रतिदिन अनिवार्यतः किये जाने वाले करणीय कर्तव्य हैं। गृहस्थों को समस्त कार्यों को छोड़ सर्वप्रथम प्रतिदिन इन्हें अवश्य करना चाहिए। तदनन्तर अपने जीविकोपार्जन के कार्यों में लगना चाहिए। इन कर्तव्यों के करने से पुण्य संचय होता है। जिससे हमारे कठिन से कठिन कार्य भी सहज व आसान हो जाते हैं तथा अनेक समस्याएँ स्वतः ही हल हो जाती हैं। अतः हमारी सुख-शान्ति को बढ़ाने वाले होने से ये प्रतिदिन करणीय हैं। ▭

—६२, नलिनी सेठ रोड
कलकत्ता—७

शतेषु जायते शूरः, सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दस सहस्रेषु, दाता भवति वानवा॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युवकों के उत्थान में बुजर्गों की भूमिका

● प्रो. सुपार्श्वकुमार जैन

एम. ए., साहित्यशास्त्री; आयुर्वेद विशारद

प्रो० सुपार्श्वकुमार इसी विद्यालय के स्नातक हैं। अ० भा० युवापरिषद के महामंत्री और शास्त्रिपरिषद् के योग्य कर्मठ तथा उत्साही कार्यकर्ता हैं। नई पीढ़ी के विद्वान् हैं। जैन दर्शन में आपकी गहरी रुचि है। तार्किक बुद्धि, क्रान्तिकारी विचार, धार्मिक रुचि, निर्मल स्वभाव, एवं शान्त प्रकृति आपके व्यक्तित्व के विशेष गुण हैं।

युवावर्ग और वृद्धजन एक दूसरे से असन्तुष्ट हो परस्पर दोषारोपण किया करते हैं। युवाओं के लिए भविष्य सुनहला दिखता है और वृद्धों के लिए अतीत। वर्तमान से दोनों ही क्षुब्ध हैं। इसका कारण है वर्तमान की बदली हुई परिस्थितियाँ तथा परिवेश। युवाओं की उच्छृंखलता, अनुशासन हीनता, अकर्मण्यता, अशिष्टता आदि देख वृद्धजन उन पर आक्रोश व्यक्त कर दोषारोपण करते हैं; पर इनके मूल कारणों का पता लगाकर उनके निराकरण का कोई उपाय नहीं करते हैं। इसीसे युवाओं में कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता।

निःसन्देह, युवा-शक्ति किसी भी राष्ट्र की अजेय अमोघ शक्ति होती है। यदि इस शक्ति का उपयोग उचित मार्ग दर्शन के साथ रचनात्मक कार्यों को सम्पन्न करने में किया जाय तो समाज एवं राष्ट्र का कायाकल्प किया जा सकता है; क्योंकि युवाओं में अपूर्व क्षमता, असीमित उत्साह, लगन तथा कुछ कर दिखाने का असीमित जोश खूब होता है। अतः यदि वृद्धजन चाहें तो नूतन दिशाबोध और सत्परामर्श देकर युवकों को उत्थान की ओर मोड़ सकते हैं।

—सम्पादक

'आज का युवावर्ग दिशाहीन एवं मार्गभ्रष्ट है'—यह कथन अन्यथा नहीं है। जब हम युवावर्ग की ओर दृष्टिपात करते हैं तो उनके रहन-सहन, खान-पान, चाल-ढाल तथा बोल चाल को देखकर उपर्युक्त कथन की सत्यता ही पाते हैं। इसीलिए आज का युवावर्ग बुजुर्गों की आलोचना एवं आकर्षण का केन्द्रबिन्दु हैं और प्रौढ़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोगों की ईर्ष्या का केन्द्र है। वास्तविकता यह है कि पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति में भारतीय संस्कृति उसी तरह बिलीन हो रही है जिस तरह सागर में नदियाँ बिलीन हो जाती हैं। जहाँ उनका स्व-अस्तित्व तो समाप्त होता ही है, साथ में उनका स्वादिष्ट-गुण (मीठापन) भी समाप्त हो जाता है।

आज का युवावर्ग सर्जनात्मक कार्यों की अपेक्षा विध्वंसात्मक कार्यों में संलग्न है। इसका कारण कुछ तो हमारी शिक्षा-पद्धति है और कुछ, जो अधिक महत्वपूर्ण है, हमारे बुजुर्गों द्वारा दिशानिर्देशन का अभाव है। हमारी शिक्षा-पद्धति, जो मैकाले की क्लर्क उत्पादक पद्धति थी, पाश्चात्य दृष्टिकोण से निर्मित थी, वह आज भी है। इसीसे इसमें आध्यात्मिकता व नैतिकता का समावेश नहीं है। भौतिक-शिक्षा से शिक्षित इस भौतिकवादी युवावर्ग से और अपेक्षा भी क्या हो सकती है कि वह पाप संगीत पर थिरकें, मादक पदार्थों के सेवन को फैशन समझें और फ्री-सेक्स की बात करें।

विध्वंसात्मक कार्यों में संलग्नता के अतिरिक्त आज कौन-सा ऐसा व्यसन हैं जो युवावर्ग में नहीं पाया जाता। 'स्मार्टनेस' के चक्कर में युवकों में भक्ष्याभक्ष्य का कोई विवेक नहीं रह गया है। शराब पीकर जिनविम्वस्थापित रथों को युवकों द्वारा धकियाते भी देखा गया है और उनके आगे नाचते-गाते हुए भी। सदियों पूर्व आध्यात्मिक प्रकाश से स्वयं प्रकाशित व्यक्ति चारित्र के वाहन पर आरूढ़ होकर तर्क की ढोल पर जैनधर्म का डंका पीटते थे और चतुर्दिक् विजय पताका फहराते थे। लेकिन आज न आध्यात्मिक प्रकाश है, न चारित्र का वाहन ही। ज्ञानश्रद्धान से रहित व्यक्ति कुतर्क की ढोल पर जितना जैनधर्म का डंका आज पीटता है उतना ही युवावर्ग वहरा होता जाता है। चारित्र के वल पर आध्यात्मिकता का जुगनूवत् प्रकाश फैलाने वाले ये चारित्रधारी भौतिकवाद रूपी मर्करी लाईट के चकाचौंधी प्रकाश में दिखलाई ही कहाँ देते हैं? यदि दिखाई भी देते हैं तो नंगे-भिखारी के रूप में। ऐसी स्थिति में युवावर्ग आत्मनिष्ठ तो दूर की बात है; कर्तव्यनिष्ठ भी नहीं हो पाता। जब उसे हिंसा में पुण्यवन्ध और स्त्री-सेवन में निर्दोषता बतलाई जाती है, तब युवावर्ग को चारित्र भ्रष्ट होने से कौन रोक सकता है? युवावर्ग को नियतिवाद का कालकूट पिलाकर पुरुषार्थहीन व अकर्मण्य बना दिया गया है।

युवावर्ग को आलोचना का पात्र बनाने और इस दयनीय स्थिति में पहुँचाने में हमारे बुजुर्गों का कितना हाथ है? और युवकों में कर्तव्य-परायणता, चारित्रिक दृढ़ता एवं दिशा वोध कराने में बुजुर्गों का दायित्व कितना है? अब यह देखना है। यह वास्तविकता है कि बुजुर्ग अपने परिवार में जैसा व्यवहार करता है वह वैसा ही वच्चों के मानस-पटल पर जम जाता है जो युवावस्था में उभर आता है। तव युवावर्ग वही करता हैं जो वह बचपन में सीखता व ग्रहण करता है। फिर भी बुजुर्ग, युवावर्ग को दोषी बतलायें, उनकी आलोचना करें तो यह अपने उत्तरदायित्व से वचना माना जायेगा। यदि बुजुर्ग अपने घर-परिवार के साथ-साथ अपने कार्यक्षेत्रों में, कार्यालयों में सत्य और न्याय पर आरूढ़ रहें, सदाचारी रहें, आत्मनिष्ठता के साथ घर-परिवार में आध्यात्मिकता का प्रकाश फैलावें, धार्मिक कार्यों में भाग लेवें, तथा सामाजिक-राष्ट्रीय कर्तव्यों से विचलित न होवें तो इस युवावर्ग को भी आत्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ बनना असम्भव नहीं है। क्योंकि बच्चा और युवावर्ग अपने घर-परिवार से बहुत कुछ सीखता है और संगति से प्रभावित भी होता है। 'भविष्य में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार की बागडोर युवावर्ग ही संभालेगा।'—सम्राट चन्द्रगुप्त की यह भविष्यवाणी तभी सफल सिद्ध होगी जब बुजुर्ग उल्लिखित अपने दायित्वों को भली-भांति निवाहेंगे।

अत: बुजुर्गों का यह परम कर्तव्य है कि वे युवावर्ग में उत्तरदायित्व की भावना भरें, निरन्तर डांटने-फटकारने की अपेक्षा उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय लेने हेतु प्रोत्साहित करें, वैज्ञानिक तथा तार्किक दृष्टि से धार्मिक सिद्धान्तों की उपयोगिता की व्याख्या करें, कर्तव्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्ग पर चलकर स्वयं एक उदाहारण वनें तथा सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में दृढ़प्रतिज्ञ होकर युवावर्ग के प्रेरक वनें। धार्मिक व सामाजिक कार्यों के संचालन व संयोजन का भार युवावग पर डालें और स्वयं मार्गदर्शन करें।

प्राय: ऐसा भी देखा गया है कि अनेक स्थानों पर बुजुर्गो की अपेक्षा युवावर्ग अधिक सफल सिद्ध हुआ है। अत: यह आवश्यक है कि युवावर्ग को अधिकाधिक जिम्मेदारियाँ सौंपी जाए और उनमें आत्मविश्वास जगाया जाय। धार्मिक व सामाजिक गोष्ठियों का युवकों के लिए आयोजन करें। जिसमें वे सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ व्यवहारिक ज्ञान भी प्राप्त कर सकें। हेयोपादेय की समझ उन्हें नि:सन्देह आत्महित की ओर प्रेरित करेगी।

इस तरह बुजुर्ग समुदाय युवावर्ग को आत्मनिष्ठ वनाने के साथ-साथ कर्तव्यनिष्ठ वनाने में अपनी भूमिका निभा सकता है। बुजुर्गों द्वारा प्रकाशित सन्मार्ग पर चलकर युवावर्ग राष्ट्र के सच्चे नागरिक और समाज के जिम्मेदार अग्रणी हो सकते हैं। इसलिए हे बुजुर्गो! आप चाहें तो सम्राट चन्द्रगुप्त के स्वप्न के युवकों को सम्पूर्ण श्रद्धा-विवेक के साथ चारित्र में ढालकर भावी सुदृढ़ स्तम्भ निर्मित कर सकते हैं, जिनके ऊपर धर्म व समाज एवं राष्ट्र का भार नि:संकोच रखा जा सकता है। —इत्यलम्

प्राध्यापक—अर्थशास्त्र विभाग
दिगम्बर जैन कालेज
वड़ौत (उ० प्र०)

सुभाषितम्

सुख - दुख रेखा कर्म की, टाल सके न कोय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान बाहुबली : एक जीवन चेतना

● डा० निजाम उद्दीन

डा० निजामउद्दीन इस्लामिया कालेज, श्रीनगर में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। आप अपने विषय के निष्णात विद्वान् तो हैं ही, जैनधर्म तथा जैनदर्शन में भी आप गहरी रुचि रखते हैं। इन विषयों पर आपके लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। आपमें सुलेखक के सभी गुण विद्यमान हैं।

अभी-अभी श्रवण बेलगोल (कर्नाटक) में चामुण्डराय द्वारा एक हजार वर्ष पूर्व स्थापित भ० बाहुबली की विशाल भव्य मूर्ति का सहस्राब्दि महामस्तिकाभिषेक सम्पन्न हुआ है। इसी महोत्सव को ध्यान में रखते हुए आदरणीय डा० सा० ने भ० के अपूर्व त्याग और अनुपम साधना का परिचय देने के लिए यह लघु लेकिन सशक्त लेख लिखा है, जो पठनीय है। —सम्पादक

भगवान आदिनाथ ऋषभदेव ने प्रकृत्यास्मित असभ्य युग को समाप्त कर मानवता को ज्ञान-विज्ञान की अक्षय सम्पदा से नूतन दिशाबोध व नवीन सभ्यता प्रदान की। अयोध्या से हस्तिनापुर तक का प्रदेश उनकी सभ्यता का केन्द्रस्थल था। उन्होंने सामाजिक सुव्यवस्था की ओर नागरिक सभ्यता को सुविकसित किया कर्माश्रय द्वारा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रूप में समाज का विभाजन किया। इक्षु=ईख या गन्ने की कृषि तथा उपयोग उन्होंने सिखलाए तथा बतलाए। अतएव वे इक्ष्वाकु कहलाए और उन्हीं से इक्ष्वाकुवंश प्रारम्भ हुआ।

एक दिन वे सिंहासनस्थ हो सभासदों के साथ नीलांजना का अपूर्व नृत्य देख रहे थे। सभी सभासद नृत्यास्वादन में लीन थे, मग्न थे। तभी देखते-देखते अचानक नीलांजना का वहाँ प्राणान्त हो गया। इस घटना से आदिनाथ को जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान हुआ और वे संसार से विरक्त हो आत्मकल्याण की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने अपने बड़े पुत्र भरत को अयोध्या का और लघु पुत्र बाहुबली को पोदनपुर का राज्य सौंपकर अपने कर्तव्य को पूरा किया। तदनन्तर 'ओम् नमः सिद्धेभ्यः' का उच्चारण कर आत्मकल्याणार्थ दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की और घोर तपश्चरण में प्रवृत्त हो गये।

इधर भरत को 'चक्ररत्न' की प्राप्ति होने पर उन्होंने छह खण्ड पृथ्वी को विजित किया और वे चक्रवर्ती राजा बने। लेकिन पोदनपुर का राज्य अभी भी उनके अधिकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के बाहर था। वहाँ उनके छोटे भाई बाहुबली राज्य कर रहे थे। पूर्ण चक्रवर्तित्व के लिए वे उसे भी अपने अधीन करना चाहते थे। सच है, अधिकार और सत्ता प्राप्त कर मनुष्य दर्पोन्मत्त हो जाता है। भरत भी पूर्ण चक्रवर्ती बनने का लोभ संवरण कर सके। लोभ-लालच पापवृद्धि बढ़ाता है और विवेक क्षीण करता है। कहा भी है—

लोभे य वड्ढिए पुण कज्जाकज्जं परोण चिंतेदि ।
तो अप्पणो वि मरणं अगणंतो साहसं कुणदि ।।
—भ० आ० ८५७

लोभ के बढ़ने पर मनुष्य करणीय-अकरणीय का चिन्तन नहीं करता। वह अपनी मृत्यु की भी परवाह नहीं करता हुआ धन पाने के लिए दुःसाहस कर बैठता है।

अस्तु, भरत भी पूर्णचक्रवर्तित्व हेतु किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। उन्होंने अपनी सत्ता और आधिपत्य बाहुवली पर भी रखना चाहा जिसे बाहुवली ने अस्वीकार कर दिया। बाहुबली को लगा कि पूज्य पिताजी द्वारा दिया गया यह छोटा-सा राज्य भी भरत की आखों में खटकता है।

भरत तो महान् चक्रवर्ती सम्राट् बनना चाहते थे और पोदनपुर के राजा बाहुबली द्वारा अधीनता स्वीकार किए बिना यह सम्भव नहीं था। अतः बाहुबली की अस्वीकारता पाकर भरत ससैन्य आक्रमण के लिए तैयार हो गये। पर मन्त्रियों के सत्परामर्श से सेनाओं में तो युद्ध नहीं हुआ लेकिन दोनों भाइयों में १—जलयुद्ध २—मल्लयुद्ध और ३—दृष्टियुद्ध नामके तीन विलक्षण युद्ध हुए और भरत इन तीनों ही युद्धों में अपने छोटे भाई बाहुबली से पराजित हो गये। फलतः उन्होंने रुष्ट होकर बाहुबली पर चक्ररत्न का प्रहार कर दिया। पर चक्ररत्न सहोदर और परिजन पर नहीं चलता। अतः वह बाहुबली की परिक्रमा कर भरत के हाथ में आकर ठहर गया। बाहुबली को विजय श्री प्राप्त हुई, वे विजयी हुए।

इस विजय ने बाहुबली को वैरागी बना दिया। इससे उनमें अपूर्व परिवर्तन हुआ। उन्होंने सोचा—'जो राज्य भाई-भाई को एक-दूसरे के खून का प्यासा बना दे, वह त्याज्य है, अभिशाप है।' इससे उन्हें तप और त्याग का दिव्य आलोक प्राप्त हुआ। वे त्यागी बने और राज्य-वैभवा आदि भरत को ही सौंपकर संसार-भोगों से विरक्त हो दुर्द्धर तप और अनवरत कठोर आत्मसाधना करने लगे। अपने घोर तप में निश्चल व अडिग रहे। लताएँ पैरों से ऊपर तक चढ़ गईं, सांपों ने आसपास वामियाँ बना लीं, लेकिन वे निश्चल साधनारत रहे। अनवरत कठोर आत्मसाधना और दुर्द्धर तप के फलस्वरूप उन्हें कैवल्यप्राप्ति हुई और वे अनन्त अक्षय सुख और पूर्णशान्ति के धाम मोक्ष को पधारे।

भ० बाहुबली का अपूर्व त्याग, वैराग्य, घोर तप व अनवरत कठोर आत्मसाधना उनकी महानता का प्रतीक है।

एक हजार वर्ष पूर्व चामुण्डराय ने श्रवणबेलगोल (कर्नाटक) में इन्हीं भ० बाहुबली की भव्य विशाल प्रतिमा की स्थापना की थी। एक शिला से निर्मित भ० बाहुबली की यह अनुपम मूर्ति असंख्य लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करती है तथा तप और त्याग की प्रेरणा देती है। यह विश्व के महान् आश्चर्यों में से एक है। चेतना का यह आलोक भ० बाहुबली की इस दिव्य प्रतिमा से सदैव निकलता रहेगा।

—प्राध्यापक-हिन्दी विभाग
इस्लामिया कालेज
श्रीनगर (कश्मीर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांस्कृतिक गरिमा का प्रतीक
बुन्देलखण्ड

● विमलकुमार जैन सोंरया एम. ए., शास्त्री, आ. रत्न आदि

बुन्देलखण्ड गणराज्य भारत का एक एसा भूभाग है जो मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश के लगभग २२ जिले की सीमा में आता है। भारतीय साहित्य, कला, संगीत, वास्तुकला आदि विविध क्षेत्रों में धर्म एवं संस्कृति की जो व्यापकता बुन्देलखण्ड में फलीवती हुई देश के किसी भी भूभाग में इतनी मात्रा में प्रसारित नहीं हुई।

सामान्य रूप से इस क्षेत्र में साहित्य सेवियों में वाल्मीकि, वेदव्यास, गुणभद्र, भवभूति, मित्रमिश्र, जगनिक, तुलसी, केशव, भूपण पदमाकर, विहारी, चंद्रसखी, ईसुरी, रायप्रवीण, सुभद्राकुमारी, सेठ गोविन्दास, मैथिलीशरण गुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा जैसे शतशः साहित्य देवताओं को जन्म देने का गौरव प्राप्त किया है—तो शौर्य नक्षत्रों में रणवांकुरे; आल्हा ऊदल, विराट की पद्मनी, छत्रसाल, हरदौल, अकलंक निकलंक, दुर्गावती रानी लक्ष्मीवाई, चन्द्रशेखर आजाद जैसे सहस्त्रों वीरों को उत्पन्न करने का गौरव लिए है।

सोनागिर, खजुराहो, देवगढ़, चन्देरी; थूवौन, अजयगढ, ग्वालियर पपौरा, नैनागिरि, कुण्डलपुर, पावागिर, मदनपुर द्रोणगिर, चित्रकूट, ओरछा कालिंजर, अमरकंटक, सूर्यमंदिर सीरोन आदि स्थापत्य कला के अद्वितीय कलागढ़ और तीर्थों को अपने अंचल में संजोए बुन्देलखण्ड के शताधिक क्षेत्र आज भी इस भूभाग की गरिमा को युगों युगों के थपेड़े खाकर जीवित रखे हैं।

संगीत सम्राट् तानसेन, मृदंगाचार्य कुदऊ; विश्वजयी गामा चित्रकार कालीचरण जैसे अगणित रससिद्ध कलावंत उपजाकर तथा पन्ना की हीरा खदान; भेडाघाट का संगमरमर तथा विन्ध्य श्रंखलाओं में सुरक्षित सोना-चांदी मैगनीज, तावा, लोहा, अभ्रक आदि खनिज सम्पत्ति के भण्डारों से युक्त आज भी बुन्देलखण्ड भारत की प्रतिष्ठा में अपना स्थान रखे है।

ईसा पूर्व २ सरी शताव्दी से आज तक की सामाजिक धार्मिकनैतिक, आचरणिक; व्यावहारिक आदि विविध आयामों की प्रमाणिक जानकारी के लिए बुन्देखण्ड भारत में गौरव का स्थान प्राप्त किए हैं। यहाँ की शिल्प कला, संस्कृति, शिक्षा, साहस, शौर्य, आध्यात्म का धनी, प्रकृति और खनिज पदार्थों का जीता जगता गढ़ रहा है। यहाँ के जनमानस में सदैव आचरण की गंगा प्रवाहित होती रही है। कला और संस्कृति के अद्वितीय गढ़ यहाँ की गरिमा के प्रतीक बने हैं। यहाँ का कंकर कंकर शंकर की पावन भावना से धन्य है। विश्व में भारत जहाँ अपनी आध्यात्मिक गरिमा और संस्कृति-सभ्यता में सदैव अग्रणी रहा है वहाँ बुन्देलखण्ड भारत के लिए अपनी आध्यात्मिक परम्परा और संस्कृति में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करने में अग्रसर रहा है। आध्यात्म की प्रधानता हमारे देश की परम्परागत निधि रही है तथा भारतीय संस्कृति में आध्यात्म की मंगल ज्योति सदैव प्रकाशवान रही है। भारत का दर्शन-साहित्य-मूर्तियाँ-भाषाऐं-वास्तुकलाऐं-शासन व्यवस्थाऐं और सामाजिक परम्पराऐं सभी से आध्यात्म की आत्मा प्रवाहित है। धार्मिक भावनाओं को शाश्वत बनाऐ रखने के लिए ही विपुल परिमाण में मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण किया गया है। मन्दिरों की रचना और उनमें चित्रित कलाऐं उस युग की सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं की ऐतिहासिक घातीं हैं। हमें प्रमाणिक इतिहास की पुष्टि और संस्कृति का स्वरूप इन्हीं प्रतिमानों से उपलब्ध हुआ है।

बुन्देलखण्ड में स्थपतियों, शिल्पियों, कलाकारों एवं प्रेरकों ने आध्यात्म प्रधान कृतियाँ निर्मित कीं। उनका झुकाव प्रायः कला की अपेक्षा परिणामों की ओर विशेष रहा है। अतः कलागत विलक्षणता इने गिने स्थानों में ही देखने को मिलती है। आदिम युगीन एवं प्रागेतिहासिक काल की संस्कृति का जीता जागता चित्रण यदि भारत में आज भी जीवन्त है तो उसका केन्द्र बुन्देलखण्ड ही है। उस युग के चित्राम व कलाऐं आज भी मन्दिरों एवं गुफाओं में विद्यमान हैं। यहाँ के प्रायः जैन मन्दिर और मूर्तियाँ, गढ़, गुफाऐं, बीजकपट, शिलालेख आदि इस बात के साक्षी हैं, कि भारतीय परम्पराओं में जन जीवन सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक परम्परा कहाँ कब और कितनी फलीभूत एवं पल्लवित हुई है।

ऐतिहासिक दृष्टि से हम आदिम युगीन समय से लेकर वर्तमान काल तक भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत श्रमण संस्कृति का पर्यविक्षण इतिहास क्रम के आधार पर ६ भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) प्रागेतिहासिक काल—जो ईस्वी पूर्व ६०० से भी पहले माना गया है में मन्दिरों के निर्माण होने के प्रमाण साहित्य में उल्लखित हैं। (२) मौर्य और शुंककाल—ईस्वी पूर्व ५०० में मन्दिरों का प्रचुर मात्रा में निर्माण कार्य हुआ इस युग की मुद्राओं पर अंकित मन्दिरों के चिन्ह इस सत्य के साक्षी हैं। विदिशा, बूढ़ी चन्देरी जो बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक स्थल हैं की खुदाई के समय प्राप्त विष्णु मन्दिर, पार्श्वनाथ मंदिर, शान्तिनाथ मन्दिर के अवशेष ई० पूर्व २०० वर्ष के हैं। मौर्य कालीन ब्राह्मी का भी प्रयोग यहाँ के तीर्थों शिलापट्टों में देखने को मिलता है। (३) शकसातवाहन काल—ईसा पूर्व २०० वर्ष तक इस काल की परिगणनां की गई है इस युग में जैन मन्दिरों का विपुल मात्रा में निर्माण होना पाया जाता है। इस युग के मन्दिरों के अवशेष अनेक प्राचीन स्थलों जैसे सीरोन-मदनपुर-मड़खेरा आदि पर आज भी पाऐ जाते हैं। (४) कुषाण-काल—ईसा की पहली सदी से ३ सदी तक का काल है। इस युग में मन्दिरों के साथ ही राजाओं की प्रतिमाओं का भी निर्माण हुआ है। जिन्हें देवकुल की संज्ञा से अभिभूत किया जाता था। इस काल के मन्दिर भारत में मथुरा, अहिक्षेत्र, कम्पलजी, हस्तिनापुर में तथा बुन्देलखण्ड में तो इस युग की प्रतिमाऐं अनेकों जगह पाई जातीं हैं। (५) गुप्तकाल—ईसा की चौथी से छठवीं शताब्दी तक का समय है। इस काल में मंदिरों की कला कृति सुन्दरता के रूप में प्रतिष्ठित हुई। बुन्देलखण्ड के तीर्थों में देवगढ़-चन्देरी—मदनपुर—सीरोन—मड़खेरा आदि स्थानों में, इस युग के मंदिर पाए गए हैं। द्वार स्तम्भों की सजावट, तोरण द्वार पर देव मूर्तियों लघु शिखर एवं सामान्य गर्भ गृह युक्त मंदिर इस युग की शैली के प्रतिमान रहे हैं। विशिष्ट प्रकार की मूर्तियों का निर्माण इस युग की विशेषता है जो प्रायः बुन्देल खण्ड के अधिकांश प्राचीन तीर्थ स्थलों में मिलती है। (६) गुप्तोत्तर काल—ईसा की ७ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक के समय को इस श्रेणी में समाहार करते हैं। वर्द्धन काल; गुर्जर प्रतिहार काल—चन्देली शासन काल—मुगल मराठा काल एवं अंग्रेज़ी शासन तक का समय गुप्तोत्तर काल में परिगणित किया गया है। इस युग में मंदिरों के शिखर की साज सज्जा पर विशेष महत्व किया गया है। इस काल में ४ प्रकार की शैली मुख्य रूप से प्रचलित हुईं। (अ) गुर्जर प्रतिहार शैली—इस शैली के अन्तर्गत निर्मित्त मंदिरों के भीतर गर्भ गृह और सामने मण्डप बनाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता था। कला और स्थापत्य की पर्याप्त संवृद्धि इस समय हुई। प्रायः अधिकांश जैन तीर्थ इसके साक्षीभूत प्रमाण हैं। (ब) कलचुरी शैली—इसमें मंदिरों के बाहरी भागों की साज सज्जा विशेष रूप से पाई जाती है। इस शैली के मंदिरों की वाह्य भित्ति कला अपने आप में अद्वितीय है। खजुराहो इस कला का तो गढ़ ही है। (स) चन्देल शैली—इसमें मंदिरों की शिखर शैली उत्कृष्ट रूप में प्राप्त हुई है। रतिचित्रों का विकास भी इस शैली के मंदिरों में हुआ है जो मंदिर की वाह्य भित्तियों पर गढ़े गए हैं। इस शैली के मंदिर चन्देरी—खुजराहो—देवगढ़ आदि में पर्याप्त मात्रा में स्थित हैं। (६) कच्छप घात शैली—इस शैली के मंदिर कला के अद्वितीय नमूने हैं। मंदिर के प्रत्येक भाग पर कला की छटा दिखाई पड़ती थी।

काल विभाजन के इस क्रम में भारतीय संस्कृति के साथ श्रमण संस्कृति और कला का निरन्तर विकास हुआ है। बुन्देल खण्ड के जैन तीर्थों की वास्तुकला का अध्ययन की दृष्टि से कोई ठोस प्रयत्न नहीं हुआ। प्रागेतिहासिक काल से लेकर गुप्तोत्तर काल तक यहाँ की कला में जैन संस्कृति की अविच्छन्न धारा प्रवाहित होती रही है। भारत में मूर्ति-कला की गरिमा बुन्देलखण्ड में देखने को मिलती है। मूर्ति कला के सर्वोत्कृष्ट गढ़ और मूर्ति निर्माण के केन्द्र स्थल बुन्देलखण्ड में ही विद्यमान हैं। यहाँ की मूर्तिकला एक सी नहीं है भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्ति - कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। अनेक प्रकार की आसनों सहित स्वतंत्र तथा विशाल काय, शिलापट्टों पर उकरित मूर्तियाँ बहुधा इस क्षेत्र में उपलब्ध हैं। कुछ आध्यात्मिक और कुछ मूर्तियाँ लौकिक दृष्टि से निर्मित हुई है लौकिक दृष्टि से निर्मित मूर्तियाँ कला के बेजोड़ नमूने हैं। उनसे सामाजिक रहन-सहन आचार विचार तथा प्रवृत्तियों एवं भावनाओं का तलस्पर्शी परिज्ञान होता है। भारत की मूर्ति कला में बुन्देलखण्ड का योगदान सर्वोत्कृष्ट है। विभिन्न देवी देवताओं की तुलना में जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। जैन मूर्तियों के चतुर्विंशति पट्ट, मूर्ति अंकित स्तम्भ एवं सहस्रकूट शिला पट्ट प्रायः इस क्षेत्र में अनेक जगह हैं। देव देवियों, विद्या धरों; साधू साध्वियों, श्रावक श्राविकाओं, युग्मों, प्रतीकों, पशु-पक्षियों के साथ प्रकृति चित्रण आसन और मुद्राएँ इस क्षेत्र में कला के अद्वितीय नमूने हैं। इन आयामों से हम कला के विभिन्न विकास क्रमों का अध्ययन प्राप्त कर सकते हैं। सामाजिक और धार्मिक चेतना के पुञ्ज रूप इन गढ़ों ने जैन संस्कृति की समुन्नति में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। बुन्देलखण्ड के ऐसे शताधिक पुरातन क्षेत्र हैं जहाँ वस्तुकला के वर्णित आयामों का स्वरूप दर्शन हमें मिलता है। बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक पुरातन ऐसे मुख्य मुख्य स्थलों क्षेत्रों में—देवगढ़, बूढ़ीचन्देरी, खजुराहा, विदिशा, बरूआसागर, मड़खेरा, कन्नौज, नोहटा, विनैका (सागर) पाली, त्रिपुरी, अमरकंटक, सोहागपुर, वानपुर, पचराई, कुण्डलपुर, वालावेहट, वजरंगढ़, पवा, ढिठला, रखेतरा, आमनचार, गुरीलकागिरि, चर्णगिरि; नारियल कुण्ड, थूवौन, अहार, पपौरा, चन्देरी, झाँसी संग्रहालय, पावागिरि, प्यावल, मदनपुर, द्रोणगिर, रेसंदीगिर (नैनागिर) निसई उर्दमऊ, कोनीजी, नवागढ़, पाटनगंज, करगुंवा, सोनागिर, क्षेत्रपाल (जतारा) क्षेत्रपाल (महरौनी) क्षेत्रपाल (ललितपुर) भोंएरा (बंधा) व्योंएरा (ललितपुर) ग्यारसपुर, दूधई, चांदपुर; सीरोन (ललितपुर) सीरोन (मडवारा), गिरार, वडागांव (धसान) सेरोन, कादी तलाई, विलहरी, पठारी, भेडाघाट, त्रिपुरी, ग्वालियर किला, शिवपुरी, आदि हैं जिनसे हमें जैन संस्कृति और कला का व्यापक रूप से अतुल भण्डार देखने को मिला है।

आशा है पुरातत्व के परिपेक्ष्य में भारतीय संस्कृति के अध्ययन की पर्याप्त प्रमाणिक निधि स्थलों पर प्राप्त करने के लिए पुरातत्व अन्वेषक अपने पुण्य प्रयास साकार करेंगे।

मंत्री—श्री बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषद
मड़ावरा (ललितपुर) उ० प्र०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युगादि पुरुष श्री नाभिनंदन की गौरव-गाथा

पं० दयाचन्द्र जी, साहित्याचार्य, सि० शास्त्री

आदरणीय पण्डितजी सा० इसी संस्कृत विद्यालय के भूतपूर्व अध्यापक हैं। आप हिन्दी, संस्कृत प्राकृत तथा अंग्रेजी के अच्छे जानकार हैं। आप कुशल अध्यापक, साहित्योपासक, सशक्त व्यायाम शिक्षक, महान् समाजसेवी और सिद्धहस्त लेखक हैं। जैनधर्म एवं दर्शन के मर्मज्ञ मनीषी विद्वान् हैं। अनेक निवन्ध और कुछ मौलिक कृतियों के आप लेखक हैं। धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में सोत्साह सम्मिलित होते हैं। स्वभावतः गम्भीर चिन्तक और विचारक हैं।

महाराज नाभिराय के पुत्र होने से (नाभि + नन्दन = पुत्र) श्री ऋषभदेव को ही उक्त शीर्षक में नाभिनन्दन कहा गया है। इस विद्यालय का नाम भी उन्हीं के नाम से है। इसी को ध्यान में रखकर ही पं० जी सा ने यह निवन्ध लिखा है—ऐसा प्रतीत होता है। इस लेख में पं० जी सा० ने भ० ऋषभदेव का वड़ा प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है। उनका श्रम सराहनीय है।

—सम्पादक

भरतक्षेत्र की यह आर्यभूमि २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलदेव-इन ६३ महापुरुषों की जननी है। उत्सर्पिणी काल (उन्नति युग) के तीसरे युग में तया अवसर्पिणीकाल (अवनतियुग) के चतुर्थयुग में समय-समय पर आवश्यकतानुकूल उक्त ६३ शलाकापुरुषों का जन्म इस आर्यक्षेत्र में परम्परा से सिद्ध है। वि० सं० ७३४, ईशाव्द ६७७ में दक्षिण भारत के प्रमुख धर्मोपदेष्टा श्री रविषेण आचार्य ने स्वरचित पद्मपुराण के पंचम पर्व में स्पष्ट घोषणा की है—

आचाराणां विघातेन, कुदृष्टीनां च सम्पदा।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तं, उच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः॥

—जब समीचीन आचरण के विनाश से तथा मिथ्यामार्ग की उन्नति से स्वपरहितकारी धर्म का नाश हो जाता है, तव विश्व का कल्याण करने के लिए इस आर्यभूमि पर २४ तीर्थंकर जैसे महापुरुषों का जन्म होता है। ६३ जलाका पुरुषों में २४ तीर्थंकरों का महत्वपूर्ण स्थान है; क्योंकि ये विश्व में धर्मतीर्थ, आगमतीर्थ, विद्यातीर्थ, पुण्यकर्मतीर्थ, आत्मतीर्थ, लोकतीर्थ और मोक्ष-तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। इनके कल्याणक स्थान ही तीर्थक्षेत्र प्रसिद्ध हो जाते हैं। महाकवि धनंजय ने तीर्थंकरों को अनेक नामों से घोषित किया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वज्ञो वीतरागोऽर्हन् केवली धर्मचक्रभृत् ।
तीर्थंकरस्तीर्थकरस्तीर्थंकृद् दिव्यवाग्पतिः ।।

ये महापुरुष तीर्थंकर नामकर्म के उदय से पुण्यातिशय को प्राप्त करते हुए आत्मसाधना द्वारा चार घातिकर्मों का क्षय करके सम्पूर्ण ज्ञान, दर्शन, शान्तिसुख और आत्म-बल को पाकर अर्हन्तपद पाते हैं, समोशरण में दिव्यध्वनि द्वारा मुक्तिमार्ग दर्शाते है, जिनके पंचकल्याणक देवों तथा मानवों द्वारा विशेप उत्सव के साथ मनाये जाते हैं। इसी से इन्हें तीर्थंकर कहते हैं। ये श्री ऋषभदेव से श्री महावीर पर्यन्त २४ हैं। ये अवसर्पिणी के चतुर्थकाल (कृतयुग) में हुए हैं।

इन २४ तीर्थंकरों की मान्यता, सत्ता और प्राचीनता वेद, पुराण, इतिहास, शिलालेख, पुरातत्व प्रशस्तियाँ, मूर्तियाँ, मन्दिरों तथा तीर्थक्षेत्रों से सिद्ध होती है। यहाँ कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं जिनसे इनकी प्राचीनता प्रमाणित होती है—

अन्दो मुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नयातमश्विनौं हुवे धिय इन्द्रियेण तमिन्द्रियं दत्तभोजः ।
—(अथर्ववेद १९.४२.४)

पापों से मुक्त, पूज्य देवताओं में वृषभ व सर्वश्रेष्ठ, आत्म-साधकों में सर्वप्रथम तथा भवसागर के पोत को मैं हृदय से आह्वान करता हूँ। हे सहचर बन्धुओ ! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उस आत्मबल और तेज को धारण करो।

अग्नेरय सुपथा राये अस्मान्,
विश्वानि देव वपुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्यज्जु हुरायमेनो,
भूयिष्ठां ते नमु उक्तिं विधेम ।।
—(ऋग्वेद १-१८९-१)

हे अग्ने ! मोक्ष के अग्रनेता ! आप हमें मोक्ष की ओर सम्यक् मार्ग से ले चलो। हे देव आप ही समस्त तत्वों के ज्ञाता हैं। आप कुटिल गति वाले पापों को हमसे दूर भगा दो। हम बार-बार 'नमोऽस्तु, नमोऽस्तु' उच्चारण द्वारा आपकी वन्दना करते हैं।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णतमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था दिद्यतेऽयनाय ॥
—(यजुर्वेद ३१-१८)

मैं इस आदिपुरुष को अन्धकार से परे रहने वाला, सूर्य के सम्मान कान्तिवाला, सबसे महान् सूर्य जानता हूँ। उसको इस प्रकार जानकर ही मृत्यु को जीता जा सकता है। मोक्षसिद्ध के लिए इसके द्वारा प्रदर्शित मार्ग के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।
—(अहिंसा वाणी ऋषभवि. पृष्ठ-६)

ऋग्वेद में ऋषभदेव का विशद वर्णनः—

'असूतपूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः दिवो न पातो विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे'— (ऋग्वेद ५-२-२८)

मेघवर्षा की तरह ऋषभदेव पूर्णप्रणेता थे। उनका उपदेश ऋषिगण को प्राप्त हुआ था। वे कर्मनाशक, आत्मगुणों के राजा, पूर्वज्ञान के भण्डार और उन्नत-स्वरूप थे।
—(अहिंसावाणी व. २, अंक-१० अक्टू. ५९)

'अयमवतारो रजसोपप्लुत कैवल्योपशिक्षणार्थः'
— (श्री भागवत पंचस्कन्ध)

श्री ऋषभदेव का अवतार रजोगुण से व्याप्त मानवों को मोक्षमार्ग की शिक्षा देने के लिए हुआ था। यह आठवाँ अवतार था।

तीर्थंकर ऋषभदेव के ज्येष्ठपुत्र, प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत सर्वप्रथम षट्खण्ड भूमण्डल के स्वामी हुए। उसी समय से इस क्षेत्र का नाम भरतक्षेत्र अथवा भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ। इसकी पुष्टि जैन शास्त्रों से तो होती ही है, पर वैदिक पुराणों से भी होती है। जैसेः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्नीध्रसूनोः नाभेस्तु ऋषभोऽभूत सुतो द्विजः ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्र शताद् वरः ।। ३९ ।।
हिमाह्नं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ।
तस्मात् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।। ४० ।।
—(मार्कण्डेय पुराण, अ० ५०)

नाभिराज के सुपुत्र ऋषभदेव हुए और ऋषभदेव के पुत्र भरत। ये अपने १०० भाईयों में सबसे जेष्ठ थे। ऋषभदेव ये हिमालय के दक्षिण का क्षेत्र भरत को दिया। इसी से उस महात्मा के नाम से इसका नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

नाभेः पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतोऽभवत् ।
तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते ।।५७।।
—(विष्णु पुराण, द्वितीयांश अ० १)

इन उल्लेखों से जहाँ भरत के नाम से इस क्षेत्र का नाम भारतवर्ष सिद्ध होता है वहाँ भरत के पिता होने के कारण तीर्थंकर ऋषभदेव की ऐतिहासिकता और प्राचीनता भी सिद्ध होती है।
—(अहिंसावाणी ऋ० वि० पृ० २९)

बौद्ध-साहित्य में तीर्थंकर ऋषभदेवः—

जैनधर्म के संस्थापकरूप में भ० ऋषभदेव का उल्लेख बौद्धों ने भी किया है। इनके 'धम्मपद' में ऋषभ और महावीर का उल्लेख है। 'आर्यमंजु श्री मूलकल्प' में भारत के प्राचीनतम सम्राटों में नाभिपुत्र ऋषभ और ऋषभपुत्र भरत को गिना है। उसमें लिखा है कि ऋषभदेव ने हिमालय से सिद्धि प्राप्त की थी और वे जैनधर्म के आप्तदेव थे 'न्यायविन्दु' (अ० ३) और 'सत्-शास्त्र' आदि ग्रन्थ भी भ० ऋषभदेव को जैनधर्म का आप्तपुरुष प्रकट करते हैं। इसी से प्रो० जेकोबी को भी इस जैन मान्यता में ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार करना पड़ा।

प्रजापतेः सुतो नाभिः तस्यापि आगमुच्यति ।
नाभिनो ऋषभपुत्रो वै सिद्धकर्म दृढव्रतः ।।३००।।
तस्यापि मणिचरो यक्षः सिद्धो हैमवते गिरौ ।
ऋषभस्य भरतः पुत्रः सोऽपि मज्जतात तदाजपेत् ।।३९१।।
—(आर्यमंजुश्री मूलकल्प)

इत्थं प्रभाव ऋषभोऽवतारः शंकरस्य मे ।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितः स्तवम् ।।-(शिवपु.४-४७)

इस प्रकार ऋषभावतार होगा, जो मेरे शंकर (शिव) हैं। वह मानवों के दीनवन्धुरूप में ९ वें अवतार होंगे। उनका स्तवन करो।

चीनीबौद्ध-साहित्य में श्री ऋषभदेवः—

बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों के चीनी भाष्य में रूपान्तरित संस्करणों में यत्र-तत्र ऋषभदेव विषयक उल्लेख मिलते हैं। ऋषभदेव के व्यक्तित्व से जापानी भी अपरिचित नहीं हैं। जापानियों को उनका परिचय चीनी साहित्य से हुआ। जापानी इसी से उन्हें 'रोक शव' (Rok-shabe) नाम से पुकारते हैं।

आर्यदेव द्वारा रचित 'षट्-शास्त्र' का चीनी रूपान्तर मिलता है। इसके प्रथमाध्याय में निम्नांकित उल्लेख है—

कपिल उलूक (कणाद) ऋषभ आदि ऋषिगण भगवत कहलाते हैं। ऋषभ के शिष्य निर्ग्रन्थों के धर्मग्रन्थों का पाठ करते हैं। तपस्या करो, केशलुंचन आदि क्रियाएँ करो, जो पुण्यमय हैं—इत्यादि।'
—(तैशो त्रिपिटक भा. ३३ पृ. १६८)

चीनी में इस उद्धरण पर विवेचना करते हुए त्रिशास्त्र-सम्प्रदाय के संस्थापक श्री चित्संग (ईशाब्द ५४९-६३३) ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया था—श्री ऋषभ एक तपस्वी ऋषि हैं। उनका उपदेश है कि हमारे शरीर को सुख और दुःख अनुभव करने होते हैं। हमारा सुख-दुख, जो पूर्वसंचित कर्मों का फल है, कदाचित इस जीवन में तपस्या द्वारा समाप्त हो जाता है तो सच्चा सुख तुरन्त प्रकट होता है। उनके धर्मग्रन्थ 'निर्ग्रन्थ' (सूत्र) नाम से प्रसिद्ध हैं और उनमें हजारों कारिकाएँ हैं।'
—(प्रो० हाजिये नाकामुरा, पी. एच- डी. टोक्यो)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरातत्व से ऋषभदेव की सत्ता और महत्त—

मोहन जोदड़ो और हड़प्पा का पुरातत्व भारतीय इतिहास के लिए अमूल्य निधि है। यह अति प्राचीन है जो इतिहास से भी पूर्व पाषाण युग का स्मरण कराती है। यहाँ से प्राप्त हुई कुछ मूर्तियों और मुद्राओं का सम्बन्ध ऋषभदेव से स्थापित होता है। योग-ध्यानमयी ऋषभदेव की मूर्तियों पर बैल का चिह्न है। डा० प्राणनाथ ने एक मुद्रा पर 'जिनेश्वर' शब्द पढ़ा है। हड़प्पा वाली नग्न मूर्ति का पूरा सादृश्य जिनमूर्ति से है। स्व० डा० काशी प्रसाद जी जायसवाल और डा० ए० बनर्जी शास्त्री ने इन मूर्तियों का जिनमूर्ति ही माना है, पहचाना है।

—(अहिंसावाणी ऋ० वि० पृ० ५४)

सभी देशों-विदेशों में तीर्थं ऋषभ की मान्यता थी। ऋषभ की लगभग १० हजार वर्ष प्राचीन मूर्तियाँ यूनान तथा मध्य एशिया में प्राप्त ताम्रपत्र में बेबीलोन के सम्राट श्री नेबुच्दानर द्वारा गिरनार पर भ० नेमिनाथ की वंदना का उल्लेख है।

मथुरा के बौद्धस्तूप से भ० पार्श्वनाथ की प्रतिमा का बोध होता है। कंकाली टीला से जैनमूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उदयगिरि-खण्डगिरि से प्राचीन तीर्थंकरों की मूर्तियां तथा शिलालेख प्राप्त हुए हैं। यहीं पर धर्मवीर सम्राट खारवेल ने गुफा-मन्दिर-आश्रम बनवाये। इस पर्वत पर खारवेल का शिलालेख आज भी है।

—(अहिंसावाणी वर्ष २, अङ्क १०, अक्टू. ५९)

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व० सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन् ने Indian Philosophy (Vol. I. P. 257) में लिखा है—'इस बात के प्रमाण पाये जाते हैं कि ईशापूर्व की शताब्दियों में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की पूजा सर्वत्र होती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जैनधर्म वर्धमान और पार्श्वनाथ से भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि—इन तीर्थंकरों के नामों का निर्देश है। 'भागवतपुराण' भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे।'

ऋषभदेव की सत्ता और महत्ता के अन्य प्रमाण—

श्री ऋषभदेव अयोध्यापति नाभिराज तथा साम्राज्ञी मरुदेवी के पुत्र थे। 'कल्पसूत्र' के अनुसार—उन्होंने अपने राज्य में जनता की भलाई के लिए ७२ कलाएँ, जिनमें ब्राह्मीलिपिकला प्रथम है, गणित विशेष महत्त्वशाली है और शकुनों का ज्ञान (Omens) अन्तिम कला है, बतलाईं। इसके अतिरिक्त उन्होंने नारियों की ६४ कलाएँ, १०० उपकलाएँ और मनुष्यों के तीन व्यवसाय सिखाए। 'जेकोबी' ने इसी उल्लेख को इस प्रकार स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है—'कलाएँ—कुम्हार, लोहार, चित्रकार, जुलाहे और नाई की कलाओं में ५ प्रकार से विभाजित की गई हैं। फिर इनमें से प्रत्येक के २० उपविभाग किये, जो आविष्कार हैं। इनका पढ़ाना आवश्यक हुआ। साथ ही व्यवसाय कृषि एवं व्यापार अपने आप ही सर्वत्र फैलने लगे।'

—(डा० एच० डी० सांकलिया)

जैनपुराणों की मान्यता के कुछ प्रमाण—

त्वं ब्रह्मा परमज्योतिस्त्वं प्रभूष्णुरजोऽरजः।
त्वमादिदेवो देवानाँ, अधिदेवो महेश्वरः ॥३०

—आ० जिनेसन

स विश्वचक्षु र्वृषभोऽर्चितःसतां,
समग्र विद्यात्मवपुर्निरंञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो,
जिनोऽजितक्षुल्लकवादिशासनः।

—भ० ऋषभदेव विश्वचक्षु, श्रेष्ठ मानवों द्वारा पूज्य, सम्पूर्ण विद्याओं के अधिपति; मोहादि भावकर्मों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहित, नाभिराज के सुपुत्र, कर्मशत्रुओं के विजेता, अजेय वीतराग शासन के प्रणेता हैं। वे हम सब के चित्त को पवित्र करें।

—(आ० समन्तभद्र)

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेणजेण णिद्दिट्ठं।
देविन्दविन्दवन्दं वन्दे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

—(सि० दे० नेमिचन्द्राचार्य)

श्री ऋषभदेव की जन्मभूमि अयोध्या—

जैन संस्कृति के अनुसार अयोध्या नगरी एक अनादि-तीर्थक्षेत्र हैं। तीनों काल के २४ तीर्थंकरों की जन्मभूमि यही है। प्रलय के बाद देवों द्वारा सर्वप्रथम इसी नगरी का निर्माण होता है। चौदह मनु महात्माओं में से ७ मनुओं का यहाँ जन्म हुआ है। श्री ऋषभदेव की जन्म-भूमि और भरत चक्रवर्ती की राजधानी यही थी। इसीसे इस नगरी का नाम 'अयोध्या' सार्थक हो गया है। 'न योध्यो इति अयोध्या' अर्थात् जो नगरी किसी शत्रु के द्वारा युद्ध में जीती नही जा सकती, वह अजेय है। दूसरा अर्थ है कि युद्ध करने योग्य मानव इस नगरी में नहीं रहते हैं। स्पष्ट अर्थ यह है कि परस्पर द्रोही हिंसक दुष्ट मानव इस नगरी में नहीं रहते, किन्तु अहिंसक दयालु मैत्रीभाव से भरे मानव इस नगरी में रहते हैं। यह विश्व की समस्त नगरियों में प्राचीन तथा श्रेष्ठ है। इस नगरी की प्राचीनता से श्री ऋषभदेव की प्राचीनता सिद्ध होती है।

इक्ष्वाकुवंश के प्रवर्तक श्री ऋषभनाथ—

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीन काल भोगयुग से सम्पन्न थे जिनमें कल्पवृक्षों से भोग-सामग्री प्राप्त होती थी। इस युग का जब धीरे-धीरे ह्रास होने लगा तो कल्पवृक्षों की भी समाप्ति होने लगी और जनता भूख-प्यास से पीड़ित होने लगी। 'त्राहि; त्राहि अस्मान्' की ध्वनि से पुकार करती हुई जनता श्री ऋषभदेव के पास पहुँची। उन्होंने प्रजा की दुःखभरी आवाज सुनकर प्रजा को सम्बोधित करके कहा - 'ये इक्षुदण्ड हैं। इनका रस चूसने से आपकी भूख-प्यास शान्त हो जायेगी।' प्रजा ने ऐसा ही किया। प्रजा को सर्वप्रथम इक्षु का उपयोग करना सिखलाया। इसीसे इनके वंश का नाम 'इक्ष्वाकु' घोषित हो गया। व्याकरण में—'इक्षु इति शब्दं अकतीति इक्ष्वाकुः' अथवा 'इक्षुं आकरोति इति इक्ष्वाकुः' सिद्धि होती है। अर्थात् भूखी-प्यासी प्रजा के प्रति 'इक्षु'—ऐसा शब्द कहने से ऋषभदेव 'इक्ष्वाकु' कहलाए और उनका वंश भी 'इक्ष्वाकु' कहलाया। सूर्य-वंश, सोमवंश आदि में इक्ष्वाकुवंश सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

प्रयागतीर्थ का शुभोदय—

बहुत समय तक शासन करने के बाद इन्द्र ने ऋषभदेव के राजदरबार में नीलांजना का नृत्य उपस्थित किया। नृत्य करते हुए नीलांजना की आयु क्षीण होने पर ऋषभदेव को वैराग्यभाव उदित हुआ और उन्होंने पुरिमताल के निकट सिद्धार्थवन में जाकर दैगम्बरी दीक्षा धारण की। उस समय देवों और मानवों ने सोत्साह पूजन, विधान हवन करते हुए दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाया। उस समय से वह स्थान 'प्रयागतीर्थ' के नाम से भारत में प्रसिद्ध हुआ। व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'प्रकृष्टः यागः यस्मिन् सः इति प्रयागः' अर्थात् ऋषभदेव के दीक्षाकल्याणक के निमित्त से जहाँ विशेष पूजाविधान-हवन हुआ हो, उसे प्रयाग कहते हैं। यह प्रयाग मूलतः जैनतीर्थ है। मुगलशासन काल से यह 'इलाहाबाद' घोषित हुआ। प्रमाण इस प्रकार है—

एवमुक्त्वा प्रजा यत्र प्रजापतिमपूजयन्।
प्रदेशः स प्रयागाख्यो यतः पूजार्थयोगतः॥

—हरिवंशपुराण-सर्ग-९

अक्षयतृतीया पर्व का उदय—

दीक्षोपरान्त श्री ऋषभ मुनीश्वर ने छह मास का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपवास धारण किया। कर्मभूमि के प्रारम्भ में उस समय किसी श्रावक को मुनिराज के लिए, आहारदान की विधि ज्ञात नहीं थी। इसलिए मुनिराज ऋषभदेव को आहारचर्या में अन्तराय हो जाता था। इस तरह बिना आहार के उन्हें छह मास और व्यतीत हो गये। एक समय विहार करते हुए ये हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ के महाराज श्रेयान्स को स्वप्न में पूर्वभव के आहारदान का स्मरण आया। तदनुसार विधिपूर्वक महाराज सोमप्रभ एवं श्रेयान्स ने वैशाख शुक्ल तृतीया को इक्षुरस का आहार दिया। फलतः वहाँ पंच आश्चर्यपूर्ण अतिशय हुए। इसी समय से भारत में 'अक्षय तृतीया पर्व' का उदय हुआ। इसी आहारदान के कारण वह क्षेत्र, वर्ष, अयन, वैशाखमास, शुक्लपक्ष, तृतीया तिथि, इक्षुरस द्रव्य, दाता और पवित्रभाव सब कुछ अमर (अक्षय) हो गए।

प्रयाग के शकट उद्यान में जिस वटवृक्ष के नीचे श्री ऋषभदेव को, केवलज्ञान हुआ, वह वटवृक्ष भी अक्षय हो गया। इसे 'अखयवट' भी कहते हैं।

अक्षयतृतीया पर्व के विषय में प्रमाण—

राधशुक्लतृतीयायां दानमासीत्तदक्षयम्।
पर्वाक्षयतृतीयेति ततोऽद्यापि प्रवर्तते॥

—(चि० ल० श० पर्व १ सर्ग-३)

महाराज श्रेयान्स द्वारा ऋषिराज ऋषभदेव को वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन इक्षुरस का आहार दिया गया। उसी समय से उस अक्षयदान से अक्षयतृतीयापर्व आज भी प्रचलित है।

अक्षयवट के विषय में प्रमाण—

'श्री सम्मेदगिरि-चम्पापुरी-ऊर्जयन्तगिरि-अक्षयवट-आदीश्वरदीक्षा सर्वसिद्धक्षेत्रमृतयात्राणाम्'

—(नन्दिसंघ गुर्वावली)

उक्त प्रमाणों, पुराणों, इतिहास एवं पुरातत्व से सिद्ध होता है कि ऋषभदेव और अन्य तीर्थंकरों की मान्यता, महत्ता व प्राचीनता है।

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः,
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्वः पुनरद्भुतोदयो,
ममत्वतो निर्विविदे विदाम्वरः॥ ▭

प्रवक्ता—श्रीगणेश दिग० जैन सं० महाविद्या०
सागर (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य कुन्दकुन्द का

प्राकृत-वाङ्मय और उसकी देन

डा० दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य पी-एच. डी.

आद० डा० दरबारी लाल जी कोठिया जैन जगत के ख्याति प्राप्त गणमान्य विद्वान् हैं। जैन-वाङ्मय का गम्भीर अध्ययन होने से आप उसके पारंगत विद्वान् हैं। अनेक कृतियों का सम्पादन कर चुके हैं और अभी भी आप जैन-साहित्य के गहन अध्ययन तथा शोध-खोज में संलग्न रहते हैं। का० हि० वि० वाराणसी में आप प्राध्यापक तथा रीडर पदों पर रह चुके हैं। विद्वत्परिषद्, वर्णी ग्रन्थमाला, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, स्याद्वाद महाविद्यालय आदि संस्थाओं में सम्मानीय पदों को सुशोभित कर चुके हैं। साहित्यिक, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में आपने बहुत योगदान किया है।

उनकी लेखनी से प्रसूत प्रस्तुत लेख उनके गहन अध्ययन, सूक्ष्म समालोचक दृष्टि, व्यापक चिन्तन, प्रकाण्ड पाण्डित्य और सहज सरल बोध्यगम्य शैली का सुन्दर प्रतीक है। जैनाचार्यों में आ० कुन्दकुन्द का सम्मान्य शीर्षस्थ स्थान है और प्राकृत भाषा में निबद्ध उनकी रचनाएँ भारतीय साहित्य में अद्वितीय हैं। अध्यात्म एवं तत्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में इनका महत्व सर्वाधिक है। प्रस्तुत लेख इन सबका परिचायक है।

—सम्पादक

भारतीय चिन्तकों और ग्रन्थकारों में आ० कुन्दकुन्द का अग्रपंक्ति में स्थान है। उन्होंने अपने विपुल एवं असाधारण प्राकृत-वाङ्मय के द्वारा भारतीय संस्कृति को अध्यात्म एवं तत्वज्ञान प्रधान आचार-विचार प्रदान किया और उसे अद्भुत ढंग से प्रभावित किया है। भारतीय साहित्य में प्राकृत भाषा के महापंडित और सिद्धान्त-साहित्य के अद्वितीय रचयिता के रूप में इनका नाम अत्यन्त विश्रुत है। मंगलकार्य के प्रारम्भ में 'मंगलं कुंदकुन्दार्यः' कहकर उनका स्मरण किया जाता है। इनके उत्तरवर्ती ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में और शिलालेखों में इनकी असाधारण विद्वत्ता, अनुपम संयम, अद्भुत इन्द्रिय विजय, अनेक ऋद्धि-सिद्धियों आदि विशेषताओं का ससम्मान उल्लेख किया गया है। आठ वर्ष की अवस्था में ही कुन्दकुन्द ने साधु-दीक्षा ले ली थी और ८४ वर्ष की लम्बी आयु तक चिन्तन-मनन और ग्रन्थसृजन किया।

समय—इनके समय के विषय में अनेक मत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। डा० ए० एन० उपाध्ये ने[1] उन सभी मतों पर ऊहा-पोह किया है और ईस्वी सन् का प्रारम्भ उनका अस्तित्व-समय निर्णीत किया है। मूलसंघ की उपलब्ध पट्टावली के अनुसार भी यही समय माना गया है। स्व० पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने[2] अनेक प्रमाणों से विक्रम की पहली शताब्दी समय सिद्ध किया है, जो लगभग उक्त दोनों मतों के अनुकूल है।

ग्रन्थ रचना—कुन्दकुन्द ने अपनी ग्रन्थ-रचना के लिए तीन प्राचीन भारतीय भाषाओं में से प्राकृत को चुना; क्योंकि प्राकृत उस समय जनभाषा के रूप में प्रचलित थी और ये जनसाधारण तक अपने चिन्तन को पहुँचाना चाहते थे। अतएव उनकी सभी कृतियाँ प्राकृत में ही निवद्ध उपलब्ध हैं। प्राकृत-साहित्य के निर्माताओं में इनका मूर्धन्य स्थान है। इन्होंने जितना प्राकृत-वाङ्मय रचा है उतना अन्य मनीषी ने नहीं लिखा। कहा जाता है कि इन्होंने ८४ पाहुड़ों (प्रकरण ग्रन्थों) तथा आ० पुष्पदन्त-भूत-बलीकृत 'षट्खण्डागम' आगम-ग्रन्थ की विशाल टीका की रचना की थी और यह सब ग्रन्थराशि शौरसेनी प्राकृत में रची गयी थी। पर आज वह सब उपलब्ध नहीं है। फिर भी जो प्राप्त है उससे जैनवाङ्मय समृद्ध एवं देदीप्यमान है। यहाँ उनकी उपलब्ध कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

१. प्रवचनसार—इसमें तीन अधिकार हैं—(i) ज्ञानाधिकार (ii) ज्ञेयाधिकार और (iii) चारित्राधिकार। अधिकारों के नाम से ही उनके विषयों की अवगति हो जाती है। इस पर दो व्याख्याएँ हैं—एक आ० अमृतचन्द्र की और दूसरी आ० जयसेन की। अमृतचन्द्र की व्याख्या के अनुसार इसकी गाथा-संख्या २७५ है और जयसेन की व्याख्यानुसार ३१७ है। ये दोनों व्याख्याएँ संस्कृत में निवद्ध हैं और मूल का विशद व्याखान करती हैं।

२. पंचास्तिकाय—इसमें दो श्रुतस्कंध (अधिकार) हैं—(i) षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय और (ii) नव पदार्थ। इन अधिकारों के नाम से ही उनके विषय का ज्ञान हो जाता है। इस पर भी उक्त दोनों आचार्यों की संस्कृत में टीकाएँ हैं।

३. समयसार—इसमें १० अधिकार हैं—१. जीवाजीवाधिकार २. कर्तृकर्माधिकार ३. पुण्यपापाधिकार ४ आस्रवाधिकार ५. संवराधिकार ६. निर्जराधिकार ७. वन्धाधिकार ८. मोक्षाधिकार ९. सर्वं विशुद्धज्ञानाधिकार और १०. स्याद्वादाधिकार। अन्तिम अधिकार व्याख्याकार अमृतचन्द्र द्वारा अभिहित है मूलकार कुन्दकुन्द द्वारा रचित नहीं। अमृतचन्द्र को इस अधिकार को रचने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि समयसार का अध्येता पूर्व अधिकारों में वर्णित निश्चय और व्यवहार नयों की प्रधान-गौण दृष्टि के विषय में भ्रम न हो और दोनों नयों से आत्मतत्व को सम्यक् समझें। इसीसे इस अधिकार में उन्होंने स्याद्वाद के वाच्यभूत अनेकान्त का समर्थन करने के लिए तत्-अतत्, एक-अनेक, नित्य-अनित्य सत्-असत् आदि अनेक (दृष्टियों) से आत्मतत्व का विवेचन किया है। अन्त में कलश-काव्यों में उन्होंने इसी तथ्य को स्पष्टतया व्यक्त किया है। इस समयसार पर भी अमृतचन्द्र और जयसेन की संस्कृत-व्याख्याएँ हैं, जो मूल के हार्द को उत्तम ढंग से स्पष्ट करती हैं।

भारतीय वाङ्मय में आ० कुन्दकुन्द का यह समयसार एक अद्वितीय ग्रन्थरत्न है। इसमें शुद्ध आत्मा का अनुभूत, तर्कयुक्त और आगम-सम्मत व्यवस्थित विवेचन है। उपनिषदों के आत्मतत्व विवेचन से इसका विवेचन विलक्षण, किन्तु बुद्धिगम्य, विश्लेषणात्मक और आकर्षक है। आ० कुन्दकुन्द समयसार के सिवाय अन्य कृतियाँ न भी रचते तो भी वे इस अमर रचना द्वारा भारतीय वाङ्मय में सदैव अमर रहते। 'समय' शब्द के अनेक

१—प्र० सा० प्रस्तावना - पृ० १०—२५ परमश्रुतप्रभावकमण्डल, बम्बई, १९३५ ई०।

२—पुरातनवाक्यसूची, प्रस्तावना—पृ० १२ वी० से० मं० सरसावा, १९५० ई०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थों में से यहाँ उसका 'आत्मा' अर्थ ही गृहीत है। इसी का सार समयसार में निर्दिष्ट है।

४. नियमसार—इसमें १२ अधिकार और १८७ गाथाएँ हैं। इस पर पद्मप्रभमलधारीदेव की संस्कृत-टीका है जो मूल को नो स्पष्ट करती ही है, सम्बन्ध श्लोकों का भी आकार है। इस ग्रन्थ में समयसार की भाँति आत्मतत्व का प्रतिपादन है। मुमुक्षु के लिए यह उतना ही उपयोगी और उपादेय है जितना कि उक्त समयसार।

५. दंसणपाहुड इसमें मोक्षमार्ग के प्रथम सोपान सम्यग्दर्शन का २६ गाथाओं में विशद विवेचन है। **६. चारित्तपाहुड**—इसमें ४४ गाथाओं में मानव जीवन को उज्ज्वल बनाने वाले एवं मोक्षमार्ग के तृतीय सोपान सम्यक् चारित्र का अच्छा निरूपण है। **७. सुत्तपाहुड**—इसमें २७ गाथाओं द्वारा सूत्र (निर्दोष वाणी) का महत्व और तदनुसार प्रवृत्ति पर बल दिया गया है। **८. बोधपाहुड**—इसमें ६२ गाथाएँ हैं, जिनके द्वारा उन ११ महत्व की बातों का निरूपण किया गया है, जिनका बोध मुक्ति के लिए वाञ्छनीय है। **९. भावपाहुड**—इसमें १६३ गाथाओं के द्वारा आत्म-परिणामों की निर्मलता का कथन किया गया है। **१०. मोक्खपाहुड**—१०६ गाथाओं द्वारा इसमें मोक्ष का स्वरूप बतलाते हुए बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा-इन तीन आत्मभेदों का प्रतिपादन है। **११. लिंगपाहुड**—इसमें २२ गाथाएँ हैं। मुक्ति के लिए आवश्यक लिंग (वेश) जो द्रव्य और भाव दो प्रकार का है, विवेचित है। **१२. सीलपाहुड**—४० गाथओं द्वारा विषय तृष्णा आदि अशील को बन्ध एवं दुःख का कारण बतलाते हुए जीवदया, इन्द्रिय-दमन, संयम आदि सत्प्रवृत्तियों को शील बतलाया गया है। और उन्हें ही उपादेय प्रतिपादित किया है।

इन उक्त आठ पाहुडों को 'अष्टपाहुड' कहा जाता है और आरम्भ के ६ पाहुडों पर श्रुतसागरसूरि की संस्कृत व्याख्याएँ हैं।

१३. बारस अणुवेक्खा—इस रचना में वैराग्योत्पादक १२ अनुप्रेक्षाओं (भावनाओं) का ९१ गाथाओं में निरूपण है।

१४. सिद्धभत्ति—इसमें १२ गाथाओं द्वारा सिद्धस्वरूप वर्णित है। **१५. सुदभत्ति**—इसमें ११ गाथाओं द्वारा श्रुत का प्रतिपादन है। **१६. चारित्त-भत्ति**—इसमें १० अनुष्टुप् गाथाओं द्वारा पांच प्रकार के चारित्र का दिग्दर्शन है। **१७. योगिभत्ति**—२३ गाथाओं द्वारा इसमें योगियों की विभिन्न अवस्थाओं का विवेचन है। **१८. आयरियभत्ति**—इसमें १० गाथाओं द्वारा आचार्यगुणों की संस्तुति है। **१९. निव्वाणभत्ति**-इसमें २७ गाथाएँ हैं और निर्वाण का स्वरूप एवं निर्वाणप्राप्त तीर्थंकरों की स्तुति है। **२०. पंचगुरुभत्ति**—यह ७ गाथाओं की लघु कृति है। इसमें पांच परमेष्ठियों की भक्ति निबद्ध है। **२१. थोस्सामित्थुदि**—८ गाथाओं द्वारा इसमें ऋषभादि २४ तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है।

इन रचनाओं के सिवाय कुछ विद्वान् रयणसार और मूलाचार को भी कुन्दकुन्द की रचनाएँ बतलाते हैं, परन्तु इनका साहित्यिक और वैषयिक सूक्ष्म अध्ययन करने पर ये रचनायें उनकी प्रतीत नहीं होतीं। बहुसंख्यक समीक्षक मनीषी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

भारतीय संस्कृति को देन—

कुन्दकुन्द के इस विशाल वाङ्मय की भारतीय संस्कृति को क्या देन है? इस दृष्टि से हमें निम्न उपलब्धियाँ ज्ञात होती हैं—

१—साहित्यिक उद्भावनाएँ

२—दार्शनिक चिंतन

३—तात्विक विवेचन

४—लोककल्याणी दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. साहित्यिक उद्भावनाएँ—

(अ) छन्द वैविध्य—प्राकृत साहित्य गद्यसूत्रों और पद्यसूत्रों-दोनों में उपनिबद्ध हुआ है। कुन्दकुन्द ने अपने समस्त ग्रन्थ पद्यसूत्रों-गाथाओं में ही रचे हैं। प्राकृत का पद्य-साहित्य यद्यपि एकमात्र गाथा-छन्द (आर्याछन्द) में प्राप्त है, किन्तु आ० कुन्दकुन्द के प्राकृत-वाड्.मय की विशेषता यह है कि उसमें गाथा छन्द के अतिरिक्त अनुष्टुप और उपजाति छन्दों का भी उपयोग किया है। निश्चय ही छन्द-वैविध्य से रचना में पाठक को विशेष आनन्द आता है और उसका वैशिष्ट्य बढ़ जाता है। अनुष्टुप और उपजाति छन्दों के उद्धरण प्रस्तुत हैं-

(क) १. एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥
—भावपा० ५९

२. जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्य सामाइगं ठाइ इदिं केवलि सासणे ॥
—नियमसा १२६

(ख)
णिद्धस्स णिद्धेसु-दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि वन्धो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥
—प्रवचनसार

(ब) अलंकार-विविधता—संस्कृत साहित्य में अलंकारहीन काव्य को निर्भूषणा नारी की तरह श्रीहीन बतलाकर अलंकार का महत्व उद्घोषित किया है। उस प्राचीन काल में आ० कुन्दकुन्द ने अपने प्राकृत-वाड्.मय में भी अलंकारों का समावेश किया है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं—

(ग) ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु,
वि आपण्णिऊण जिण धम्मं।
गुड-दुद्धं पि पिवंता ण,
पण्णया णिव्विसा होंति ॥
—भावपा० १३७

इसमें अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

(घ) उपमालंकार—

जह तारयाण चन्दो मयराओ मयडलाण सव्वाणं।
अहि ओ तह सम्मत्तो रिसि-सावय दुविह धम्माणं ॥
—भावपा० १४३

(ङ.) रूपकालंकार—
जिणवर चरणंबुरुहं णमंति जे परमभक्तिरायेग।
ते जम्मबेल्लिमूलं खणंति वरभाव-सत्थेण ॥
—भावपा० १५१

उपर्युक्त उद्धरणों में हमें कुन्दकुन्द के प्राकृत-साहित्य की अनेक साहित्यिक-उद्भावनाएँ परिलक्षित होती हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि कुन्दकुन्द केवल सिद्धान्तवेत्ता मनीषी ही न थे, अपितु प्राकृत के प्रौढ़ कवि भी थे और प्राकृत में विविध छन्दों तथा अलंकारों में कविता करने की विशिष्ट प्रतिभा भी उन्हें प्राप्त थी।

२. दार्शनिक चिन्तनः—

कुन्दकुन्द का दार्शनिक चिन्तन अनुभव और तर्क पर आधृत है। जब वे किसी प्रमेय का विचार करते हैं तो उसमें दर्शन का आधार अवश्य रहता है। यहाँ दो उदाहरण दृष्टव्य हैं—

१—कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय में द्रव्य के दो लक्षण दिये हैं[३] और दोनों को सयुक्तिक सिद्ध किया है। द्रव्य का पहला लक्षण है—'जो सत् है और जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य होता है, वह द्रव्य है।' दूसरा लक्षण है—'जो गुणों और पर्यायों का आश्रय है, वह द्रव्य है।' इन दोनों लक्षणों का कुन्दकुन्द ने हेतुपूर्वक समर्थन भी किया है।[४] पहला लक्षण जहां द्रव्य की त्रयात्मक शक्ति

३—पंचास्तिकाय, गाथा-१०
४—वही, गाथा-११, १२, १३, १५ और ५४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का प्रकाशक है, वहाँ दूसरा लक्षण सह और क्रमशः पाये जाने वाले उसके दो प्रकार के धर्मों (गुणों और पर्यायों) का सूचक हैं। कुन्दकुन्द ने 'द्रव्य' शब्द की व्युत्पत्ति द्वारा[५] बतलाया है कि जो स्थिर रहता हुआ उत्पाद और व्यय रूप पर्यायों को प्राप्त करता है, वह द्रव्य है, । अथवा 'जो गुण और पर्यायों को लिए हुए है, वह द्रव्य है।' द्रव्य के ये दोनों लक्षण कुन्दकुन्द का अपना चिन्तन है, जिसे परवर्ती सभी ग्रन्थकारों ने अनुसृत किया है।

२—प्राकृत आगम-ग्रन्थों में हमें वस्तु-निरूपण 'सियाअत्थि' (स्याद्-अस्ति=अथंचित् है) और 'सिया-णत्थि' (स्यात्नास्ति=कथंचित् नहीं है) इन दो भंगों (प्रकारों) से मिलता है। कुन्दकुन्द ने उनमें विकास करके उक्त निरूपण को सात भंगों द्वारा प्रतिपादित किया है[६] और द्रव्यमात्र को 'सप्तभंग' (सात प्रकार का) निरूपित किया है तथा उसे वक्ता की विवक्षावश सम्भवित प्रकट किया है। कुन्दकुन्द का यह चिन्तन भी नया है, जिसे समन्तभद्र जैसे युगप्रधान आचार्यो ने अपनाकर उसका विस्तृत एवं विशद व्याख्यान किया है।

३—कुन्दकुन्द की दृष्टि बड़ी सुलझी और गहरी थी। एक जगह उन्होंने प्रतिपादित किया है कि 'भाव' (सत्) का विनाश और अभाव (असत्) का उत्पाद नहीं होता। दूसरे स्थान पर वे कहते हैं कि 'सत्' का विनाश और 'असत्' का उत्पाद होता है। इन दोनों कथनों के विरोध का वे स्वयं परिहार करते हुए लिखते हैं कि पहला कथन द्रव्य की विवक्षा से है और दूसरा पर्याय की दृष्टि से। इस तरह उन्होंने उक्त दोनों कथनों को दो नयों (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक) से बतलाकर उनके विरोध का अनुभवगम्य एवं युक्तिपूर्ण परिहार किया है। कुन्दकुन्द की यह सूक्ष्म दृष्टि बड़ी ही प्रभावोत्पादक और वस्तुतत्व की प्रदर्शिका है।

३. तात्त्विक विवेचन—

कुन्दकुन्द के प्राकृत-वाङ्मय का मन्थन करने पर प्रतीत होता है कि उसका बहुभाग तात्विक निरूपणपरक ही है और वह उनका अपना ही है। समयसार और नियमसार में जो शुद्ध आत्मा का विशद और विस्तृत विवेचन है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मोक्षपाहुड (गा. ४-७) में आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—इन तीनों भेदों तथा उनके स्वरूप का प्रतिपादन भी अद्वितीय है। नियमसार (गा० १५६) में व्यवहारनय से आत्मा को सर्वज्ञ और निश्चयनय से आत्मज्ञ निरूपित करना कुन्दकुन्द का अपना एवं नया विचार है। इसी ग्रन्थ (गा० १६०) में षट्खण्डागम के ज्ञान और दर्शन के यौग-पद्य का सर्वप्रथम समर्थन मिलता है। पुद्गल के दो तथा छह भेदों का निरूपण (गा० २०—२४), परमाणु का स्वरूप कथन (नि० गा २६) कर्मभूमिज और भोगभूमिज-- मनुष्यों के दो भेद (नि. गा. १६) इसीमें उपलब्ध हैं। पंचास्तिकाय में द्रव्य, सत्ता, गुण, पर्याय (गा० १२, १३) स्वदेहप्रमिति जीव (गा० ३३) त्रिविध (कर्म, कर्मफल और ज्ञान) चेतना (गा० ३८) शब्द की पौद्गलिकता (गा० ७९) छह द्रव्य, नव पदार्थ पांच अस्तिकाय और सात तत्व (गा० १०२, १०८) विवेचित हैं। स्कन्धों के बादर-बादर आदि (पंचा० ७६) और पुद्गल के स्कन्ध; स्कन्धप्रदेश और परमाणु (पं० गा० ७५) आदि का विमर्श अद्वितीय है।

अध्यात्म-विवेचन में कुन्दकुन्द ने निश्चय-व्यवहार नयों का जो अवलम्बन लिया है वह भी उनकी प्राकृत-वाङ्मय की अपूर्व विचारणा है। इन नयों की प्ररूपणा इसके पहले के साहित्य में नहीं मिलती। व्यवहार और निश्चय द्विविध मोक्षमार्ग की प्रकल्पना (पंचा० गा० १६० १६१), सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का निरूपण (स० सा० गा० २२९ - २३६), अणुमात्र राग रखने वाला सर्व-

५—दवयदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं ।
जं दवियं तं भण्णंते..॥—पंचास्तिकाय

६—सिय अत्थि णत्थि उहयं अवत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं ।
दव्वं खु सप्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥—वही, गाथा—१४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रज्ञ भी स्वसमय का ज्ञाता नहीं हो सकता (पंचा० १६७), जीव को सर्वथा कर्मबद्ध बतलाना नयपक्ष (एकान्तवाद) है और दोनों का जानना समयसार है (स० सा० १४१—१४३) पुण्य-पाप उसी तरह के बन्धन हैं जिस प्रकार लोहे और सोने की बेड़ियाँ (स० सा० १४५, १४६), तीर्थंकर भी यदि वस्त्रधारी हो तो सिद्ध नहीं हो सकता (दं० पा० २३) चारित्रहीन भी निर्वाण पा सकता है पर दर्शनहीन नहीं (दं० पा० ३२) आदि सैद्धान्तिक चिन्तना भी कुन्दकुन्द के प्राकृत-वाङ्मय की अपूर्व देन है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कुन्दकुन्द के वाङ्मय ने जो दृष्टि प्रस्तुत की, वह उत्तरकालीन ग्रन्थकारों द्वारा आहृत एवं पुष्ट हुई है। ज्ञात होता है इसीसे कुन्दकुन्द को सर्वाधिक सम्मान मिला और मूलसंघ के नायक माने गये।

४. लोककल्याणी दृष्टि—

कुन्दकुन्द के वाङ्मय की जो अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि है, वह है उसकी लोककल्याणी दृष्टि अथवा सर्वोदय का उद्देश्य। मानवमात्र को यह बतलाना उसका मुख्य प्रयोजन है कि वह यह अनुभव करे कि वह विविध दुःखों और अभावों से पीड़ित है और बन्धन में बद्ध है। तथापि वह उन दुःखों से और बन्धन से मुक्त हो सकता है और शाश्वत सुख तथा स्वतन्त्रता को पा सकता है। समयसार के आरम्भ में वे कहते हैं कि 'लोगों को विषय-भोगों और स्तुति-निन्दा की कथा बहुत रुचिकर लगती है; क्योंकि उसे उन्होंने अनेक बार सुना है, अनुभव किया है और रात-दिन उसीके चक्कर में वे रहते हैं। परन्तु शुद्ध चिदानन्द आत्मा की चर्चा न कभी सुनी, न अनुभव की और न सत्संगति से उसका परिचय हो पाया। अतः मैं अनुभव, तर्क और शास्त्राभ्यास से प्राप्त सम्पूर्ण शक्ति से उस चिदानन्द आत्मा का लोगों को दर्शन कराने का प्रयास करूँगा।'—इस प्रतिज्ञावचन से उनकी दृष्टि लोक-कल्याण के लिए कितनी छटपटा रही है—यह सहज ही विदित हो जाता है। एक जगह तो कह उठते हैं कि 'कल्याण का ठेका उच्च कुल या उच्च जाति वालों ने ही नहीं लिया है; क्योंकि न देह, न कुल और न जाति वन्दनीय हैं, वन्दनीय हैं गुण। वे जहाँ है, वह वन्दनीय है और गुण का विकास प्रायः सभी मनुष्यों में संभव है।'[७]
(दं० पा० २७) ▭

—भूतपूर्व रीडर—का० हि० वि०, वाराणसी
चमेली कुटीर
१/१२८, डुमराव कालोनी, अस्सी
वाराणसी—५

७—क्षु० चिदानन्द स्मृतिग्रन्थ, साहित्य एवं संस्कृति पृ० २०१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक ग्रन्थ :

द्रव्य संग्रह एक अध्ययन

पं० ऋषभचन्द्र शास्त्री 'फौजदार' वाराणसी

पं० ऋषभचन्द्र जी एक होनहार अध्येता विद्वान हैं। आप बड़े सूक्ष्मदर्शी, गम्भीर चिन्तक और विश्लेषणात्मक बुद्धि से सम्पन्न हैं। भविष्य में जैन-साहित्य के उद्धार की आपसे अपेक्षाएँ हैं।

प्रस्तुत लेख उनके गहन अध्ययन एवं विश्लेषणात्मक बुद्धि का प्रतीक है। 'द्रव्य संग्रह' और उसके कर्त्ता का जो खोजपूर्ण प्रमाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है, वह पठनीय है।

—सम्पादक

भारत के प्राचीन इतिहास में जैनधर्म और जैन-दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। विगत विभिन्न समयों में ऐसे अनेक आचार्य होते रहे जिन्होंने अपनी अनुपम कृतियों द्वारा जैनधर्म और जैनदर्शन की पताका फहराई है। उन्हीं उल्लेखनीय कृतियों में आ० श्री नेमिचन्द्र 'सिद्धान्तिदेव' की महत्वपूर्ण कृति 'द्रव्यसंग्रह' है। इस कृति को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त रही है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ और इसके प्रतिपाद्य विषयों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

इसी ग्रन्थ की अन्तिम गाथा से प्रकट है कि इस ग्रन्थ का नाम 'द्रव्यसंग्रह' है और इसके कर्ता श्री नेमिचन्द्र मुनि हैं—

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोस-संचय-चुदा सुद-पुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमि चंदमुणिणा भणियं जं॥

इस ग्रन्थ के संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव हैं। इन्होंने इन नेमिचन्द्र को अपनी संस्कृत-टीका में अनेक स्थानों पर 'सिद्धान्तिदेव' उपाधि के साथ उल्लेखित किया है।[1] इससे स्पष्ट है कि ये नेमिचन्द्र 'सिद्धान्तिदेव' उपाधि से विभूषित थे और गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों के कर्ता सिद्धान्तचक्रवर्ती आ० नेमिचन्द से भिन्न थे, जो उनके पूर्ववर्ती थे। डा० दरबारी लाल कोठिया ने इस विषय पर विस्तृत लिखा है।[2]

इस ग्रन्थ में नेमिचन्द्र ने जैनदर्शन में मान्य ६ द्रव्यों

१—संस्कृत-टीका, पृष्ठ—२, १८, २४१।
२—द्रव्यसंग्रह, प्रस्तावना, वर्णीग्रन्थमाला प्रकाशन, वाराणसी—१९६६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का संकलन तथा स्वरूपात्मक कथन किया है। इसके साथ ही साथ ५ अस्तिकायों, ७ तत्वों, ९ पदार्थों, दो प्रकार के मोक्षमार्गों, ५ परमेष्ठियों और ध्यान का भी संक्षेप में वर्णन किया है। द्रव्यों का कथन मुख्य अथवा आरम्भ में होने से इस ग्रन्थ का नाम 'द्रव्यसंग्रह' रखा गया है। काय की दृष्टि से लघु होने पर भी यह ग्रन्थ व्यवस्थित, अत्यन्त सरल तथा अपने आप में पूर्ण है। जैनधर्म की प्रायः सभी मुख्य एवं मौलिक बातों का इसमें वर्णन है। जैनधर्म के प्राथमिक अभ्यासी के लिए यह सर्वथा उपादेय एवं अभ्यसनीय है।

इसमें इस अवसर्पिणी काल के आरम्भ में सर्वप्रथम हुए भगवान ऋषभदेव को नमन करके जीव और अजीव इन दो मूल द्रव्यों का निर्देश किया है और फिर उनके ६ भेदों का निरूपण है। यद्यपि ग्रन्थकार ने इसमें मात्र ५८ गाथाओं की रचना की है और उनका स्वयं कोई अधिकार, परिच्छेद या अध्याय के रूप में विभाजन नहीं किया है, तथापि उनके ही समकालीन संस्कृत-टीकाकार ब्रह्मदेव की संस्कृत टीका के अनुसार इसमें ३ मूल अधिकार और उनके अन्तर्गत आठ अन्तराधिकार प्राप्त होते हैं।

१. प्रथम अधिकार—'षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय प्रतिपादक' नाम का है। इसमें ३ अन्तराधिकार और २७ गाथाएँ हैं। प्रथम अन्तराधिकार में १४ गाथाओं द्वारा जीवद्रव्य का, द्वितीय में ८ गाथाओं द्वारा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल-इन ५ अजीव द्रव्यों का तथा तीसरे अन्तराधिकार में ५ गाथाओं द्वारा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश-इन पांच अस्तिकायों का कथन है।

२. द्वितीय अधिकार—'सप्ततत्व-नवपदार्थ प्रतिपादक' नाम का है। इसमें दो अन्तराधिकार हैं तथा ११ गाथाएँ हैं। प्रथम अन्तराधिकार में १० गाथाओं द्वारा जीव अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष-इन सात तत्वों का और दूसरे अन्तराधिकार में एक गाथा के द्वारा ७ तत्वों में पुण्य तथा पाप को मिलाकर नौ पदार्थों का निर्देश किया है।

३. तृतीय अधिकार—'मोक्षमार्ग प्रतिपादक' नामका है। इस में भी दो अन्तराधिकार और २० गाथाएँ हैं। प्रथम अन्तराधिकार में आठ गाथाओं द्वारा व्यवहार और निश्चय—इन दो प्रकार के मोक्ष-मार्गों का प्रतिपादन है। चूंकि इनकी प्राप्ति ध्यान से ही होती है अतः इसी के दूसरे अन्तराधिकार में ११ गाथाओं द्वारा ध्यान और ध्येय, तथा पांच परमेष्ठियों का भी विशद निरूपण है। अन्तिम ५८ वीं गाथा में नेमिचन्द्र ने अपनी लघुता प्रकट करते हुए अपनी इस कृति का और अपना नाम निर्दिष्ट किया है। इस तरह इस ग्रन्थ में मात्र ५८ गाथाओं में समस्त जैन सिद्धान्त को भर दिया गया है।

जान पड़ता है कि इसी से यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय और प्रामाणिक सिद्ध हुआ कि उत्तरवर्ती ग्रन्थकारों ने उसे बहुत अपनाया है। संस्कृत-टीकाकार ब्रह्मदेव तो इसकी गाथाओं को 'सूत्र' और इसके कर्ता को 'भगवान' कहकर उल्लेखित करते हैं।[३] पं० आशाधर जी ने भी इसकी गाथाओं को उधृत करके अपने कथन को उनसे पुष्ट किया है।[४] पं० जयचन्द्र जी ने इस ग्रन्थ के महत्व को अनुभव करके इस पर संक्षिप्त किन्तु विशद 'भाष्य-वचनिका' लिखी है। साथ ही उसका हिन्दी पद्यानुवाद भी उन्होंने 'द्रव्यसंग्रह भाषा' के नाम से लिखा है जो बिल्कुल ही सरल है तथा १-१ गाथा के पूरे अर्थ को १-१ चौपाई में निबद्ध किया है। यह ग्रंथ द्रव्यसंग्रह आज भी लोकप्रिय है और इस पर अनेक हिन्दी व्याख्याएँ उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं। मराठी में भी इसका कई बार

३—संस्कृत-टीका, पृष्ठ ४, २१, २३; ५८, ५९, १४९, २०९, २२३; २२९, २३१।

४—अनगारधर्मामृत-टीका-पृष्ठ-४, १०९, ११२, ११६; २०४ आदि। पृष्ठ ११८ पर तो 'तथा चोक्तं द्रव्य-संग्रहेऽपि' कहकर 'तव्वस्स कम्मणो'-आदि गाथा दी गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुवाद छप चुका है[५] प्रो० शरच्चन्द्र घोषाल के सम्पादन में आरा[६] से सन् १९१७ में और जैनसमाज पहाड़ी धीरज दिल्ली से सन् १९५६ में अंग्रेजी में भी यह दो बार प्रकाशित हो चुका है। डा० दरबारीलाल कोठिया द्वारा सम्पादित तथा पं० जयचन्द्र जी की भाषा वचनिका और हिन्दी पद्यानुवाद सहित, विस्तृत प्रस्तावना के साथ सन् १९६६ में श्री वर्णी जैन ग्रन्थ माला से भी यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। अनेक परीक्षालयों के पाठ्यक्रम में यह निहित है। इससे इसका महत्व स्पष्ट है।

संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि नेमिचन्द्र ने पहले २६ गाथाओं में 'द्रव्यसंग्रह' रचा था और पीछे विशेष तत्वज्ञान के लिए ५८ गाथा-प्रमाण द्रव्यसंग्रह बनाया था और इसी कारण २६ गाथा प्रमाण द्रव्यसंग्रह 'लघुद्रव्यसंग्रह' और ५८ गाथा प्रमाण द्रव्यसंग्रह 'बृहद्द्रव्यसंग्रह' के नामों से विश्रुत हुआ। आज भी ये नाम यथावत् प्रचलित हैं।

द्रव्यसंग्रह का ऊपर बाह्य परिचय दिया गया। अब आगे इसका आभ्यन्तर परिचय दिया जा रहा है—

१—मंगलाचरण में नेमिचन्द्र ने आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के गुणवर्णन के साथ सातिशय वन्दना की है। तथा उनके द्वारा उपदिष्ट जीव और अजीव द्रव्यों का निर्देश किया है।[७] इसके जीवद्रव्य का ९ अधिकारों में विस्तृत वर्णन है।[८] उन्होंने प्रकट किया है—'जीवद्रव्य भाव प्राणों से पहले जिया था, वर्तमान में जी रहा है और भविष्य में जियेगा; इसलिए वह जीव है। वह ज्ञानदर्शन रूप उपयोगमय है। रूपादि २० गुणों से रहित होने से वह अमूर्तिक है। व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता और निश्चय नय से सुख, ज्ञानादि आत्मीय गुणों का कर्ता है। वह अपने शरीर प्रमित है, न व्यापक है और न अणुमात्र है। व्यवहारनय से कृत कर्मों के फल का भोक्ता हैं और निश्चय नय से मात्र ज्ञानादि आत्मीय भावों का भोक्ता है। संसार में रहने के कारण संसारी है और अपने पुरुषार्थ से मुक्त हो सकने के कारण मुक्त है तथा स्वभावतः ऊर्ध्वगति वाला है।' इस तरह १४ गाथाओं में जीवद्रव्य का ग्राह्य विशद विवेचन है।

२—आगे ५ अजीव द्रव्यों का ८ गाथाओं द्वारा बड़ा सहज, सरल व बोधगम्य विवेचन किया है। वे ५ अजीव द्रव्य पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल हैं। यद्यपि इनका विवेचन इनके पूर्ववर्ती आ० कुन्दकुन्द, गृध्रपिच्छ आदि ने किया है तथापि नेमिचन्द्र की यहाँ विशेषता यह है कि उन्होंने अतिसंक्षेप में उनका स्वरूप-कथन किया है, जो हृदयग्राही है। आगे चलकर उक्त पांच अजीव द्रव्यों में से काल द्रव्य को पृथक् कर और जीव द्रव्य को मिलाकर ५ अस्तिकायों का कथन किया है। चूंकि कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं, अपितु एक प्रदेशी है, अतः वह अस्तिकाय नहीं है जबकि जीवद्रव्य बहुप्रदेशी होने से अस्तिकायों में परिगणित हैं। आ० कुन्दकुन्द की भांति नेमिचन्द्र ने अस्तिकाय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'जो मौजूद हो और काय की तरह बहुप्रदेशी हो, वह अस्तिकाय है।' इस परिभाषा[९] के अनुसार कालद्रव्य को छोड़कर शेष

५-६—पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार 'द्रव्यसंग्रह समालोचना' जैनहितैषी—वर्ष—१३ अंक—१२ पृष्ठ—५४१ सन्—१९१८।

७—द्रव्यसंग्रह-गाथा-१

८—द्रव्यसंग्रह-गाथा-२

९—संति जदो तेणे दे अत्थीति भणंति जिणवरा जह्मा।
काया इव बहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाँचों द्रव्य अस्तिकाय सिद्ध होते हैं। नेमिचन्द ने द्रव्यों के प्रदेशों की संख्या बतलाते हुए स्वयं लिखा है कि 'काल द्रव्य के एक ही प्रदेश है, अतः वह कायवान् नहीं है।[10] जैन सिद्धान्त में कालद्रव्य को अणुरूप माना गया है और वह लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर अवस्थित होने से असंख्यात अणुद्रव्य रूप है। सिद्धान्तिदेव नेमिचन्द्र ने भी यही कहा है।[11]

३—सम्यग्दर्शन को जैनधर्म में मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी कहा है। तत्वार्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है।[12] इन तत्वार्थों का जैनवाङ्मय में विस्तार से प्ररूपण है। तत्वार्थसूत्र के टीकाकार आचार्यों ने बड़े ही विस्तार से वर्णित किया है। आ० नेमिचन्द्र ने भी इनका वर्णन किया है। इनकी विशेषता यही है कि इन्होंने मात्र १० गाथाओं में अतिसंक्षेप में उन्हें वर्णित किया है एक गाथा में ७ तत्व और ९ पदार्थों का निर्देश करके आगे ३ गाथाओं में आस्रव, दो में बन्ध, दो में संवर, एक में निर्जरा और एक गाथा में मोक्ष—इन ७ तत्वों का कथन किया है। आगे की गाथा में पुण्य-पाप का स्वरूप दर्शाते हुए उन्हें ७ तत्वों में मिलाकर बड़े सुन्दर ढंग से ९ पदार्थों की सूचना दी है।

उनका यह समग्र प्रतिपादन बहुत विशद और हृदयग्राही है। जैनधर्म के जिज्ञासु के लिए ७ तत्वों और ९ पदार्थों को समझने में बुद्धि-व्यायाम नहीं करना पड़ता। यह उनका वैशिष्ट्य है।

४—जैन वाङ्मय में संसार से मुक्ति और शुद्ध स्वाभाविक आत्मस्वरूप की प्राप्ति हेतु मोक्षमार्ग का बड़ा महत्व है। व्यवहार और निश्चय के भेद से वह दो प्रकार का है। द्रव्यसंग्रहकार ने इन दोनों मोक्षमार्गों का निरूपण आठ गाथाओं में बड़ी सरलता से किया है। सम्यग्दर्शन; सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र—इन तीनों को रत्नत्रय बतलाते हुए जीवादि तत्वों और पदार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन, संशय—विपर्यय—अनध्यवसाय से रहित तत्वों और पदार्थों के ज्ञान को सम्यग्ज्ञान तथा अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति को व्यवहार सम्यक्-चारित्र कहा है। संसार की कारणभूत रागद्वेषादि आभ्यान्तर और त्रियोग की प्रवर्तिरूप बाह्य क्रियाओं के रोकने को निश्चय सम्यक् चारित्र कहा है। सामान्य जिज्ञासु के लिए भी यह प्रतिपादन सहजतया बोधगम्य है।

५—आगे ११ गाथाओं में ध्यान-ध्ये का निरूपण है, क्योंकि मुमुक्ष के ये अनिवार्य हैं। उन्होंने लिखा है कि 'चूंकि दोनों प्रकार का मोक्षमार्ग ध्यान के द्वारा ही योगी को प्राप्त होता है अतः योगी को ध्यान परम आवश्यक है। इसीलिए नेमिचन्द्र ने ध्यान पर अधिक बल दिया है और ध्यान में ध्याने योग्य मंत्रों को भी बतलाया है और पंच-परमेष्ठियों का स्वरूप भी निर्दिष्ट किया है। उत्कृष्ट ध्या की प्राप्ति के लिए मुनिजनों को निरन्तर तप; श्रुताभ्यास और व्रतों के परिपालन में लगे रहने के लिए कहा है।[13]

ग्रन्थ की अन्तिम ५८ वीं गाथा में ग्रंथ तथा ग्रंथाकार के नामों के उल्लेख के साथ-साथ दो अन्य महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है। इनमें प्रथम है 'तणुसुत्तधरेण' विशेषण द्वारा अपने को 'अल्पसूत्र का धारी' अर्थात् अल्पज्ञ बतलाना। दूसरी बात यह है कि उन्होंने श्रतज्ञानी दोष रहित बड़े मुनियों से अल्पज्ञता के कारण ग्रंथ में हुई अशुद्धियों को शुद्ध करने की प्रार्थना की है। इससे ग्रंथकार नेमिचन्द्र की लघुता तथा विनम्रता प्रकट होती है जबकि उनका यह ग्रंथ अपने आप में परिपूर्ण

१०—'कालस्सेगो ण तेण सो काओ'—गा० २५

११—द्रव्यसंग्रह—गाथा—२२।

१२—तत्वार्थसूत्र—अध्याय—१ सूत्र—२

१३—द्रव्यसंग्रह—गाथा—५७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और शुद्ध है। ज्ञानियों में निश्चय ही विनम्रता और मद-रहितता होती है। तत्वार्थसूत्र के रचयिता आ० गच्छ-पिच्छ ने भी अपनी लघुता प्रकट करते हुए लिखा है:--

अक्षर-मात्र-पद-स्वरहीनं व्यंजनसन्धि विवर्जितरेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥

नेमिचंद्र सिद्धांतिदेव ने भी इसी पूर्व परम्परा को कायम रखते हुए अपने को अल्पसूत्रधारी (छद्मस्थ) बतलाया है और अपने से बड़े श्रुतज्ञाता मुनीन्द्रों से ग्रंथ को शुद्ध करने की परोक्ष प्रार्थना की है।

निःसंदेह, द्रव्यसंग्रह एक ऐसा ग्रंथरत्न है, जिसके अध्ययन, अनुशीलन, चिंतन, पठन और पाठन से जैनधर्म के सभी मौलिक सिद्धांतों का संक्षेप में ज्ञान हो जाता है।

सुभाषितम्

जब तक तेरे पुण्य का, बीता नहीं करार।
तब तक तुझको माफ हैं, औगुन करो हजार ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनदर्शन में द्रव्य

डा० लालचन्द जैन, एम ए, पी-एच. डी,
शास्त्राचार्य; जैनदर्शनाचार्य

डा० सा० प्राकृत शोध संस्थान वैशाल में दर्शन विभाग में प्राध्यापक तथा शोध-निदेशक हैं। आप जैनधर्म तथा जैनदर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् और सिद्धहस्त लेखक हैं। प्राकृत और जैनोलोजी में भी आपको पारंगतता प्राप्त है! आपके शोध-खोजपूर्ण लेख बड़े विद्वत्तापूर्ण व सराहनीय होते हैं। प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं तथा विभिन्न विश्व-विद्यालयों में होने वाली सेमीनारों में वाचन किया जाता है। आप युवा-पीढ़ी के विद्वान हैं। विनम्रता, व्यवहार-कुशलता आपके व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं।

जैनदर्शन विश्व के दर्शनों में अपना एक वैशिष्ट्य संजोये हुए है। इसमें प्रत्येक विषय का बड़ा सूक्ष्म तथा सांगोपांग प्रामाणिक विवेचन पाया जाता है जो अन्य दर्शनों में प्रायः कम ही देखने को मिलता है। जैनदर्शन में द्रव्य-विवेचन भी ऐसा ही है, जिसका कोई सानी नहीं है। प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने जैनदर्शन में वर्णित द्रव्यविवेचन को विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर विवेचित किया है।

—सम्पादक

जैनदर्शन में लोक और अलोक के विभाजन का आधार द्रव्य है और ६ द्रव्यों के समुदाय को लोक कहा है। 'द्रव्य' के लिए जैनदर्शन में अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। आ० पूज्यपाद ने सामान्य, उत्सर्ग और अणुवृत्ति को द्रव्य का समानार्थी कहा है।[1] पं० राजमल्ल ने भी सत्ता, सत्व, सत्, सामान्य, द्रव्य, अन्वय, वस्तु, अर्थ, विधि आदि द्रव्य के विभिन्न नाम कहे हैं।[2] अन्य दर्शनों की भांति जैनदर्शन में भी द्रव्य को प्रमेय माना गया है। जैनाचार्यों के अनुसार द्रव्य-व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

(१) आ० कुन्दकुन्द ने कहा है कि 'जो उन-उन

१—आ० पूज्यपाद—सर्वार्थसिद्धिः

२—पञ्चाध्यायी—का०-१४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्भाव पर्यायों को द्रवित होता है अर्थात् प्राप्त होता है उसे द्रव्य कहते हैं।[3]

(२) आ० पूज्यपाद ने कहा है कि 'जो गुणों को प्राप्त होता है, हुआ था और होगा अथवा गुणों को प्राप्त करता है, किया था और करेगा, वह द्रव्य है।' अन्यत्र इन्हीं की एक दूसरी 'द्रव्य-व्युत्पत्ति' है जो आचार्य कुन्दकुन्द के समान है।[4] अन्य जैनाचार्यों ने 'द्रव्य-व्युत्पत्ति' में इन्हीं आचार्यों का अनुकरण किया है।

(३) भट्ट अकलंकदेव ने जैनेन्द्र व्याकरण के आधार पर द्रव्य को 'द्रु' अर्थात् लकड़ी की तरह बतलाया है। जैसे लकड़ी, बढ़ई आदि के निमित्त से कुर्सी, टेविल आदि अनेक आकारों में बदल जाती है वैसे द्रव्य भी बाह्य और आभ्यन्तर कारणों से विभिन्न पर्यायों में बदलती रहती है। इन द्रव्य-व्युत्पत्तियों से सिद्ध होता है कि द्रव्य में गुण तथा पर्यायें होती हैं।

द्रव्य-परिभाषा:—

जैनाचार्यों की द्रव्य[5]-परिभाषाएँ ३ वर्गों में विभक्त हो सकती हैं—

(क) जो सत्तावान है, उसे द्रव्य कहते हैं।

(ख) जो उत्पाद—व्यय-ध्रौव्य वाला है, वह द्रव्य है।

(ग) पर्याय और गुण के समुदाय को द्रव्य कहते हैं। अथवा जो गुण पर्यायों से युक्त हो, वह द्रव्य है।

द्रव्य सत्‌रूप है:—

द्रव्य ज्ञेय है अर्थात् द्रव्य ज्ञान का विषय है। ज्ञान का विषय अर्थ होता है। अतः द्रव्य अर्थमय है। कुन्दकुन्द आदि जैनाचार्यों ने द्रव्य के जो तीन लक्षण बतलाए हैं, उनमें प्रथम द्रव्यलक्षण हैं उसका सत्तास्वरूप होना। यह द्रव्य का सामान्य लक्षण है। इसका तात्पर्य यह है कि द्रव्य सत्-स्वरूप है।[6]

द्रव्य और सत्ता-ये अलग-अलग दो चीजें नहीं है; बल्कि दोनों अभिन्न हैं। सत् के बिना द्रव्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। यद्यपि सत् और द्रव्य स्वरूपादि की अपेक्षा तो भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन यथार्थ में वे दोनों एक ही हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने सत्-स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए सत्ता की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है[7]:—

(क) सत्ता एक है।

(ख) वह समस्त पदार्थों में रहती है।

(ग) वह अनेक प्रकार के स्वरूप से संयुक्त है।

(घ) वह अनन्त परिणाम वाली है।

(ङ) वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है।

(च) और वह प्रतिपक्ष संयुक्त है।

इस परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि जैनदर्शन में द्रव्य की ऐसी कल्पना की गई है, जो नित्य भी है और अनित्य भी। इस कथन से उन विचारधाराओं

३—पञ्चास्तिकाय—गाथा-९

४—आ० पूज्यपाद—स० सि०, अ० ५/२ पृ० २६६

५—(क) पंचास्तिकाय-गाथा-१० (ख) प्रवचनसार-गा० २/३ (ग) जैनेन्द्र सिं० को० भाग-२ पृ० ४५२

६—तत्वार्थसूत्र-अ० ५ सूत्र-२९

७—पञ्चास्तिकाय-गाथा-८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का निराकरण हो जाता है जो द्रव्य को एकान्तरूप से क्षणिक या परिणामी मानते हैं। जैनदर्शन में द्रव्य को न तो सर्वथा क्षणिक माना है और न सिर्फ अपरिणामी ही माना है; क्योंकि द्रव्य सत्तारूप है। सत्ता में परिवर्तन होना आवश्यक है।

द्रव्य की दूसरी विशेषता यह भी व्यक्त होती है कि द्रव्य किसी से उत्पन्न नहीं होता। यह स्वयंभू तथा अविनाशी है। द्रव्य सत्-स्वरूप ही है और सत् कभी असत्‌रूप नहीं हो सकता है। पर्यायें ही उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है।[८]

तीसरी बात यह है कि इस लक्षण में द्रव्य गुणी है और सत्ता गुण है।

तत्वार्थसूत्र में उमास्वामी ने सत् को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-स्वरूप कहा है।[९] द्रव्य परिणामी है, परिणमन करना उसका स्वभाव है और वह स्वभाव उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सहित है।[१०] ऐसी किसी भी सत्ता की कल्पना नही की जा सकती है, जिसमें उत्पादव्यय-ध्रौव्य-ये तीन परिणाम न होते हों। वर्तमान पर्यायों का विनष्ट होना व्यय है और नवीन पर्यायों का उत्पन्न होना उत्पाद है तथा इन दोनों अवस्थाओं में प्रवाहित रहना ध्रौव्य है। जैसे—मिट्टी का पिण्ड है। उस पिण्ड से जब घटादि द्रव्य बनाया जाता है तो पिण्ड पर्याय का विनाश और घट पर्याय का उत्पाद होता है; लेकिन मिट्टी इन दोनों ही अवस्थाओं में मौजूद रहती है।

द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है—

आचार्यों ने द्रव्य का दूसरा लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप होना बतलाया है। इसका तात्पर्य यही है कि द्रव्य, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आपस में संयुक्त हैं, भिन्न-भिन्न नहीं हैं। किसी भी क्षण ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती है कि द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणाम न हों।

उत्पादादि तीनों एक ही वस्तु के अंश हैं:—

उत्पादि, व्यय और ध्रौव्य—इन तीनों से युक्त वस्तु होती है। इनसे भिन्न वस्तु या द्रव्य की कल्पना नहीं की जा सकती (ये वस्तुएँ स्वतः सिद्ध हैं। जैसे—बीज अंकुर और वृक्षत्व अंश हैं और वृक्ष अंशी है वैसे ही उत्पाद; व्यय और ध्रौव्य अंश हैं और द्रव्य अंशी है। उत्पाद; व्यय और ध्रौव्य पर्यायश्रित हैं और पर्यायें द्रव्य से भिन्न नहीं है। अतः सिद्ध है कि उत्पादादि द्रव्य से भिन्न नहीं है।

'पंचाध्यायी' में कहा गया है कि पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा ध्रौव्य भी कथंचित् सत् का होता है। अतः उत्पाद, व्यय की तरह ध्रौव्य भी सत् का एक अंश है, सर्वदेश नहीं। इस सत् की अनियतता का मूल कारण व्यय और उत्पाद हैं तथा नित्यता का मूल कारण ध्रौव्य है। इस तरह उत्पादादि तीनों एक सत् के अंश हैं, अर्थान्तरों की तरह अनेक नहीं हैं।

'वृक्ष, फूल, फल और पत्तों की तरह किसी अंश रूप एक भाग से सत् का उत्पाद अथवा व्यय-ध्रौव्य होते हैं'—ऐसा भी नहीं है। वास्तव में उत्पादादि न तो स्वतन्त्र अंश के होते हैं और न केवल अंशी के होते हैं, अपितु अंशों से युक्त होने हैं।

उत्पादादि तीनों भिन्न-भिन्न नहीं है—

उत्पाद आदि तीनों परिणाम परस्पर भिन्न नहीं, अपितु एक ही हैं। व्यय के बिना उत्पाद की और उत्पाद

---

८ पञ्चास्तिकाय-गा० ११

९—'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' तत्वासू. अ० ५

१०—पञ्चाध्यायी—२/७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के बिना व्यय की कल्पना ही नहीं की जा सकती है तथा उत्पाद एवं व्यय-ये दोनों ध्रौव्य के बिना संभव नहीं हो सकते। अतः उत्पादादि तीनों एक ही हैं, भिन्न-भिन्न नहीं। जैसे—

जब कुम्भकार घड़े का निर्माण करता है तब घड़े के उत्पाद के साथ ही साथ मृतपिंड का विनाश भी होता है। इस उत्पाद-व्यय के समय दोनों ही अवस्थाओं में मिट्टी यथावत् रहती है—यही ध्रुवता है। क्योंकि द्रव्य के स्थिर हुए बिना पर्यायों की कल्पना की ही नहीं जा सकती है। इससे सिद्ध है कि उत्पाद आदि तीनों अलग-नहीं, बल्कि एक ही हैं।[11]

भट्ट अकलंक ने एक प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट किया है कि उत्पाद और व्यय न तो सर्वथा भिन्न ही हैं अपितु ये कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न हैं।[12]

'उत्पादादि तीनों का काल भिन्न-भिन्न हो अर्थात् ये तीनों अलग-अलग समयों में होते हों' सो ऐसी बात भी नहीं है बल्कि इनका समय एक ही होता है; क्योंकि मिट्टी एक ही समय में पिण्ड रूप से उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है जबकि ध्रौव्यता उन दोनों में हमेशा विद्यमान रहती है। कारण यह है कि पर्यायें उत्पादादि पर निर्भर होती हैं। प्रवचनसार में आ० कुन्दकुन्द ने ने इसे अच्छी तरह स्पष्ट किया है।[13] अस्तु, द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है—यह भली-भाँति सिद्ध हुआ।

द्रव्य गुणपर्याय वाला है—

'द्रव्य गुणपर्यायों वाला है'—जैनदार्शनिकों का यह तीसरा द्रव्य लक्षण है। इसमें द्रव्य की दो विशेषताएँ व्यक्त होती हैं—(१) द्रव्य में पर्यायें रहती हैं। और (२) द्रव्य में गुण रहता है। यहाँ द्रव्य को गुणपर्यायों वाला जो कहा गया है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि 'गुण और पर्याय द्रव्य से सर्वथा भिन्न हैं और उनके संयोग हो जाने से द्रव्य, गुणपर्यायों वाला कहलाता है।' पर्याय और गुण तो द्रव्य में सदैव मौजूद रहते हैं। जैसे—सोने में रूपादि गुण और अंगूठी आदि पर्यायें सोने से भिन्न नहीं हैं वैसे ही द्रव्य की पर्यायें और गुण उनसे सर्वथा भिन्न नहीं हैं।

गुण—'गुण' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। जैसे—शक्ति, लक्षण, विशेष, धर्म, रूप, गुण, स्वभाव, प्रकृति, शील और आकृति—ये गुणशब्द के अर्थ हैं।[14] तत्वार्थसूत्रकार ने गुण की परिभाषा देते हुए कहा है—'गुण, द्रव्य के आश्रित होते हैं और स्वयं निर्गुण होते हैं।'[15] द्रव्य में गुण ही एक ऐसा अंश है, जिसके कारण एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से भिन्न प्रतीत होता हैं; क्योंकि गुण द्रव्य के सहभावी होते हैं। अतः द्रव्य के साथ रहना गुण का लक्षण है। गुण की विशेषताएँ हैं —

(क) गुण वस्तु का विशेष है।

(ख) गुण, द्रव्य का अन्वयी है।

(ख) गुण द्रव्य का सहभावी है।

(ग) गुण द्रव्य के आश्रित रहते है।

गुण और द्रव्य में सम्बन्ध—

(क) गुण और द्रव्य का परस्पर गहरा सम्बन्ध है।

(ख) गुण के बिना द्रव्य की कल्पना नहीं की जा सकती है।

११—प्रवचनसार—गा० ८
१२—तत्वार्थवार्तिक—अ० ५ पृ० ४६५-४६६
१३—प्रवचनसार - २/१०
१४—पञ्चाध्यायी - अ० प्र०, का० ४८ पृ० १२
१५—'द्रव्याश्रया: निर्गुणा: गुणा:'—तत्वार्थ सू० अ० ५/सूत्र—४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) द्रव्य के बिना गुण का अस्तित्व ही संभव नहीं; क्योंकि जब द्रव्य ही नहीं होगा तो गुण कहाँ रहेंगे ?

(घ) गुण द्रव्य के आश्रित है लेकिन द्रव्य गुण के आश्रित नहीं है।

(ङ) द्रव्य और गुण में गुण और गुणी का सम्बन्ध है।

(च) स्वरूप, नामादि की अपेक्षा से द्रव्य और गुण इनमें आपस में भेद भी है, लेकिन फिर भी दोनों हैं अभिन्न।[16]

पर्यायतअंश, पर्याय, भाग, हार; विधा, प्रकार, भेद, छेद और भंग पर्याय के समानार्थी हैं।[17] वस्तु का व्यातिरेकी अंश पर्याय है। द्रव्य के विकार या परिणाम को पर्याय कहा जाता है। ये पर्यायें समुद्र की तरंगों की भांति-प्रतिक्षण उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है।[18] जैसे गुण के कारण द्रव्य की पहचान होती है, वैसी पर्यायों से नहीं; क्योंकि पर्यायें द्रव्य में भेद करने में सहायक नहीं हैं। ये पर्यायें स्वाभाविक होती हैं और वैभाविक भी होती हैं। संक्षेप में पर्याय की विशेषताएं इस प्रकार हैं—

(क) पर्यायें गुणों से पृथक् होती हैं।

(ख) पर्यायें द्रव्य के विकार हैं।

(ग) पर्यायें द्रव्य के क्रमभावी अंश हैं।

(घ) पर्यायों की स्वतन्त्रता सत्ता है।

(ङ) पर्यायों के विना द्रव्य का स्वरूप ही संभव नहीं है।

(च) द्रव्य के विना पर्यायों की कल्पना ही नहीं की जा सकती है, क्योंकि ये द्रव्य में ही होती हैं!

(छ) पर्यायों और क्रिया में अन्तर है, क्योंकि क्रिया परिस्पन्दरूप होती है और पर्यायें अपरिस्पन्दनरूप होती हैं।

द्रव्य गुण पर्याय में सम्बन्ध—

द्रव्य, गुण और पर्याय--इनमें परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इनमें से एक का भी अभाव होने पर द्रव्य का रूप विकृत हो जायेगा अर्थात् द्रव्य, द्रव्य ही नहीं कहला सकेगा। द्रव्य के विना गुण और पर्यायों की सत्ता असम्भव है।[१९]

जैनाचार्यों ने द्रव्य के जो तीन लक्षण बतलाए हैं, वे एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। यद्यपि कथन की दृष्टि से उनमें भेद दिखलाई देता है, जो केवल शब्दात्मक है, पर वास्तविक भेद उनमें नहीं है। द्रव्य के किसी भी एक लक्षण में शेष दोनों लक्षणों का अन्तभाव भली भाँति हो जाता है। जैसे—'द्रव्य सत् हैं'—ऐसा द्रव्य का लक्षण करने पर 'गुणपर्यायों वाला' और 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वाला'—ये दोनों द्रव्यलक्षण इसमें समाविष्ट हो जाते हैं; क्योंकि सत् कथंचित् अनित्य होता है। नित्य कहने से ध्रौव्य का और अनित्य कहने से उत्पाद तथा व्यय का बोध होता है। उत्पाद-व्यय कहने से पर्यायों का बोध होता है और ध्रौव्य कहने से गुणों का बोध होता है। इससे स्पष्ट है कि जैनाचार्यों के उपर्युक्त तीनों द्रव्य-लक्षण एक ही हैं। इनमें शाब्दिक अन्तर होते हुए भी वास्तविक अन्तर नहीं है।

द्रव्य की अन्य विशेषताएँ:—

(क) द्रव्य स्वतन्त्र होता है।

(ख) द्रव्य स्वयंभू होता है।

(ग) द्रव्य अविनाशी है।

---

१६. पंचास्तिकाय—(आ० कुन्दकुन्द) गा० - १३

१७. पञ्चाध्यायी—(पं० राजमल्ल) अ० प्रथम। का० ६०

१८. 'तद्भावः परिणामः'—तत्वार्थसू. ५/४२

१९. प्रवचनसार—अ० २/ गा० १८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(घ) द्रव्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

(ङ) द्रव्य परिणामी भी है।

जैनदर्शन और स्पिनोजा के द्रव्यस्वरूप की तुलना—

यद्यपि मौलिक दृष्टि से जैनदर्शन और पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा के सिद्धान्तों में काफी अन्तर है, तथापि दोनों के द्रव्यस्वरूप-विवेचन नजदीक हैं। स्पिनोजा ने जैनदर्शन की ही भाँति द्रव्य में गुण और पर्यायों की कल्पना की है। उसके अनुसार 'द्रव्य वह है, जिसकी स्वतन्त्र सत्ता हो और जिसके ज्ञान के लिए किसी अन्य पदार्थ के ज्ञान की अपेक्षा न हो।'[२०] स्पिनोजा की यह परिभाषा जैनदर्शन की परिभाषा से मिलती-जुलती है; क्योंकि जैनदार्शनिकों ने भी कहा है कि द्रव्य की सत्ता स्वतन्त्र है।

स्पिनोजा द्रव्य को निरपेक्ष मानता है। यह भी जैनदर्शन के अनुरूप है; क्योंकि जैनदार्शनिक भी द्रव्य को किसी दूसरे पर निर्भर होना नहीं स्वीकार करते हैं। स्पिनोजा द्रव्य को अपरिमित भी मानता है। अपरिमित का अर्थ है, किसी दूसरे पर आश्रित न होना। जैनदार्शनिक भी द्रव्य को किसी अन्य वस्तु पर अपने अस्तित्व के लिए आश्रित नहीं मानते है। स्पिनोजा द्रव्य को अद्वितीय भी कहता है। जिसका तात्पर्य यह होता है कि 'द्रव्य के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है।' जैनदर्शन में भी द्रव्य के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता स्वीकार नहीं की गई है। जैनदार्शनिकों की तरह स्पिनोजा द्रव्य को स्वयंभू भी मानता है।

स्पिनोजा के द्रव्य की एक यह भी विशेषता है कि वह द्रव्य को नित्य कहता है। यहाँ नित्य का अर्थ यदि अपरिणामी है तो जैनदार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित द्रव्य का स्वरूप स्पिनोजा के इस स्वरूप से भिन्न हो जाता है। और यदि नित्यका अर्थ ध्रौव्य की तरह है तो फिर दोनों में समता भी है। वैसे स्पिनोजा का तात्पर्य द्रव्य का अपरिणामी होना नहीं है; क्योंकि स्पिनोजा ने भी जैनदार्शनिक की तरह द्रव्य में गुण-पर्याय की सत्ता को स्वीकार किया है और यह उनके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के समान हो जाता है।

स्पिनोजा ने द्रव्य को एक मानकर उसे अन्तर्यामी, निर्गुण और अनिवर्चनीय माना है। यह कथन जैनदर्शन के द्रव्यस्वरूप-विवेचन से स्पष्टरूप से भिन्न है। जैनदार्शनिक द्रव्य को एक न मानकर ६ मानते हैं। स्पिनोजा के अनुसार सृष्टि ईश्वर से हुई है, लेकिन जैनदार्शनिक ऐसा मानने को तैयार नहीं हैं।

जैनदार्शनिकों की तरह स्पिनोजा ने गुण और पर्याय का भी विवेचन किया है। द्रव्य और गुण की जो परिभाषा उसने दी है, वह भी जैनदर्शन के अत्यधिक नजदीक है। जैनदार्शनिकों की तरह उसने गुण को द्रव्य का आश्रित माना है।

स्पिनोजा ने पर्यायों को जैनदार्शनिकों की तरह परिणामी और द्रव्य का विकार माना है। चन्द्रधर शर्मा ने अपनी पुस्तक में जैनदर्शन के पर्याय का स्पिनोजा के साथ विस्तार से तुलना की है।[२१]

इस तुलना से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जैनदर्शन में प्रतिपादित द्रव्य का स्वरूप भारतीय दर्शन

---

२०. दृष्टव्य - य० मसीह : पाश्चात्य आधुनिक दर्शन की समीक्षात्मक व्याख्या — पृष्ठ ८७ — ९४

२१—(क) आधुनिक दर्शन की भूमिका (संगमलाल पाण्डेय) पृ० ७९-९०

(ख) पाश्चात्यदर्शन (चन्द्रधर शर्मा) पृ० ११४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं पाश्चात्य दर्शन में प्रतिपादित द्रव्य के स्वरूप की अपेक्षा अत्यधिक व्यवहारिक एवं महत्वपूर्ण है। द्रव्य के स्वरूप की जितनी अच्छी व्याख्या जैन दार्शनिकों ने की है, उतनी अन्यत्र नहीं है। यही कारण है कि सभी दार्शनिकों ने जैनदर्शन के विवेचन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। ▭

प्राध्यापक—प्राकृत शोध संस्थान
वैशाली (मुजफ्फरपुर) विहार

गिरते गिर परवो भलो; भलो पकड़वो नाग।
अग्नि में जरवो भलो, बुरो शील कों दाग।।

× × ×

कपट छिपाये न छिपे, छिपे न मौटा भाग।
दावी दूवी न रहे, रुई लपेटी आग।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यूनानीदर्शन और जैनदर्शन

● डा० रमेशचन्द्र जैन एम. ए.; पी. एच. डी., डी लिट्
जैनदर्शनाचार्य, सिद्धान्त शास्त्री

डा० रमेशचन्द जी जैन अध्यवसायी, बहुभाषाविज्ञ, युवा-पीढ़ी के विद्वान् हैं। हिन्दी, अँग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, पाली एवं मंगोलियन भाषाओं के आप अच्छे जानकार हैं। सतत अध्ययन और लेखन में आपकी अधिक रुचि है। जैनदर्शन के आप पारंगत विद्वान् हैं। आपके विद्वत्तापूर्ण लेख देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः निकलते ही रहते हैं। आपके अधिकांश लेख शोध-खोजपूर्ण होते हैं। ग्रन्थ-सम्पादन और प्रस्तावना लेखन का भी आपको बहुत अनुभव है। स्वभाव से सरल एवं सहयोगी प्रवृत्ति के हैं।

प्रस्तुत निबन्ध में विद्वान् लेखक ने यूनानीदर्शन एवं जैनदर्शन का अच्छा तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है।

—सम्पादक

यूनान पश्चिमी दर्शन का जन्मस्थान समझा जाता है। यहाँ **थेल्स** (६२४—५५५ ई० पूर्व) का नाम दार्शनिकों की श्रेणी में प्रथम गिना जाता है। वह सर्व सम्मति मे यूनानीदर्शन[1] का पिता माना जाता है। थेल्स ने जल को सारे प्राकृत जगत का आदि और अन्त कहा — 'जो कुछ विद्यमान है. वह जल का विकास है और अन्त में जल में ही विलीन हो जायेगा।' **एनेक्जिमिनिज** (६११—५४७ ई० पूर्व) ने जल के स्थान में वायु को जगत का आदि और अन्त कहा। उसके अनुसार 'सारा दृष्ट जगत वायु के सूक्ष्म और सघन होने का परिणाम है।' **पाइथेगोरस** (६ठी शती ई० पूर्व) ने संख्या को विश्व का मूलतत्व कहा। उसके अनुसार हम ऐसे जगत का चिन्तन कर सकते हैं, जिसमें रंग रूप न हो; परन्तु हम किसी ऐसे जगत का चिन्तन नहीं कर सकते, जिसमें संख्या का अभाव हो। **जैन दर्शन** के अनुसार जगत अनादि अनन्त है। जीव. पुद्गल, धर्म; अधर्म, आकाश और काल—इन छह द्रव्यों का समुदाय जगत है। जल तथा वायु पौद्गलिक परमाणु

१—आधारग्रन्थ—पश्चिमी दर्शन (ले० डा० दीवानचन्द)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं जो अनेक रूपों में परिवर्तित होते रहते हैं। इनमें यद्यपि निरन्तर परिवर्तन होता रहता है; किन्तु ये अपने पौद्गलिक स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं। छोंह द्रव्य उत्पाद व्यय और ध्रौव्य स्वभाव से युक्त हैं और अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।

इलिया के सम्प्रदाय (जिसमें **पार्मेनाइडिस** और **जीनोफेनीज** के नाम प्रमुख हैं) वालों का कहना था कि दृष्टि जगत असत् है, आभास मात्र है। भाव और अभाव, सत् और असत् में कोई मेल का बिन्दु नहीं है। सत् और असत् से उत्पन्न नहीं हो सकता, न सत् असत् बन सकता है। जगत का प्रवाह जो हमें दिखाई देता है, माया हैं। इसमें सत् या भाव का कोई अंश नहीं। **जैनदर्शन** के अनुसार दृष्ट जगत सर्वथा असत् अथवा आभास मात्र नहीं है। यदि कार्य को सर्वथा असत् कहा जाय तो वह आकाश पुष्प के समान न होने रूप ही है। यदि असत् का भी उत्पाद माना जाय तो फिर उपादान कारण का कोई नियम नहीं रहता और न कार्य की उत्पत्ति का कोई विश्वास ही बना रहता है।[2] गेहूँ बोकर उपादान कारण के नियमानुसार हम यह आशा नहीं रख सकते कि उससे गेहूँ ही पैदा होंगे। असदुत्पाद के कारण उससे चने, जौ या मटरादिक भी पैदा हो सकते हैं और इसलिए हम किसी भी उत्पादन कार्य के विषय में निश्चिन्त नहीं रह सकते। इस तरह सारा ही लोक व्यवहार बिगड़ जाता है और यह सब प्रत्यक्षादिक के विरुद्ध है।[3] भाव और अभाव, सत् और असत् में कोई मेल का बिन्दु न हो-ऐसा भी नहीं है। भाव और अभाव, सत् और असत् एक ही वस्तु में अविरोध रूपसे विद्यमान हैं। द्रव्य, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा कथन किए जाने पर अस्ति है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव से कथन किए जाने पर नास्ति है।[4] जैसे-भारत स्वदेश भी है और विदेश भी है। देवदत्त अपने पुत्र की अपेक्षा पिता है और अपने पिता की अपेक्षा पुत्र भी हैं।

पार्मेनाइडिस (५ वीं शती ई० पूर्व) का कहना था कि सत् नित्य और अविभाज्य है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता; क्योंकि परिवर्तन तो असत् का लक्षण है। **जैनाचार्यों** ने द्रव्य का लक्षण सत् मानते हुए भी उसे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्ययुक्त माना है।[5] एक जाति का अविरोधी जो क्रमभावी भावों का प्रवाह, उसमें पूर्वभाव का विनाश 'व्यय' है, उत्तर-भाव का प्रादुर्भाव 'उत्पाद' है और पूर्व उत्तर भावों के व्यय उत्पाद होने पर भी स्वजाति का अत्याग 'ध्रौव्य' है। ये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य सामन्य कथन से द्रव्य से अभिन्न हैं और विशेष आदेश से भिन्न हैं, युगपद् वर्तते हैं और स्वभावभूत हैं।[6] इस प्रकार वस्तु को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य मुक्त मान लेने पर परिवर्तन रहित नित्य वस्तु का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता है। **आ० समन्तभद्र** ने कार्य-कारणादि के एकत्व (अविभाज्यता) का भी विरोध किया है। उनका कहना है कि कार्य कारणादि का सर्वथा एकत्व माना

२—यद्यसत् सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत्।
मोपादाननियमो ऽ भून्माऽऽश्वासः कार्यजन्मनि ॥
—आचार्य समन्तभद्रः आप्तमीमांसा—४२

३—देवागमस्तोत्र—भाष्य (पं० जुगलकिशोर मुख्तार)—४२

४—तत्र द्रव्य स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावैरादिष्ट भस्ति द्रव्यं, परद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टं नास्ति द्रव्यम्—
—पंचास्तिकाय—१४ (अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका)

५—दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ॥
—पंचास्तिकाय—१०

६—वही - अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका, पृष्ठ—२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाय तो कारण तथा कार्य में से किसी एक का अभाव हो जायगा और एक के अभाव में दूसरे का भी अभाव होगा, क्योंकि उनका परस्पर में अभिनाभाव है।[7] तात्पर्य यह है कि कारण कार्य की अपेक्षा रखता है। सर्वथा कार्य का अभाव होने पर कारणत्व बन नहीं सकता और इस तरह सर्व के अभाव का प्रसंग आ जाता है।

जीनोफेनीज (४६५ ई० पूर्व) ने यह बताने का प्रयत्न किया कि गति का कोई अस्तित्व नहीं है। **जैनधर्म** में जीव और पुद्गलों की गति में नियामक धर्मद्रव्य को स्वीकार किया गया है। इसके लिए यहां आगम और अनुमान प्रमाण प्रस्तुत किए गये हैं। अनुमान प्रमाण उपस्थित करते हुए कहा गया है कि जैसे अकेले मिट्टी के पिंड से घड़ा उत्पन्न नहीं होता, उसके लिए कुम्हार, चक्र, चीवर आदि अनेक बाह्य कारण अपेक्षित होते हैं उसी प्रकार पक्षी आदि की गति और स्थिति भी अनेक बाह्य कारणों की अपेक्षा कराती है। इनमें सबकी गति और स्थिति के लिए साधारण कारण क्रमशः धर्म और अधर्म द्रव्य होते हैं। यदि यह नियम बनाया जाय कि 'जो-जो पदार्थ प्रयक्ष से उपलब्ध न हों उनका अभाव है तो सभी वादियों को स्वसिद्धान्त-विरोध दोष होता है; क्योंकि सभी वादी अप्रत्क्ष पदार्थों को स्वीकार करते ही हैं।[8]

हिरैक्लिटस (५३५—४७५ ई० पूर्व०) का कहना था कि अग्नि विश्व का मूलतत्व है। मूल अग्नि अपने आपको वायु में परिवर्तित करती है, वायु जल बनती है और जल पृथ्वी का रूप ग्रहण करता है। यह नीचे की ओर का मार्ग है। इसके विपरीत ऊपर की ओर का मार्ग है। इसमें पृथ्वी जल में, जल वायु में तथा वायु अग्नि में बदलते हैं। **जैनदर्शन** अग्नि आदि के परमाणु को वायु आदि के परमाणुओं के रूप में बदलना तो मानता है; किन्तु उनका मूल पौद्-गलिक परमाणु ही हैं। पुद्गल विश्व के निर्माण कर्ता छह द्रव्यों में एक है। **हिरैक्लिटस** के अनुसार संसार में स्थिरता का कहीं पता नहीं चलता; अस्थिरता ही विद्यमान है। जो कुछ है, क्षणिक है। हिरैक्लिटस के इस क्षणभंगवाद की तुलना बौद्धों के क्षणभंगवाद से की जाती है। आ० हेमचन्द्र ने कहा है—'यदि वस्तु का स्वभाव क्षणभंगुर ही माना जाय तो पूर्वकृत कर्मों का फल बिना भोगे ही नष्ट हो जायगा, स्वयं नहीं किए हुए कर्मों का फल भी भोगना पड़ेगा तथा संसार का मोक्ष का और स्मरण शक्ति का नाश हो जायगा।[9] तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु क्षणस्थायी मानने पर आत्मा कोई पृथक् पदार्थ नही बन सकता तथा आत्मा के न मानने पर संसार नहीं बनता; क्योंकि क्षणिकवादियों के मत में पूर्व एवं अपर क्षणों में कोई सम्बन्ध न होने से पूर्वजन्म के कर्मों का जन्मान्तर में फल नहीं मिल सकता। यदि कहो कि सन्तान का एक क्षण दूसरे क्षण से सम्बद्ध होता है, मरण के समय रहने वाला ज्ञानक्षण भी दूसरे विचार से सम्बद्ध होता है, इसलिए संसार की परम्परा सिद्ध होती है—यह सब कथन ठीक नहीं है; क्योंकि सन्तान क्षणों का परस्पर सम्बन्ध करने वाला कोई पदार्थ नहीं है, जिसमें दोनों क्षणों का परस्पर सम्बन्ध हो सके। आत्मा के न मानने पर मोक्ष भी सिद्ध नहीं होता; क्योंकि संसारी आत्मा का अभाव होने से मोक्ष किसको मिलेगा क्षणभंगवाद में स्मृतिज्ञान भी नहीं बन सकता,

---

७—एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाऽभावोऽविनाभुवः ॥
—देवागमस्तोत्र—६९

८—तत्वार्थवार्तिक—५/१७/३२—३५

९—कृतप्रणाशा ऽ कृतकर्मभोग भवप्रमोक्षस्मृतिभंगदोषान् ।
उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभंगमिच्छन्नहोमहासाहसिकः परस्ते ॥१८॥
—स्याद्वाद मंजरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि एक बुद्धि से अनुभव किए हुए पदार्थों का दूसरी बुद्धि से स्मरण नहीं हो सकता। स्मृति के स्थान में सन्तान को अलग पदार्थ मानकर एक सन्तान का दूसरी सन्तान के साथ कार्य - कारणभाव मानने पर भी सन्तान क्षणों की परस्पर भिन्नता नहीं मिट सकती; क्योंकि क्षणभंगवाद में सम्पूर्ण क्षण परस्पर भिन्न हैं।

ल्युसिप्पस (४८० ई० पूर्व) ने मूलतत्व परमाणु माना है। हम इसे देख नहीं सकते, इसका विभाजन नहीं हो सकता, यह ठोस है, नित्य है। परमाणुओं के योग से सारे पदार्थ बनते हैं। इन परमाणुओं में मात्रा और आकृति का भेद है। इस भेद के कारण उनकी गति भी एक समान नहीं होती। सारी क्रिया इस गति का फल है। गति के लिये अवकाश की आवश्यकता है। ल्युसिप्पस ने परमाणुओं के साथ शून्य अवकाश को भी मूलतत्व स्वीकार किया। पदार्थो में और अवकाश में भेद यह है कि पदार्थ अवकाश का भरा हुआ भाग है। इस भेद को दृष्टि में रखते हुए विश्व अशून्य और शून्य में विभक्त किया गया है। ल्युसिप्पस ने प्राकृत जगत के समाधान के लिए किसी अप्राकृत तत्व या शक्ति का सहारा नहीं लिया। उसके मत में जो कुछ होता है, प्राकृत नियम के अनुसार होता है, यहाँ किसी प्रयोजन का पता नहीं चलता।

जैन दर्शन में पुद्गल के दो भेद कहे गये हैं—१ अणु और २ स्कन्ध। जिसका आदि, मध्य और अन्त एक है और जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं—ऐसा जो विभाग रहित द्रव्य है, वह परमाणु है।[10] विश्व का मूलतत्व केवल परमाणु रूप पुद्गल द्रव्य न होकर छह द्रव्य है। परमाणु में भी उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्यपना पाया जाता है। अतः वह नित्यानित्य अथवा कथंचित नित्य और कथंचित् अनित्य है, सर्वथा नित्य नहीं हैं। पुद्गल का सबसे सूक्ष्म अविभागी अंश होने के कारण परमाणुओं में मात्रा और आकृति का भेद नहीं होता यह भेद उसके स्कन्ध बनने पर होता है। जीव और पुद्गलों की गति में सहायक धर्मद्रव्य है।[11] क्रिया कालद्रव्य का उपकार है।[12] अवगाह देना आकाश द्रव्य का उपकार है।[13] यह आकाश दो प्रकार का है—(१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश। जितने आकाश में लोक है, वह लोकाकाश है; शेष अलोकाकाश है। लोकाकाश में छहों द्रव्य पाये जाते हैं और अलोकाकाश में केवल आकाश द्रव्य ही पाया जाता है।

एनैक्सेगोरस (५००-४२८ ई० पूर्व) का कथन है कि जगत का मूल कारण असंख्य प्रकार के परमाणुओं की असीम मात्रा है। यह सामग्री आरम्भ में पूर्णतया व्यवस्थाहीन थी। अब सोने, चांदी, मिट्टी जल आदि के परमाणु एक प्रकार के हैं। प्रारम्भ में ये सारे एक दूसरे से मिले थे। उस समय न सोना था, न मिट्टी थी। अव्यवस्थित दशा से व्यवस्था कैसे पैदा हुई? स्वयं परमाणुओं में तो ऐसी समझ की क्रिया की योग्यता न थी, यह क्रिया चेतन की अध्यक्षता में हुई। इस चेतन सत्ता को एनैक्सेगोरस ने 'बुद्धि' का नाम दिया।

ऊपर कहा गया है कि **जैनदर्शन** में लोक छह द्रव्यों से बना हुआ निरूपित है, केवल परमाणुओं से निर्मित नहीं है। परमाणुओं का मिलना-बिछुड़ना अनादि अनादि काल से अपने आप होता आया है। ऐसा नहीं है कि प्रारम्भ में परमाणु अव्यवस्थित थे तथा अब चेतन के द्वारा व्यवस्थित हो गए हैं। अणु की उत्पत्ति भेद से

१०—अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदिये गेज्झं।
जं दव्वं अविभागी तं परमाणुं विआणाहि॥ स० सि० पृ०—२२१

११—'गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः॥ तत्वार्थ सू० ५/१७

१२—'वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य॥ वही - ५/२२

१३—'आकाशस्यावगाहः'—वही - ५/१८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है,[14] न संघात से ही होती है और न भेद और संघात-इन दोनों से ही होती है। भेद और संघात से चाक्षुष स्कन्ध बनता है।[15]

प्रोटेगोरस (४८०-४११ ई० पूर्व) ने इन्द्रिय जन्य ज्ञान के अतिरिक्त अन्य प्रकार के ज्ञान को नहीं माना। प्रोटेगोरस का यह कथन चार्वाक-दर्शन से मिलता जुलता है, क्योंकि चार्वाक ने भी प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का प्रमाण भी नहीं माना। इसके खण्डनस्वरूप **जैनदार्शनिकों** ने धर्मकीर्ति के उस कथन को प्रायः उधृत किया है, जो उन्होंने अनुमान प्रमाण की सिद्धि के प्रसंग में कहा है। तदनुसार 'किसी ज्ञान में प्रमाणता और किसी ज्ञान में अप्रमाणता की व्यवस्था होने से, दूसरे (शिष्यादि) में बुद्धि का अवगम करने से और किसी पदार्थ का निषेध करने से प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान प्रमाण का सद्भाव सिद्ध होता है। प्रमाणता-अप्रमाणता का निर्णय स्वभाव हेतु जनित अनुमान से, कार्य से कारण का ज्ञान कार्य हेतु जनित अनुमान से अभाव का ज्ञान अनुपलब्धिहेतु जनित अनुमान से किया जाता है। इस प्रकार प्रोटेगोरस का केवल इन्द्रियजन्य ज्ञान को ही स्वीकार करना सिद्ध नहीं होता है।

गार्गियस (४२७ ई० पूर्व) ने निम्न तीन धारणाओं को सिद्ध करने का यत्न किया—

१. किसी वस्तु की भी सत्ता नहीं।
२. यदि किसी वस्तु का अस्तित्व है तो उसका ज्ञान हमारी पहुँच के बाहर है।
३. यदि ऐसे ज्ञान की संभावना है तो कोई मनुष्य अपने ज्ञान को किसी दूसरे तक पहुँचा नहीं सकता।

जैनदर्शन के अनुसार सत्ता सब पदार्थों में है। वस्तु की सत्ता को प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान के द्वारा जाना जाता है। कोई भी मनुष्य अपने ज्ञान को किसी दूसरे तक पहुँचाने में निमित्त हो सकता है।

पश्चिम में सुकरात—(४६९-३९९ ई० पूर्व) लक्षण और आगमन दोनों का जन्मदाता है। इसलिए उसका स्थान चोटी के दार्शनिकों में है। उसके अनुसार ज्ञान के कई स्तर हैं। मैं एक घोड़े को देखता हूँ। उसका कद विशेप कद है। उसका रंग विशेष रंग है। उसकी विशेषताओं के कारण मैं उसे अन्य घोड़ों से अलग करता हूँ। मेरा ज्ञान इन्द्रियजन्य ज्ञान है और यह ज्ञान किसी विशेष पदार्थ का वोध है। जिस घोड़े को मैंने देखा है, उसके न मौजूद होने पर भी उसका चित्र मेरी मानसिक दृष्टि में आ जाता है। किसी विशेष घोड़े को देखदे या उसका मानसिक चित्र बनाने के अतिरिक्त मेरे लिए यह भी सम्भव है कि मैं घोड़े का चिन्तन करूँ। ऐसे चिन्तन में मैं किसी विशेष रंग का ध्यान नहीं करता, क्योंकि यह रंग सभी घोड़ों का रंग नहीं। मैं ऐसे विशेषणों का ध्यान करता हूँ जो सभी घोड़ों में पाए जाते हैं और सबके सब किसी अन्य पशु जाति में नहीं मिलते। ऐसे चिन्तन का उद्देश्य घोड़ों का प्रत्यय निश्चित करना है। ऐसे प्रत्यय को शब्द में व्यक्त करना घोड़े का लक्षण करना है।

जैनदर्शन में पदार्थ स्वभाव से ही सामान्य-विशेषरूप माने गए हैं। उनमें सामान्य-विशेष की प्रतीति कराने के लिए पदार्थान्तर मानने की आवश्यकता नहीं।[16] आत्मा और पुद्गलादि पदार्थ अपने स्वकाल में ही अर्थात् सामान्य-विशेष नामक पृथक् पदार्थों की सहायता

१४—'भेदादणुः'—वही - ५/२८
१५—'भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः'—वही - ५/२८
१६—स्वतोऽनुवृत्तिव्यतिवृत्तिभाजो भावा न भावान्तरने यरूपा :
परात्म तत्वादथात्मतत्वाद् द्वयं वदन्तो ऽ कुशलाः स्खलन्ति ॥
—आ० हेमचन्द्र : अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के बिना ही सामान्य-विशेषरूप होते हैं। एकाकार और एक नाम से कही जाने वाली प्रतीति को अनुवृत्ति अथवा सामान्य कहते हैं। सजातीय और विजातीय पदार्थों से सर्वथा अलग होने वाली प्रतीति को व्यावृत्ति अथवा विशेष कहते हैं। इसी सामान्य तथा विशेष की व्याख्या सुकरात ने उदाहरण देकर की है।

प्लेटो (४२७-३४७ ई० पूर्व) के मतानुसार प्रत्ययों को जगत अमानवीय जगत है, इसकी वस्तुगत सत्ता है। दृष्ट पदार्थ इसकी नकल है। कोई त्रिकोण, जिसकी हम रचना करते है, त्रिकोण के प्रत्यय की पूर्ण नकल नहीं। प्रत्येक विशेष पदार्थ में कोई न कोई अपूर्णता होती ही है। इसी अपूर्णता का भेद विशेष पदार्थों को एक दूसरे से भिन्न करता है। सारे घोड़े, घोड़े के प्रत्यय की अपूर्ण नकलें हैं। कोई प्रत्यय पदार्थों पर आधारित नहीं। प्रत्यय तो उसकी रचना का आधार है। प्रत्यय और उसकी नकलों का भेद सामान्य और विशेष के रूप में पीछे प्रसिद्ध हुआ। प्रत्यय और आदर्श एक ही हैं।

जैनदर्शन उपर्युक्त प्रत्ययों एवं उसकी नकलों की मान्यता को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार दृष्ट पदार्थ किसी प्रत्यय की नकल नहीं, वास्तविक हैं। ज्ञान में ऐसी शक्ति है कि वह पदार्थों को जानता है। ज्ञान में झलकने के कारण ही पदार्थ 'ज्ञेय' कहलाते हैं। सामान्य से रहित विशेष और विशेष से रहित सामान्य की उपलब्धि किसी को नहीं होती। यदि दोनों की निरपेक्ष स्थिति मान ली जाय तो दोनों का ही अभाव हो जायगा। कहा भी है—

'विशेष रहित सामान्य खरविषाण की तरह है और सामान्य रहित होने से विशेष भी वैसा ही है।'[17]

वस्तु का लक्षण अर्थक्रियाकारित्व और यह लक्षण अनेकान्तवाद में ही ठीक-ठीक घटित हो सकता है। 'गौ' के कहने पर जिस प्रकार खुर, ककुद्, सास्ना, पूंछ, सींग आदि अवयवों वाले गोपदार्थ का स्वरूप सभी गोव्यक्तियों में पाया जाता है, उसी प्रकार भैंस आदि की व्यावृत्ति भी प्रतीत होती है।[18] अतएव एकान्त सामान्य को न मानकर सामान्य विशेषरूप ही मानना चाहिए।

प्लेटो ने ज्ञान के तीन स्तर स्वीकार किए। सबसे निचले स्तर पर विशेष पदार्थों का इन्द्रियजन्य ज्ञान है। ऐसे ज्ञान में सामान्यता का अंश नहीं होता। जो पदार्थ हमें हरा दिखाई देता है वही दूसरे को लाल दिखाई देता है और तीसरे को रंगविहीन दिखाई देता है। पदार्थों के रूप, उनके परिमाण आदि के विषय में ऐसा ही भेद होता है। प्लेटो के अनुसार ऐसा बोध, ज्ञान कहलाने का पात्र ही नहीं; इसका पद व्यक्ति की सम्मति का है। इससे ऊपर के स्तर का ज्ञान रेखागणित में दिखाई देता है। हम एक त्रिकोण की हालत में सिद्ध करते हैं कि उसकी कोई दो भुजाएँ तीसरी से बड़ी हैं और कहते हैं कि यह सभी त्रिकोणों की बावत सत्य है। गणित के प्रमाणित सत्यों से भी ऊँचा स्तर तत्वज्ञान का है, जिसमें सत् को साक्षात् देखते हैं। तत्वज्ञान ही वास्तव में ज्ञान कहलाने के योग्य है।

जैनदर्शन में प्रत्यक्ष के दो भेद माने गये हैं—(१) सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और (२) पारमार्थिक प्रत्यक्ष। इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। यह यथार्थरूप में परोक्ष ज्ञान ही है; क्योंकि इसमें इन्द्रिय और मन के आलम्बन की आवश्यकता होती है। इन्द्रिय और मन के द्वारा जो जानकारी होती है, वह पूरी तरह से अयथार्थ हो ऐसा नहीं है। काच; कामलादि रोग के कारण किसी को रंग के विषय में भ्रान्ति हो जाय तो इसका अर्थ यह नहीं है

१७—निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत् खरविषाणवत्।
सामान्यरहितत्वेन विशेषास्तद्वदेव हि॥—मीमांसा श्लोक वा०

१८—स्याद्वाद मंजरी—पृ० १२४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि सारे ऐन्द्रिकज्ञान भ्रांत हैं। यदि सारे ऐन्द्रिक ज्ञान को भ्रान्त माना जाय तो लोकव्यवहार का ही लोप हो जायगा। प्लेटो के ज्ञान के प्रथम दो स्तरों का समावेश सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष में हो जाता है। जनदर्शन में इसे ज्ञान की श्रेणी में रखा गया है। तत्वज्ञान इस ज्ञान से ऊँचा अवश्य है, क्योंकि इसमें युगपत् अथवा अयुगपत् सारे पदार्थों का ज्ञान होता है। केवल केवली भगवान् ही युगपत् सारे पदार्थों को जानते हैं, अन्य संसारी प्राणियों में से जिन्हें तत्वज्ञान होता है, वे अयुगपत (क्रमशः) ही पदार्थों को जानते हैं। तत्वज्ञानी जैसा सत् को देखता है, उसी प्रकार असत् को भी देखता है; क्योंकि वस्तु केवल भावरूप ही नहीं, अभावरूप भी है।

प्लेटो के अनुसार सृष्टि रचना एक सृष्टा की क्रिया है। सृष्टा प्रकृति को प्रत्ययों को रूप देता है। **जैनसिद्धान्त** के अनुसार सृष्टि स्वयं सिद्ध है। कोई सर्वदृष्टा सदा कर्मों से अछूता नहीं हो सकता, क्योंकि विना उपाय से उसका सिद्ध होना किसी तरह नहीं वतता।[19]

प्लेटो का प्रत्यय विशेप पदार्थों के बाहर था। अरस्तू (३८४-३२२ ई॰ पूर्व) का तत्व प्रत्येक पदार्थ के अन्दर है सभी घोड़े घोड़ा-श्रेणी में हैं, क्योंकि उन सबमें अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ सामान्य अंश भी विद्यमान हैं। यह सामान्य अंश उस सामान्य अंश से भिन्न है जो सारे गदहों में पाया जाता है और उन्हें गदहा बनाता है। अरस्तू ने भी प्लेटो के द्वैत को कायम रखा, परन्तु उसने दोनों के अन्तर को दूर कर दिया। पदार्थों का तत्व न वदलने वाला अंश, उनसे पृथक् वाहर नहीं, उनके अन्दर है। अरस्तू के सामान्य-विशेष की यह अवधारणा जैनसिद्धान्त से मिलती-जुलती है। अरस्तू मूल प्रकृति को आकारविहीन मानते थे। **जैनदर्शन** किसी एक द्रव्य को मूलप्रकृति नहीं मानता। उसके अनुसार पुद्गल द्रव्य ही केवल मूर्तिक है, शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं। अरस्तू के विवरण में चार प्रकार के कारणों का वर्णन है—

१—उपादान कारण	३—अकारात्मक कारण
२—निमित्त कारण	४—लक्ष्यात्मक कारण

जैनदर्शन में केवल दो कारण माने गए हैं—(१) उपादान कारण और (२) निमित्त कारण।

एपिक्यूरस (३४२-२७० ई॰ पूर्व) ने लोगों को मृत्यु और परलोक के भय से मुक्त करने का निश्चय किया। इसके लिए उसने **'डिमाक्राइ-टस'** के सिद्धान्त का आश्रय लिया। उसने कहा कि दृष्ट जगत परमाणुओं से वना है। इसके बनाने में किसी चेतन शक्ति का हाथ नहीं। देवी-देवता तो आप परमाणुओं से बने हैं। यद्यपि उनकी बनावट के परमाणु अग्नि के सूक्ष्म परमाणु हैं। जीवात्मा भी ऐसी ही परमाणुओं का संघात है। मृत्यु होने पर स्थूल परमाणु वातावरण में जा मिलते हैं। आत्मा के परमाणु विश्व अग्नि में जा मिलते हैं। इस जीवन के बाद कुछ रहता नहीं। नरक के दण्डों के विषय में कहना और सोचना व्यर्थ है।

जैनदर्शन भी लोगों को मृत्यु और परलोक के भय से मुक्त करने का मार्ग वतलाता है, किन्तु उसके अनुसार सम्यग्दर्शन (सम्यक् श्रद्धा), सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र की एकता मोक्ष का मार्ग है।[20] जगत छह द्रव्यों की निर्मिति है। इसके वनाने में किसी चेतन शक्ति हाथ नहीं है। देवी-देवता का शरीर पौद्गलिक है। उनके पोद्गलिक शरीर में एक क्षेत्रावगाही आत्मा है। ये आत्माएँ भिन्न-भिन्न शरीर में भिन्न-भिन्न हैं। जीवात्मा परमाणुओं का संघात न होकर उपयोग लक्षण वाला

१९—नाऽपृष्टः कर्मभिः शश्वद्विश्वास्ति कश्चन।
तस्यानुपाय सिद्धस्य सर्वथाऽनुपपत्तितः॥८॥
—आप्तपरीक्षा।

२०—सम्यग्दर्शन - ज्ञान - चारित्राणि मोक्षमार्गः। तत्वार्थसूत्र १/१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अमूर्त द्रव्य है। मृत्यु होने पर स्थूल शरीर का त्याग हो जाता है। तैजस और कार्माण शरीर मृत्यु के बाद भी जीव का साथ नहीं छोड़ते हैं। जीव का अस्तित्व अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा। वह केवल इसी जीवन के लिए नहीं है। नरकों का अस्तित्व है। उनके दण्डों के विषय में कहना और सोचना व्यर्थ नहीं है।

एपिक्यूरस का यह मत जैनदर्शन से मिलता है कि संसार में जो कुछ हो रहा है, वह सब प्राकृत नियम के अधीन हो रहा है, इसमें किसी चेतन सत्ता का प्रयोजन दिखाई नहीं देता। मनुष्य स्वाधीनता के उचित प्रयोग से अपने आप को सुखी बना सकता है। एपिक्युरस ने आरम्भ में क्षणिक तृप्ति को भले ही महत्व दिया हो किन्तु पीछे उसने दुःख की निवृत्ति को ही आदर्श समझा। किसी प्रकार की स्थिति में विचलित न होना, हर स्थिति में सन्तुलन बनाए रखना भले पुरुष का चिन्ह है। दार्शनिक का काम ऐसा स्वभाव बनाना और दूसरों को ऐसा स्वभाव बनाने में सहायता देना है। **जैनदर्शन** में भी धर्म उसे ही कहा गया है जो प्राणियों को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में पहुँचा दे।[21] **आ० कुन्दकुन्द** ने मोह और क्षोभ से रहित आत्मा के साम्य परिणाम अथवा चारित्र को धर्म कहा है।[22]

एपिक्यूरस का विचार था कि अपनी आवश्यकताओं को कम करो। इससे मन को शान्ति प्राप्त होगी। **जैनदर्शन** का अपरिग्रहवाद भी यही है। एपिक्युरस सुखी जीवन के लिए सादगी, बुद्धिमत्ता और न्याय के साथ मित्रता को आवश्यक समझता था। प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव रखना जैनों का ही मूल-मन्त्र है।

एपिक्यूरस ने कहा था कि कोई घटना अपने आप में अच्छी या बुरी नहीं, हमारी सम्मति उसे अच्छा या बुरा मानती है। क्या किसी पुरुष ने मेरा अपमान किया है? यह तो मेरे समझने की बात है। यदि मैं समझूँ कि अपमान हुआ है और यदि समझूँ कि नहीं हुआ, तो नहीं हुआ। मेरी घड़ी किसी ने उठाली है। क्या इससे मेरी हानि हुई है? यह भी समझने का प्रश्न है। यदि मैं समझूँ कि मुझे घड़ी की आवश्यकता ही नहीं है तो जो कुछ मैंने खोया है, उसकी कोई कीमत ही नहीं। हानि कहाँ हुई है? तुम स्वाधीन हो। अपनी स्वाधीनता का उचित प्रयोग करके विश्वास करो कि तुम्हारे लिए कोई घटना अभद्र नहीं हो सकती। एपिक्यु-रस जैसी ही बात सम्यक्दृष्टि के विषय में **पं. बनारसीदास** जी ने कहा है—

स्वारथ के साँचे परमारथ के सांचे चित।
साँचे-साँचे बैन कहैं साँचे जैनमती हैं॥
काहू के विरुद्ध नाहिं परजाय बुद्धि नाहिं।
आतम गवेषी न गृहस्थ हैं न जती हैं॥
ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दीसै घट में प्रकट सदा।
अन्तर की लच्छी सौं अजाची लच्छपती हैं॥
दास भगवन्त के उदास रहैं जगत सों।
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं॥

—नाटक समयसार

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यूनान के दार्शनिकों की जो समस्याएँ और अपूर्णताएँ थीं, उनका समुचित समाधान जैनदर्शन में प्राप्त होता है, क्योंकि जैनदर्शन का आधार सर्वज्ञ की वाणी है। इसका अनेकान्तवाद प्रत्येक ऐकान्तिक पहलू के सामने आने वाली कठिनाई को दूर करने में समर्थ है। इस प्रकार प्रत्येक दार्शनिक के परिप्रेक्ष्य में जैनदर्शन का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। ▭

—प्राध्यापक (संस्कृत) वर्द्धमान डिग्री कालेज
जैनमन्दिर के पास; बिजनौर (उ०प्र०)

२१—देशयामि समीचीनं धर्मं कर्म निवर्हणम।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे॥
—रत्नकरण्डश्रावकाचार

२२—चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समेत्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥ —प्रवचनसार

Ganesh.Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत भाषा एवं आधुनिक भाषाएं

डा० प्रेम सुमन जैन एम.ए. साहित्याचार्य पी-एच.डी.

डा० श्री 'सुमन' जी इस पीढ़ी के बहुभाषाविज्ञ प्रतिभावान् युवा-विद्वान् हैं। संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत; पाली और अंग्रेजी भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार है। प्राकृत भाषा पर तो आपका असाधारण अधिकार है। इस पर आपकी अनेक मौलिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आपके द्वारा सम्पादित तथा अनूदित एवं मौलिक रूप से लिखित कई ग्रन्थ प्रकाशित हैं। कविता करने का भी आपको अच्छा अभ्यास है। अनेकान्त, श्रमण, श्रमणोपासक, तीर्थंकर, तुलसीप्रज्ञा जैसे प्रतिष्ठित पत्रों में विद्वत्ता एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते ही रहते हैं। आप परिश्रमी, लगनशील, उच्चकोटि के सिद्धहस्त लेखक व सुकवि हैं। थोड़े ही समय में आपने साहित्यिक क्षेत्र में असाधारण सफलता हासिल की है। वर्तमान में आप उदयपुर विश्वविद्यालय में जैनविद्या एवं प्राच्यविभाग में अध्यक्ष पद पर सेवारत हैं। भविष्य में आपसे बहुत अपेक्षाएँ हैं।

प्रस्तुत लेख आपके अगाध पाण्डित्य, व्यापक दृष्टि, गहन व विशद अध्ययन और सूक्ष्म विवेचन का प्रतीक है। आधुनिक भाषाओं के सन्दर्भ में प्रामाणिक, सटीक प्राकृतभाषा का विवेचन यहाँ पदनीय है।

—सम्पादक

भारत में प्राचीन समय में जो भाषाएं प्रचलित थीं उनमें प्राकृत भाषा का स्थान महत्वपूर्ण है। अनेक भाषाविदों ने प्राकृत भाषा को प्राचीन एवं आधुनिक भाषाओं के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्वीकार किया है। प्राकृत भाषा एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए प्राकृत के स्वरूप एवं भाषाओं के विकास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

भारतीय भाषाओं का विकास तीन प्रमुख कालों में हुआ है। ईसा से ६०० वर्ष पूर्व तक जो भाषाएं यहाँ प्रचलित थीं उन्हें प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएं कहा जाता है। इनमें वैदिक भाषा एवं संस्कृत प्रमुख थीं। इनके साथ-साथ जो जनभाषाएं प्रचलित थीं। उन्हें प्राकृत कहा गया है। भगवान् बुद्ध एवं महावीर के समय से १००० ईस्वी तक जिन प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है उन्हें मध्यकालीन आर्यभाषाएं कहते हैं। दसवीं शताब्दी के बाद विकसित भाषाओं को आधुनिक आर्य-भाषाएं नाम दिया गया है। प्राकृत का सम्बन्ध इन तीनों कालों में विकसित भाषाओं के साथ बना रहा है।

वैदिक भाषा का विकास उस समय की लोकभाषाओं से हुआ है। उनमें जो 'प्राच्या' नाम की जनभाषा थी उसने प्राकृत को विकसित किया है। अतः विकास की दृष्टि से वैदिक भाषा एवं प्राकृत तत्कालीन लोकभाषा से उत्पन्न सहोदरा हैं। इसलिए इन दोनों में कई साम्य हैं। विभक्तियों के प्रयोग की कमी, लिंग की अनियमितता तथा शब्द अथवा धातुरूपों में विकल्प की बहुलता वैदिक भाषा एवं प्राकृत इन दोनों में पाई जाती है। देशी शब्दों के प्रयोग भी दोनों में मिलते हैं। अतः वैदिक भाषा और प्राकृत का ज्ञान एक-दूसरे को समझने में पूरक है।

संस्कृत के साथ प्राकृत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्योंकि इन दोनों भाषाओं के विकास का समय एवं क्षेत्र प्रायः समान रहा है। प्राकृत भाषा में संस्कृत के जितने शब्दों का प्राकृतीकरण किया गया है, लगभग उतनी ही मात्रा में संस्कृत ने लोकभाषा के शब्दों का संस्कृतीकरण किया है। कोई भी भाषा अन्य भाषा के शब्दों एवं स्वरूप के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकती। संस्कृत में महाकाव्य कथा, नाटक, गद्य आदि की जितनी विधाएं हैं, प्राकृत में भी लगभग उन सभी विधाओं पर पर्याप्त रचनाएं हैं। संस्कृत के नाटकों का अधिकांश कथोपकथन प्राकृत में होता है। संस्कृत के अलंकार ग्रन्थों में उदाहरण के रूप में प्राकृत की गाथाएं प्रस्तुत की जाती रही हैं। अतः विद्वत्-जगत् में संस्कृत के अध्ययन के लिए प्राकृत का ज्ञान अपरिहार्य है। उसी तरह प्राकतशिक्षण के क्षेत्र में संस्कृत से परिचित होना जरूरी है।

भारतीय भाषाओं में मुक्तक काव्य की परम्परा का शुभारम्भ प्राकृत भाषा से ही होता है। पहली शताब्दी में महाकवि हाल ने गाथासप्तशती नामक प्राकृतग्रन्थ में प्राकृत की ७०० गाथाओं का संकलन किया है, जिनके विषय भारतीय भाषाओं के मुक्तक-काव्य के लिए उपजीव्य रहे हैं। संस्कृत का अमरुशतक, अपभ्रंश भाषा का पाहुडदोहा, मराठी की ज्ञानेश्वरी, राजस्थानी भाषा की सतसईयाँ तथा हिन्दी में बिहारी की सतसई आदि रचनाएं प्राकृत की गाथा सप्तशती से बहुत प्रभावित हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

गाथाकार कहता है कि लोगों में सुना जाता है कि मेरा कठोरहृदय प्रियतम कल प्रवास को चला जायेगा। अतः हे भगवती रात्रि, तू इतनी बढ़ जा कि जिससे वह कल कभी हो ही नहीं। यथा —

कल्लं किर खर-हियओ पवसिहिइ पिओत्ति सुण्णइ जणम्मि।
तह वड्ढ भयवइ निसे, जह से कल्लं चिय न होइ॥

इस बात को बिहारी अपने शब्दों में कहता है—

सजन सकारे जायेंगे नैंन मरेंगे रोय।
या विधि ऐसी कीजिए फजर कबहूँ न होहि॥

इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्राकृत साहित्य एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भरे पड़े हैं। सही व्याख्या के लिए प्राकृत भाषा का अनुशीलन आवश्यक है।

मध्ययुगीन आर्य भाषाओं में पालि एवं अपभ्रंश भाषाओ की भी स्वतन्त्र परम्परा है। इनका विशाल साहित्य है। प्राकृत भाषा का इन दोनों भाषाओं के साथ निकट का सम्बन्ध है। पालि भाषा यदि प्राकृत के पूर्व रूप को प्रगट करती है तो अपभ्रंश भाषा उसके उत्तर-कालीन रूप को। प्राकृत एवं आधुनिक भाषाओं के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए अपभ्रंश बीच की महत्वपूर्ण कड़ी है। ईसा की छठी शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक अपभ्रंश का युग था। इसके बाद प्रान्तीय भाषाओं की विशेषताएं उभरकर सामने आने लगती हैं।

आधुनिक भाषाओं ने संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश से बहुत कुछ ग्रहण कर अपने स्वरूप को निर्मित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है। यहाँ एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। हिन्दी में 'कौन' शब्द का व्यवहार होता है! इस शब्द का विकास यात्रा को यदि हम देखें तो पता चलता है कि किस प्रकार एक ही शब्द विभिन्न भाषाओं में प्रयुक्त होता है।

प्राकृत का कोउण शब्द अपभ्रंश में कउण, गुजराती में कवण, राजस्थानी में कूंण तथा हिन्दी में कौन के रूप में प्रयुक्त होता है। किन्तु संस्कृत में इसे कः पुनः कहना होगा। इसी प्रकार राजस्थानी एवं हिन्दी में एक बहुत प्रचलित शब्द है—'जौहर'। जौहर का अर्थ मरना कैसे हो गया, यह प्राकृत की परम्परा से पता चलता है। प्राकृत साहित्य में मृत्यु के लिए जमहर शब्द का प्रयोग मिलता है। अर्थात् यमराज का घर। अपभ्रंश में यही जउहर के रूप में प्रयुक्त है तथा वही राजस्थानी में जौहर हो गया।

राजस्थानी एवं गुजराती भाषाओं पर प्राकृत अपभ्रंश का प्रभाव देखने को मिलता है। कई विद्वानों ने इस पर विशेष प्रकाश डाला है। कुछ उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं। मेवाड़ी में केइ है, मारवाड़ी में कंइ हुओ, ढूंढाड़ी में कांई छै आदि प्रयोगों में कइ शब्द प्राकृत कानि एवं अपभ्रंश कांइ का रूपान्तर है। प्राकृत की कई क्रियाएं राजस्थानी में थोड़े परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होती हैं। यथा—

बनाता है — के लिए प्राकृत घडइ राज० घड़े
मांगता है — के लिए प्राकृत जांचइ राज० जाँचे
होगा — के लिए प्राकृत होसइ राज० होसी

प्रसिद्ध विद्वान् एल० पी० टेसीटरी ने राजस्थानी एवं गुजराती भाषाओं के स्वरूप पर प्राकृत के प्रभाव को विशेष रूप से स्पष्ट किया है। गुजराती में प्राकृत के किम एवं इम सर्वनाम केम छै, एम छै आदि रूप में प्रयुक्त होते हैं। कई गुजराती शब्द सीधे प्राकृत से ग्रहण किये गये हैं। जैसे—

स्नान - के लिए प्राकृत अंगोहल गुज० अंघोल
गहरा - के लिए प्राकृत उण्डा गुज० उण्डा
लड़का - के लिए प्राकृत छोयरा गुज० छोकरा
मुर्गी - के लिए प्राकृत कुक्कड़ी गुज० कूकड़ी

मराठी भाषा का प्राकृत से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो शब्द ५-६ वीं शताब्दी में प्राकृत - साहित्य में प्रयुक्त होते थे वे आज भी मराठी भाषा में बोले जाते हैं। जैसे—

करधनी - के लिए प्राकृत कच्छोट मराठी कसौटा
पत्थर - के लिए प्राकृत गार मराठी गार
कीचड़ - के लिए प्राकृत चिक्खल्ल मराठी चिखल
मुंह - के लिए प्राकृत तुंड मराठी तोंड
सीढ़ी - के लिए प्राकृत दद्दर मराठी दादर

इसी तरह भारत की अन्य आधुनिक भाषाओं के साथ प्राकृत का केवल विकास की दृष्टि से ही सम्बन्ध नहीं है, अपितु प्राकृत के शब्दों का वर्तमान में उनमें प्रयोग भी होता है। भोजपुरी, मैथली, बंगला, उड़िया, सिंधी एव पंजाबी भाषाओं ने भी प्राकृत-अपभ्रंश से अनेक प्रभावों को ग्रहण किया हैं। अतः प्राकृत भाषा का का वर्तमान युग में शिक्षण एवं अध्ययन होने से भारतीय संस्कृति की विरासत का तो पता चलेगा ही, साथ ही देश में भाषायी समन्वय का वातावरण भी बनेगा। देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए प्राकृत का शिक्षण दृढ़ भूमिका तैयार कर सकता है।

हिन्दी में प्राकृत के अनेक शब्द एवं क्रियाएं यथावत आज भी प्रयुक्त होती हैं। प्राकृत के कुछ शब्दों के हिन्दी अर्थ यहाँ प्रस्तुत हैं। जैसे—

प्रा० अक्खाड	=	अखाड़ा	डोरे	=	डोरा
उक्खल	=	ओखली	वप्प	=	वाप
कोइला	=	कोयला	बइल्ल	=	बैल
खड्डा	=	खड्डा	वड्डा	=	वड़ा
चेक्ख	=	चौखा	पत्तला	=	पतला
छइल्लो	=	छैला	साड़ी	=	साडी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यही स्थिति हिन्दी क्रियाओं की हैं। जैसे—

प्रा० कड्ढ	से	काढ़ना	खेल	=	खेलना
चुक्क	=	चूकना	छुट्ट	=	छूटना
देक्ख	=	देखना	वोल्ल	=	वोलना

न केवल हिन्दी भाषा और प्राकृत में कई समानताएं हैं, अपितु प्राकृत्यसाहित्य और हिन्दी-साहित्य की कई विधाओं में भी घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राकृत कवियों की कई अनुभूतियाँ हिन्दी में देखने को मिलती हैं। प्राकृत गाथा सप्तशती की विरहिन नायिका अपनी वांयी आँख से कहती है कि—हे वामाक्षि, यदि तेरे फरकने से आज मेरे प्रियतम आ जांय तो मैं दाहिने नेत्र को वन्द करके तुझसे ही उनका दर्शन करूंगी।' यथा—

फुरिए वामच्छि तुए जइ एहिइ सो पिओज्ज ता सुहरं।
संमीलिअ दाहिणअं तुह अवि एहं पलोइस्सं॥

बिहारी की नायिका यही सौभाग्य अपनी वांयी भुजा को देती है—

वाम बाहु फरकत मिलें जो हरि जीवनमूरि।
तो तोही सों भेटिहों. राखि दाहिनी दूरि॥

इस तरह प्राकृत भाषा एवं साहित्य जितना भारत की भाषाओं के साथ जुड़ा हुआ है, उतना ही उसकी संस्कृति के साथ भी। प्राकृत-काव्य की इसी महिमा को ध्यान में रखते हुए एक कवि ने कहा है —

पाइय-कव्वस्स णमो पाइयकव्वं च णिम्मियं जेंण।
ताणं चिय पणमामो पढिऊण जे विजाणन्ति॥

अध्यक्ष—जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग
उदयपुर विश्वविद्यालय

जुआ; चोरी, मांस, मद, वेश्या - रमण, शिकार।
पर - रमणी - रत व्यसन ये, सात कहे दुखकार॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन कथासाहित्य का वैशिष्ट्य

● डा० जगदीशचन्द्र जैन एम.ए., पी.एच.डी.

आदरणीय डा० सा० अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रकाण्ड पाण्डित्य के धनी, मौलिक ग्रन्थ प्रणेता, बहुभाषाविज्ञ, गम्भीर चिन्तक, आदर्श-शिक्षक, सफल शोध-निदेशक, साहित्योपासक, दर्शन, समाजशास्त्र तथा भाषाविज्ञान के पारंगत अध्येता विद्वान् हैं। ५० से भी अधिक श्रेष्ठ मौलिक ग्रन्थ आपके प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से अनेक ग्रन्थ विभिन्न विश्वविद्यालयों और शिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में निर्धारित हैं। प्राकृत साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ उ०प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुका है।

इस तरह आप में सफल सम्पादक, सिद्धहस्त लेखक, श्रेष्ठ अनुवादक, इतिहासकार तथा असाधारण क्षमताएँ है। हिन्दी तथा अंग्रेजी में आपके अनेक विद्वत्ता तथा शोधपूर्ण लेख देश-विदेश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं जिनसे जिज्ञासु तथा शोधकर्ता प्रेरणा तथा नूतन दिशाबोध प्राप्त करते रहते हैं।

आपने अपनी अधिकांश सेवाएँ प्राध्यापक के रूप में बम्बई विश्वविद्यालय को प्रदान की हैं; लेकिन विशेष अध्ययन तथा अध्यापन हेतु आप पं० जर्मनी, चीन, ब्राजील आदि देशों में भी वर्षों रहे हैं। वर्तमान में आप साओपालो (ब्राजील) में हैं। वहीं से यह लेख प्रेपितकर आपने हमें अनुगृहीत किया है।

प्रस्तुत लेख उनके अगाध पाण्डित्य, विशद एवं सूक्ष्म गहन अध्ययन का प्रतीक है। इसमें आपने जैनकथासाहित्य के माहात्म्य को भली-भाँति प्रदर्शित किया है तथा इसके उद्धार एवं प्रचार-प्रसार हेतु प्रयास करने की अपेक्षा भी की है। लेख पठनीय तथा विचारणीय है।

—सम्पादक

आधुनिक काल में जैनधर्म एवं जैनदर्शन का अध्ययन ही प्रायः विशेष रुचिकर होने से जैनकथा साहित्य के सर्वांगीण अध्ययन को यथोचित स्थान न मिल सका; इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। जैन प्राकृत एवं संस्कृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथा साहित्य भारतीय कथा साहित्य की एक अनुपम निधि है जिसमें अनेकानेक अनमोल रत्न सुरक्षित हैं। जिन देशी एवं विदेशी कतिपय विद्वानों को इस साहित्य के आलोकन का अवसर प्राप्त हुआ है उन्होंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इन विद्वानों का मत है कि जैन कथा साहित्य के अभाव में भारतीय कथा साहित्य की कितनी ही बहुमूल्य मणियों की प्राप्ति से हम वंचित ही रह गये होते।

जो महत्व वैदिक साहित्य में देवी-देवताओं की पौराणिक कथाओं का है, प्रायः वही महत्व जैन-बौद्ध साहित्य में लौकिक-धार्मिक कथाओं को दिया गया है। भगवान् महावीर अनेक उदाहरण, दृष्टांत, उपमा और तुलना आदि द्वारा अपने उपदेशों को स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाते थे। उनकी इन कथाओं का संकलन नायाधम्म कहाओ अथवा नाथधम्म कहाओ के रूप में द्वादशांग आगम में किया गया था। दुर्भाग्य से यह आगम विच्छिन्न माना जाता है; तथा परंपरागत उल्लेखों के आधार पर, वर्तमान में उपलब्ध श्वेताम्बरीय आगम को अपूर्ण एवं त्रुटित बताया जाता है। फिर भी इस आगम में दो अंडों, दो कछुओं और चार, पतोडओं आदि कथाओं के माध्यम द्वारा जो निर्ग्रन्थ श्रमणों को अपने धर्म में अटल रहने का उपदेश प्रस्तुत किया गया है, उससे निश्चय ही इन स्वाभाविक एवं सरल धर्मकथाओं की उपयोगिता पर प्रकाश पड़ता है। उत्तरकालीन जैन साहित्य में 'मधुबिन्दु दृष्टांत' आदि रोचक दृष्टांतों द्वारा कथासाहित्य को समृद्ध एवं रोचक बनाया गया। यह कथानक दिगम्बर-श्वेताम्बर साहित्य में ही नहीं, अपितु ब्राह्मण, बौद्ध, मुसलिम, ईसाई और यहूदी साहित्य में भी लोक प्रिय हुआ। विन्टरनित्स आदि विद्वानों ने इस दृष्टांत को 'भारतीय श्रमण संस्कृति' का प्रतीक माना है।

साहित्य की नींव प्रतिष्ठित करने में किस्से-कहानियों का बड़ा योगदान रहा है। पृथ्वी-आकाश; पशु-पक्षी और भूत-प्रेत आदि सम्बन्धी कितनी ही परम्परागत ऐसी कहानियाँ हैं जिनसे आदिमकालीन जातियों के सामाजिक जीवन का पता चलता है। निश्चय ही इन कहानियों से अद्भुत कल्पना शक्ति का सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि किस प्रकार आदिम कालीन मानव अत्रास्त-विक्ता की कल्पना कर अपने कठोर और कठिन जीवन को सुगमता से यापन करने में समर्थ हो सका था।

आगे चलकर भी कहानी मनो विनोद का एक मुख्य अंग माना जाता रहा। आज भी भी कहानी की पत्रिकायें दर्शन, राजनीति, समाज शास्त्र; विज्ञान आदि की पत्रिकाओं की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय मानी जाती हैं। चित्रपट जो आजकल मनोरंजन का सर्वाधिक लोकप्रिय साधन कहा जाता है, मुख्य रूप से रोचक कहानी पर ही आधारित है। संस्कृत साहित्य में कथा - कहानी को पाप हर्ता करा गया है। जब हम कोई सरस कहानी सुनते या पढ़ते हैं तो हमारा मन उल्लास से भर जाता है जिससे हमारे एकत्र हुए मनो विकारों का समार्जन होकर, अन्त करण की शुद्धि होती है। यूनान के दार्शनिक अरस्तू ने इसी संमार्जन को काव्य का गुण बताया है। संस्कृत के नाटकों का इसी दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है। भारतीय काव्य शास्त्र में रस सिद्धांत की उपपत्ति इसी दृष्टि को सामने रखकर बैठाई जा सकती है। प्राचीन जैन कथा साहित्य में दो मित्रों की कहानी आती है। दोनों किसी देश की पैदल यात्रा कर रहे थे। जब वे चलते चलते थक गये तो एक दूसरे से कहने लगे, "बोले, तुम मुझे चड्ढी चढ़ाकर ले चलोगे या मैं तुम्हें चढ़ाऊं ?" पहले मित्र ने उत्तर दिया, "नहीं नहीं; आओ, मैं ही तुम्हें ले चलूंगा।" यह सुनकर दूसरा मित्र हंसकर बोला, "मेरे दोस्त, तुम इतना भी नहीं समझते। किसी को चड्ढी चढ़ा ले चलने से रास्ते की थकान दूर नहीं होती, थकान दूर होती है कोई सरस रोचक कहानी कहने से। आओ, सुनाओ कोई रोचक आख्यान।" इससे कहानी का महत्व स्पष्ट है। कथा-कहानी केवल अन्तःकरण की शुद्धि अथवा मन और इन्द्रियों को विश्रान्ति देने में ही कारण नहीं, इसके माध्यम से गम्भीर राजनीति के सिद्धान्त भी हृदयंगम किये जा सकते हैं। पंडित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राज विष्णु शर्मा की कहानी प्रसिद्ध है जिन्होंने कथा के राजपुत्रों को राजनीति के प्रमुख अंगों—मित्र लाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि की शिक्षा देकर उन्हें एक कुशल शासक बनाया। आगे चलकर कथाओं या यह संकलन हितोपदेश नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जैन धर्म में प्रथमानुयोग को सर्वप्रमुख अनुयोग स्वीकार किया गया हैं, इसके बाद ही करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग का नाम आता है। प्रथमानुयोग में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती आदि ६३ शलाका-पुरुषों के जीवन-वृत्तान्त के अतिरिक्त समस्त जैन कथा-साहित्य का अन्तर्भाव किया जाता है। इससे पता लगता है कि जैन विद्वानों ने कथा-साहित्य को कितना महत्व प्रदान किया है। वस्तुतः कथा-साहित्य का अवलम्बन, लेकर ही कठिन, कठोर और नीरस समझे जाने वाले चारित्र-प्रधान अपने उपदेशों को जन साधारण तक पहुँचाने में वे सफल हो सके। जैन साधु सन्तों के लिये जनपद-विहार आवश्यक माना गया है; वे चातुर्मास को छोड़कर शेष आठ महीनों में एक जनपद से दूसरे जनपद में जनकल्याण के हेतु नीति, ज्ञान एवं शान्ति प्रधान उपदेश देते हुए भ्रमण किया करते थे। इस महान् कार्य को सम्पन्न करने के लिए उन्हें उस-उस जनपद के रीति-रिवाज, बोली एवं प्रचलित कथा कहानियों में निष्णात होने की आवश्यकता थी, क्योंकि ऐसा करने पर ही उनके उपदेश प्रभावशाली और रोचक बन सकते थे। कहने की आवव्यकता नहीं की साधु समाज की इस सर्वतोमुखी प्रवृत्ति के कारण जैन कथा साहित्य में अनेक लौकिक कथाओं का समावेश हुआ और साथ ही साथ विभिन्न जनपदों की बोलियां प्राकृत भाषाओं और प्राकृत साहित्य का महत्वपूर्ण अंग बन कर उसके साथ जुड़ गई। इस प्रकार की कथायें, अपभ्रंश तथा गुजराती, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी, ब्रज और मालवी आदि मध्यकालीन बोलियों में पाये जाने वाले कथा साहित्य में मौजूद हैं। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास की दृष्टि से भी इनका अध्ययन अत्यन्य उपयोगी है।

जैन विद्वानों ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिये मन भरकर कथा-साहित्य का उपयोग किया है। धार्मिक एवं पारलौकिक कथायें तो उन्होंने लिखीं ही—जिनमें वार-वार एक ही बात पढ़कर मन ऊब जाता हैं, लेकिन इन कथाओं का वैशिष्ट्य है सर्वतोमुखी लोकप्रिय लौकिक कथायें। जैनधर्म के अनुयायियों में वणिकों और महाजनों की प्रमुखता रही है जो धनार्जन करने के पश्चात् मुक्त-हृदय से अपनी दानशीलता का परिचय करते थे। ये व्यापारी सुवर्णद्वीप, रत्नद्वीप, सिंहलद्वीप यवन-द्वीप आदि द्वीपों की अपने पोतों द्वारा साहसिक यात्रायें करते थे। सार्थवाह अपने सार्थ के साथ छकड़ों और गाड़ियों में माल भरकर भयानक अरबी, नदी-नाले और दुर्गम पर्वतशृंखलाओं को पार करके सुदूर देशों में पहुँचते थे। चारुदत्त की कहानी जैनग्रन्थों में सुप्रसिद्ध है जो अपने साथियों के साथ अपने बल-पराक्रम से शंकुपथ (शिलाखण्डों में गाड़े हुए खीलों की सहायता से दुर्गम पर्वतों को लांघना), अजपथ (बकरे की पीठ पर सवार होकर अत्यन्त संकरे और वक्र मार्ग को पार करना) और वेत्रपथ (वेत्रलता की सहायता से वायु के झोंकों द्वारा के भीषण प्रवाह को लांख जाना) द्वारा दुर्गम रास्तों को पार कर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की रोमांचकारी साहसिक अद्भुत कथा-कहानियों को विदेशी कथा साहित्य का अंग बनने में देर न लगी। चारुदत्त की कथा अरबवा-वासियों की प्रिय 'अरेबियन नाइट्स' में संकलित सहस्र कहानियों की एक महत्वपूर्ण लड़ी बन गई।

अर्थप्रधान कथाओं के अतिरिक्त **श्रृंगारी कथाओं** के प्रणयन में भी जैन विद्वान पीछे न रहे। कितने ही काव्यग्रंथों की उन्होंने रचना की और कहना न होगा कि नख-शिख वर्णन-प्रधान रसों में प्रमुख माने जाने वाले श्रृंगार रस के बिना काव्यरचना सफल नहीं मानी जाती। जीवक चिन्तामणि के कर्ता, ईसा की १०-वीं-११ वीं शताब्दी के तमिल विद्वान् तिरुत्तकदेवर (संस्कृत में श्री दक्षदेव) द्वारा वर्णित जीवक के श्रृंगारी विवाहों का वर्णन पढ़कर लोगों को यह विश्वास करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही कठिन हो गया कि ग्रन्थ का प्रणेता अपने निर्विकारी व्रत में अडिग रह सका है। फलस्वरूप लेखक को जलते हुए अंगोरों को हाथ में लेकर अपनी परीक्षा देने के लिये बाध्य होना पड़ा। वस्तुतः श्रृंगारप्रधान रचनाओं को श्रवणकर श्रोताओं का मन इतना रम जाता था कि उनके मुकाबले में वैराग्य एवं त्याग प्रधान रचनायें उन्हें तुच्छ जान पड़ती थीं। इसके समाधान का एक ही मार्ग था कि रोगी के शरीर को स्वस्थ करने वाली कड़वी औषधि को मीठी चासनी में मिलाकर उसे खिलाया जाये। अप्रकाशित मज्झिमखंड के कर्ता धर्मदासगणि महत्तर ने अपने ग्रन्थ की भूमिका में इस विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है : जैसे कोई वैद्य अमृत के समान अपनी औषधि को, औषधि-पान की इच्छा न रखने वाले रोगी को यह कहकर औषधि का पान कराता है कि उसे मनचाही औषधि ही दी जा रही है, इसीप्रकार श्रृंगारप्रधान काम-कथा के बहाने धर्मकथा कहनी चाहिये।"

इसके अतिरिक्त जैन विद्वानों ने लोककल्याण के हेतु अन्य भी अनेक मनोरंजक लौकिक कथाओं का निर्माणकर भारतीय कथासाहित्य को समृद्ध वनाया। ईसा की आठवीं शताब्दी के विद्वान् सुप्रसिद्ध हरिभद्र सूरि ने अपनी विनोदात्मक शैली में धुत्तक्खाण (धूर्ताख्यान) नामक आख्यान की रचना की जिसमें उज्जैनी के किसी उद्यान में बैठे हुए मूलदेव, कंडरीक, एलापाड़, शश और खंड-पाणा नामक धूर्तशिरोमणि गपशप कर रहे है। उत्तरा-ध्ययन सूत्र की टीका में देवेन्द्रगणि ने मूलदेव और उज्जैनी की गणिका देवदत्ता का विस्तृत आख्यान प्रस्तुत किया है। आजकल प्रचलित हितोपदेश का संस्करण ११ वीं सदी के जैन विद्वान् पूर्णभद्रसूरि के संस्करण पर ही आधारित माना जाता है। विक्रमचरित, भरटद्वात्रिंशिका, शुकसप्तति, चौरपंचाशिका आदि अनेक लौकिक आख्यानों की रचना करके जैन विद्वानों ने कथासाहित्य को पल्लवित करने में पूरा-पूरा योगदान दिया। प्राकृत मिश्रित संस्कृत में लिखा हुआ श्वेताम्बरीय चूर्णी-साहित्य इस प्रकार की लौकिक कथाओं का अनुपम भंडार है जिसका यथोचित उपयोग अभी तक नहीं हो सका। आवश्यकचूर्णी में उज्जैनी के नटपुत्र रोहक की प्रत्युत्पन्नमति की कितनी ही कथाओं का संकलन है जिनकी तुलना बौद्धजातकों में वर्णित महोसध पंडित की कथाओं से की जा सकती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की कथायें विना किसी धार्मिक भेदभाव के लोक और समाज में प्रचलित थीं। आगे चलकर ये कथायें गुजरात-काठिया-वाड़ में अभयकुमार के नाम से मिथिला में गोनू झा के नाम में और मुगल साम्राज्य के जमाने में बीरवल अकबर के नाम से प्रचलित हो गईं।

जैन कथा साहित्य का एक दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है उसमें अन्तर्हित कथानक रूढ़ियां ('मोटिफ')। उदाहरण के लिये, सीता को अग्नि में प्रवेश कराकर उसके सतीत्व की परीक्षा किया जाना, एक कथानकरूढ़ि है। देखने में यह वात बड़ी अद्भुत जान पड़ती है और सामान्यतया ऐसी वातों पर विश्वास करने का मन नहीं होता। किंतु इस प्रकार की अनहोनी घटनाओं के घटित होने से कथा में रससंचार की प्रवलता के कारण उसकी मनोरंजकता में वृद्धि होती है। इस प्रकार की कथानक रूढ़ियां विश्वभर के कथासाहित्य में पाई जाती हैं। इस दिशा में खासकर पश्चिम के विद्वानों ने सराहनीय कार्य किया है। जिस प्रकार भाषा के क्षेत्र में भारतीय आर्यभाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से विश्व की विखरी हुई जातियों के वन्धुत्व पर प्रकाश पड़ता है, उसी प्रकार विश्व के लोक-कथानकों में पाई जाने वाली कथानक रूढ़ियों का तुलनात्मक अध्ययन निश्चय ही इस दिशा में एक कदम और आगे वढ़ने में उपयोगी सिद्ध होगा।

कथा साहित्य के सन्दर्भ में दिगम्बर और श्वेताम्बर विद्वानों द्वारा लिखे गये अनेकानेक कथाकोषों का संक्षिप्त उल्लेख कर देना अनावश्यक न होगा। अभी भी प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और कन्नड भाषाओं में लिखे गये अनेक कथाकोष अप्रकाशित दशा में पड़े हुए हैं जिनका प्रकाशित होना आवश्यक है। यहाँ डाक्टर आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये की विद्वत्तापूर्ण अंग्रेजी की विस्तृत प्रस्तावना के साथ, सिंधी जैन सीरीज द्वारा प्रकाशित हरिषेण के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृहत्कथा कोष का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। यह आजकल अप्राप्य है। यह ग्रन्थ तुलनात्मक कथा साहित्य एवं भाषा और कथानक रूढ़ियों की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही अपितु दिगम्बर और श्वेताम्बर संप्रदायों द्वारा स्वीकृत अनेक परम्पराओं का तुलनात्मक अध्ययन करने की दृष्टि से भी यह अत्यन्त उपयोगी है। इन पंक्तियों के लेखक ने हाल में लिखी हुई अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों पर इसकी चर्चा की है। आदरणीय सिद्धांतशास्त्री पंडित कैलाशचन्द्र जी ने कुछ समय पूर्व इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया था, किन्तु आजकल वह उपलब्ध नहीं है। पंडित जी ने भारतीय ज्ञानपीठ के एक परामर्शदाता की हैसियत से ज्ञानपीठ के अधिकारियों के समक्ष इस ग्रन्थ के पुनः प्रकाशन की योजना बनाकर प्रस्तुत की थी। इस योजना के साथ इन पंक्तियों के लेखक का नाम भी उन्होंने जोड़ा था। तत्पश्चात् वृहत्कथा कोष के प्रकाशन की रूपरेखा तैयार करके प्रस्तुत लेखक द्वारा अधिकारियों को प्रेषित की गई। बात वहीं की वहीं रुक गई। अब वीना के नाभिनन्दन जैन संस्कृत विद्यालय की भव्य पुनीत हीरक जयन्ती के महोत्सव पर यदि इस ग्रन्थराज के पुनः प्रकाशन की योजना को कार्यान्वित करने के संबध में किसी योजना पर विचार किया जा सके तो हम सब पुण्य के भागी बन सकेंगे।

साओ पाउलो
(ब्राजिल)

विशेष अध्ययन के हेतु लेखक की रचनायें :

१. प्राकृत साहित्य का इतिहास (१९६१)

२. प्राकृत जैन कथा साहित्य (१९७०)

३. द गिफ्ट ऑव लव एण्ड अदर
ऐंशियेण्ट टेल्स अबाउट वीमन (१९७६)

४. द वसुदेवहिण्डि—ऐन आथेण्टिक
जैन वर्जन ऑव द वृहत्कथा (१९७७)

५. नारी के विविध रूप (१९७८)

६. द जेनेसिस एण्ड ऑव
प्राकृत जैन नरेटिव लिटरेचर (शीघ्र ही प्रकाश्यमान)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनदर्शन एवं बौद्धधर्म

● डा० श्री कोमलचन्द्र जैन, एम ए, पी-एच. डी,
जैनदर्शनाचार्य; प्राकृताचार्य

डा० सा० काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत-पालि विभाग में प्राध्यापक हैं। इसी संस्कृत विद्यालय के गौरवशाली प्रतिभावान् स्नातक हैं। आप संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पालि और अंग्रेजी भाषाओं के अच्छे जानकार हैं। प्राकृत एवं पालि व्याकरण पर लिखे गये आपके दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में निर्धारित हैं। आप में सफल लेखक, प्रभावीवक्ता; सफलशोध निदेशक तथा सम्पादक, के अपूर्व गुण हैं। कविताएँ लिखने का भी आपको अच्छा अभ्यास है। प्रतिष्ठित पत्रों में आपके लेखों का प्रकाशन होता रहता है तथा सेमिनारों में आपके निबन्धों को बड़ा सराहा जाता है। आप तार्किक तथा क्रान्तिकारी विचारों के हैं।

प्रस्तुत लेख में डा० सा० ने जैन एवं बौद्धधर्मों का बड़ा अच्छा तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है, जो पठनीय है।

—सम्पादक

श्रमण संस्कृति की दो प्रमुख धाराएँ आज भी भारतीय संस्कृति में अपने प्रभावशाली अस्तित्व के साथ प्रवाहित हैं। उनमें से एक धारा जैनधर्म के रूप में तथा दूसरी धारा बौद्धधर्म के रूप में पांच व्रतों और पाँच शीलों का उपदेश जनकल्याण के लिए दे रही हैं।

जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में अनेक समानताएँ हैं। इन्हीं के आधार पर प्रो० लासेन आदि विद्वानों ने बुद्ध और महावीर को एक ही व्यक्ति बतला दिया था। कुछ समय बाद प्रोवेवर ने यह खोज की कि महावीर और बुद्ध दो अलग-अलग व्यक्ति थे, किन्तु जैनधर्म बौद्धधर्म की एक शाखामात्र है। इस खोज से जैनधर्म को पृथक् धर्म न मानकर कुछ दिनों तक बौद्धधर्म की शाखामात्र माना गया। अन्त में प्रो० याकोवी ने उक्त मत का खण्डन करते हुए यह सिद्ध किया कि जैनधर्म न केवल पृथक् धर्म है, अपितु वह बौद्धधर्म से प्राचीन भी है। बुद्ध के समकालीन महावीर तो जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर मात्र थे। उक्त मतों से जहाँ यह सिद्ध होता है कि जैनधर्म एक स्वतन्त्र और बौद्धधर्म से प्राचीन धर्म है वहीं यह भी प्रमाणित होता है कि इन दोनों धर्मों में अनेक समानताएँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, अन्यथा प्रो० लासेन एवं प्रो० वेबर को एकत्व का भ्रम नहीं होता।

अब प्रश्न यह है कि वे कौन-सी समानताएँ हैं जिनके आधार पर कुछ विद्वानों को भ० महावीर और भ० बुद्ध में एकत्व का भान हुआ तथा कुछ को जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखामात्र प्रतीत हुआ? निःसन्देह यदि इन समानताओं की दृष्टि से इन दोनों धर्मों का अध्ययन किया जाए तो श्रमण संस्कृति का एक सुन्दर रूप उपस्थित हो सकता है। दुर्भाग्यवश इन धर्मों में निहित असमानताओं को महत्व देकर इन धर्मों का अध्ययन किया जाता है। फलतः ये दोनों धर्म न केवल एक-दूसरे से असम्बन्ध प्रतीत होते हैं, अपितु विरोधी भी लगते हैं। इन धर्मों का जो व्याख्यापरक साहित्य है उसमें असमानता को ही प्रमुख आधार बनाकर एक दूसरे का खंडन किया गया है। फलस्वरूप इन धर्मों से अनभिज्ञ पाठक जब इनके व्याख्यापरक साहित्य को पढ़ता है तो वह यही निष्कर्ष निकालने के लिए विवश हो जाता है कि वे दोनों धर्म न केवल एक-दूसरे से प्रतिकूल हैं, अपितु भ० महावीर और भ० बुद्ध स्वयं सैद्धान्तिक मतभेद रखते थे। जब ऐसे निष्कर्ष प्रकाशित किये जाते हैं तो इस श्रमण संस्कृति की छवि धूमिल होती ही है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्नता में एकता की खोज की जाए और उसी एकता के सूत्र में बंधकर श्रमण संस्कृति के आदर्शों को जन-जन तक पहुँचाया जाए। इस दिशा में आ० विनोबा के मार्गदर्शन में पूज्य जिनेन्द्र वर्णी द्वारा संकलित 'समणसुत्त' ग्रन्थ अपने आप में एक स्तुत्य उपलब्धि है। दिगम्बर, श्वेताम्बर, मूर्तिपूजक, स्थानकवासी, बीसपंथी, तेरहपंथी, तारणपंथी, सोनगढ़ी आदि के रूप में बंटकर जैनसंस्कृति को जो हानि हो रही है, उस पर उक्त प्रयास ने अंकुश लगाने का कार्य किया है। इससे प्रेरणा लें और समझें कि युग की माँग यह है कि आज श्रमणसंस्कृति के अनुयायी अपने समान एवं लोकोपयोगी सिद्धान्तों के आधार पर श्रमण-संस्कृति का एक ऐसा रूप प्रस्तुत करें जिसमें आपसी कलह की गन्ध न आए अपितु एकता की सुरभि से जनसाधारण का मानस शान्ति एवं सुख की सहज अनुभूति करे। इसी भावना से प्रेरित होकर यहाँ जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में निहित जनकल्याण से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तों पर विहंगम दृष्टि डाली जा रही है।

'श्रमण' के लिए प्राकृत एवं पालि में 'समण' शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है। 'समण' शब्द का सामान्य अर्थ साधु है। जैनधर्म एवं बौद्धधर्म—दोनों में ही श्रमण, साधु या भिक्षु की तीन विशेषताओं को महत्व दिया गया है। (१) विशेषता है—**'परिश्रम करना'**। यहाँ परिश्रम से अभिप्राय तपस्या से है। अतः दोनों ही धर्मों में व्यक्ति तपस्या या साधना द्वारा संसारचक्र से मुक्तिरूप अपने उत्कर्ष को प्राप्त करता है। (२) विशेषता है—**'समभाव रखना'**। दोनों ही धर्मों में साधु या भिक्षु को प्राणिमात्र के प्रति समभाव रखने का बार-बार उपदेश दिया गया है। साधु या भिक्षु तभी अपनी उत्कर्ष अवस्था को प्राप्त कर सकता है। जब वह राग एवं द्वेष की भावना से ऊपर विश्वप्रेम या विश्व बन्धुत्व का प्रतीक बन जाए। (३) विशेषता है—**'शान्त करना'**। साधु या भिक्षु के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी तपस्या से मन की अकुशल वृत्तियों का शमन करे। अतः जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में श्रम, सम और शम का उत्कर्ष के लिए समान महत्व दिया गया है।

इसी प्रकार संसार एवं संसार के कारण में भी दोनों धर्मों में समानता दृष्टिगोचर होती है। दोनों ही धर्मो में ईश्वर की प्रभुता का सिद्धान्त मान्य नहीं है। अतः कर्मसिद्धान्त को महत्व दिया गया है। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि जैनधर्म में आध्यात्मिक रूप को अधिक महत्व दिया गया है जबकि बौद्धधर्म में व्यावहारिक रूप को। इसी से दोनों धर्मों के अहिंसा-सिद्धान्तों में भी अन्तर पाया जाता है। जैनधर्म के अनुसार व्यक्ति जब किसी की हिंसा का संकल्प करता है तभी वह हिंसाजन्य पाप से कलुषित हो जाता है; किन्तु बौद्धधर्म में व्यक्ति तभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिंसा के पाप से दूषित होता है जब वह हिंसा का विचार करता है फिर हिंसा करता है और हिंसा करने के बाद पश्चात्ताप नहीं करता है। दूसरे शब्दों में बौद्धधर्म के अनुसार हिंसा वहीं मानी जाती है जहाँ आधुनिक भारतीय संविधान की धारा ३०२ लागू होती है। जैसे-हिंसा का प्रयत्न करने वाले किन्तु हिंसा के प्रयत्न में असफल व्यक्ति को धारा ३०२ के अन्तर्गत दण्ड न देकर धारा ३०७ के अन्तर्गत दण्ड दिया जाता है। वैसे ही हत्या के प्रयत्न में लीन किन्तु हत्या में असफल व्यक्ति हिंसा के पूर्ण पाप को प्राप्त नहीं करता है।

जैनधर्म एवं बौद्धधर्म में व्याप्त मतभेद का प्रमुख आधार आत्मा सम्बन्धी मान्यता है। जैनधर्म में आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व माना गया है तथा उसकी मुक्ति का उपाय भी प्रतिपादित है किन्तु बौद्धधर्म में आत्मा की चर्चा उपलब्ध नहीं है। बौद्धदर्शन के ग्रन्थ में तो आत्मा के अस्तित्व का विभिन्न तर्कों के आधार पर खण्डन भी उपलब्ध होता है। इससे जैनधर्म एवं बौद्ध-धर्म के परस्पर विरोधी होने का आभास मिलता है, किन्तु यदि आत्मा सम्बन्धी भ० बुद्ध के विचारों पर ध्यान दें तो एतद्विषयक विरोध सरलता से दूर हो जाता है। भ० बुद्ध ने अपने उपदेशों में कहीं भी आत्मा के अस्तित्व का खण्डन नहीं किया है। जब उन्होंने देखा कि "आत्मा के सिद्धान्त की ओट लेकर वैदिक संस्कृति में नाना अनर्थ हो रहे हैं। भोग की प्राप्ति के लिए हिंसा तथा शोषण बढ़ता जा रहा है तथा कुछ लोग अपने भौतिक स्वार्थ के वशीभूत होकर 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' का नारा बुलन्द कर रहे हैं। एक अदृश्य सत्ता के लिए आदमी इतना पागल हो गया है कि उसकी दृष्टि में दूसरे प्राणियों का कुछ भी अस्तित्व नहीं रहा है, क्रिया-काण्ड का इतना अधिक बोलबाला हो गया कि हजारों निरीह मूक पशुओं की यज्ञ में आहुति दे देना एक कार्य माना जाने लगा।" तो उन्हें आत्मा-शब्द से घृणा हो गई। उन्होंने जनसाधारण का ध्यान आत्मा के सिद्धान्त से उत्पन्न पागलपन से हटाने के लिए व्यावहारिक सदा-चरण की आवाज उठायी। जब बुद्ध से पूछा जाता था कि 'आप कहते हैं— मनुष्य दुःख भोगता है; मनुष्य मुक्त होता है, तो आखिर यह दुःख भोगने वाला तथा दुःख से मुक्त होने वाला कौन है? तो बुद्ध इसका उत्तर देते हुए कहते थे कि तुम्हारा यह प्रश्न ही गलत है। प्रश्न यों होना चाहिए कि 'क्या होने से दुःख होता है? तो उस का उत्तर यह है कि 'तृष्णा के होने से दुःख होता है।'[१] इसी प्रकार 'तृष्णा किसे कहते हैं?—यह प्रश्न न होकर 'क्या होने से तृष्णा होती है?'—यह प्रश्न होना चाहिए। तथा इसका उत्तर है कि 'वेदना होने से तृष्णा होती है।' आदि। इसके साथ ही साथ उन्होंने उपदेशों में इस बात का सदैव संकेत किया कि वे अन्जमा, अनश्वर, सत्ता को भी मानते हैं। इतना अवश्य था कि उन्होंने लोककल्याण के लिए आत्मा के अस्तित्व का विवेचन उचित न समझ उसे अव्याकृत - कोटि में डाल दिया था।

भ० बुद्ध के आत्मा विषयक मत पर यदि सुलझी दृष्टि से विचार किया जाता तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने आत्मा का खण्डन न कर उसके व्यावहारिक पक्ष पर जोर दिया था।

मोक्ष एक ऐसा अन्य विषय है जिससे दोनों धर्मों में मतभेद प्रतीत होता है। जैनधर्म में मोक्ष का विशद वर्णन है, किन्तु बौद्धधर्म के अनुसार विज्ञान की सन्तति का निरुद्ध हो जाना निर्वाण है। इसीको परवर्ती बौद्धसाहित्य में 'प्रदीप के बुझ जाने की' उपमा दी गई है, किन्तु दोनों ही धर्मों में मुक्तावस्था या निर्वाणावस्था की प्राप्ति अभीष्ट है। गम्भीरता पूर्वक विचारने पर मोक्ष तथा निर्वाण में भी कोई विरोध नजर नहीं आता है। बौद्धधर्म की विज्ञान सन्तति अविद्या एवं संस्कार जन्य होने से संसार में विद्यमान रहती है तथा निर्वाण में इस विज्ञानसन्तति का पूर्णरूपेण विनाश हो जाता है। जैनधर्म में भी निर्वाण अवस्था में आत्मा के कर्मजन्य कलुषित रूप की समाप्ति अभीष्ट ही है। अतः कर्मबन्ध को विज्ञानसन्तति की पर्याय मानने से दोनों ही धर्मों में निर्वाण एक जैसा ही है। जहाँ तक आत्मा के शुद्धरूप की बात है, भ० बुद्ध उसे तो अव्याकृत-कोटि में डाल ही चुके थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्म में मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन; सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र—इन तीनों का एक साथ होना माना गया है। बौद्धधर्म में भी श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। इस अष्टांगिक मार्ग को शील (सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त एवं सम्यक् आजीविका) समाधि (सम्यक्, व्यायाम, स्मृति एवं सम्यक् समाधि) तथा प्रज्ञा (सम्यक् दृष्टि तथा सम्यक्-संकल्प) में विभक्त किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र बौद्धधर्म के प्रज्ञा, समाधि एवं शील के अनुरूप हैं। इतना अन्तर अवश्य है कि जहाँ जैनधर्म में मोक्षमार्ग का मूलाधार सम्यग्दर्शन को माना गया है वहीं बौद्धधर्म में शील को प्रथम स्नान दिया गया है तथा शील को ही मोक्षमार्ग का आधार माना गया है। इसका मुख्य कारण जनसाधारण का ध्यान आत्मा के ऊहापोह से हटाकर सदाचार की ओर आकर्षित करना था।

सारांश यह है कि जैनधर्म एवं बौद्धधर्म न केवल श्रमणसंस्कृति की दो धाराएँ हैं; अपितु आपस में एक दूसरे की पूरक भी हैं। जो व्यक्ति आत्मा के नाम पर होने वाले अनाचार से खिन्न होकर आत्मा के अस्तित्व की उपेक्षा कर संसार के दुःखों से शान्ति चाहता है उसे बौद्धधर्म का सहारा लेना चाहिए, किन्तु जो व्यक्ति आत्मा के अस्तित्व पर श्रद्धा रखकर संसार के दुःखों से मुक्ति चाहता है उसे जैनधर्म में बतलाया गया मोक्षमार्ग ही अनुकूल होगा।

प्राध्यापक
'संस्कृत-पालिविभाग' का. वि विद्यालय
वाराणसी

नीतिवाक्यामृत

शतेषु जायते शूरः; सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दस सहस्रेषु, दाता भवति वानवा॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीर जयन्ती : धर्म का हिमालय

● सुरेश सरल

सुनो !
वीर—जयंती—समारोह जबसे हम
आचरणों तक चल कर मनाने लगे हैं,
एक दो आदमी नहीं, गांव के गांव मुस्काने लगे हैं ।
मानस - स्तम्भों पर सधे
'परस्परोपग्रहो जीवनाम्' के
नैतिक आधार आपो आप दिखलाने लगे हैं ।
हाँ, हाँ, हमारी चर्या की धरती और
चिन्तन के आकाश
'जियो और जीने दो' के गीत गाने लगे हैं ।
'निश्चय' और 'व्यवहार' समझ कर लगता है
कोई है जो पिता की तरह समय पर जुटाता है दवा और
भाई की तरह देता है दम, करता है परवा ।
सुनो श्रावक ! सुनो !
युग शब्दाडम्बर का है
परन्तु यह वह नहीं है,
हमारी आँखों में झूलता एक सत्य है,
मिथ्यापन नहीं है ।
महावीर के देश में—
गाँव की झोपड़ियों और पगडंडियों पर
महानगर के गगनचुम्बी भवनों और चौड़ी गलियों पर
धर्म का मधुर कलरव निरन्तर है,
यह न जादू है, न मन्तर है ।
सच तो यह है भाई कि
आदमी, आदमी से जुड़ रहे हैं;
धर्म के हिमालय गढ़ रहे हैं ।
गढ़ रहे हैं ।
—००

☐ सरल कुटी, गढ़ाफाटक, जबलपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खण्ड पंचम

विज्ञापन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनंदन दिग० जैन संस्कृत विद्यालय बीना

की

हीरक जयन्ती

के शुभ अवसर पर हम हार्दिक मंगल कामना करते हैं कि हमारे पूर्वजों द्वारा संपक्षित, सम्पोषित तथा संबर्द्धित यह संस्कृत विद्यालय जन-जन में दिव्यज्ञान की अमर ज्योति जगमगाता रहे तथा इसकी निर्मल कीर्ति का विस्तार दिग्-दिगन्त में हो।

ज्ञान–साधना के पवित्र मन्दिर स्वरूप इस विद्यालय के उज्ज्वल भविष्य के लिए—

अनन्त शुभ कामनाओं

के साथ

सिंघई आनन्दकुमार अभयकुमार जैन

बीना (म. प्र.)

फोन नं 130

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनन्दन दिग० जैन संस्कृत विद्यालय

बीना (म. प्र.)

की

हीरक जयन्ती

के

अवसर पर हमारी हार्दिक मंगलकामना यही है कि हमारे पूर्वज
श्री सिंघई नाथूराम जी 'साव' द्वारा संस्थापित यह
विद्या-मन्दिर युगों-युगों तक जन-जन में
दिव्यज्ञान का आलोक
फैलाता रहे।

•

अनन्त

शुभ कामनाओं

सहित

•

सिंघई श्रीनंदनलाल राजकुमार जैन

इटावा बाजार, बीना (म० प्र०)

फोन नं० १६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन सं० विद्यालय
बीना (म० प्र०)

की

हीरक जयन्ती

के

अवसर पर इसके उन्नत उज्ज्वल भविष्य के लिए हम अपनी अनन्त हार्दिक शुभकामनायें संप्रेषित करते हैं।

विद्या परमं दैवतम्

धन कन कंचन, राज सुख,
सबहि सुलभ करि जान।
दुर्लभ है संसार में
एक यथारथ ज्ञान ॥'

सभी प्रकार की शालेय पुस्तकों के प्रकाशक तथा थोक विक्रेता

मदन महल जनरल स्टोर्स

राइट टाउन, जबलपुर (म० प्र०) पिन ४८२००२

फोन नं. २१७११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय की

हीरक जयन्ती

पर

शुभकामनाओं सहित

फोन दुकान
२१

फोन निवास
३२

कुन्दनलाल भैयालाल जैन

(ग्रेन एण्ड किराना मर्चेन्ट्स्)

बीना BINA, 470113 (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय

की

हीरक जयन्ती

पर

मंगल कामनाओं के साथ

(उत्तम पढ़ाई, श्रेष्ठ अनुशासन, उत्तमोत्तम सफलता

तथा शत-प्रतिशत परिणाम हेतु

प्रवेश दिलायें

वर्ष ८१ का परीक्षा परिणाम कक्षा ६ वीं से १० तक शत प्रतिशत

श्री ना. नं. दि. जैन उच्च. माध्यमिक कन्या शाला

बीना BINA (म. प्र.)

प्राचार्य–
श्रीमती हरबंश डांगे

मंत्री
विमलकुमार सराफ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

श्रीमद् जिनतारण स्वामी रचित–

"चेतना लक्षणो धर्मो, चेतियंति सदा बुधैः ।
ध्यानस्य जलं शुद्धं, ज्ञान स्नान पंडिता ॥" ६ ॥
(श्री पंडित पूजा ग्रंथ)

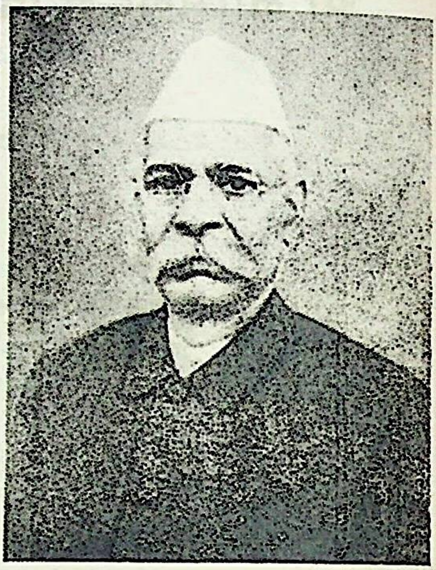

दानवीर श्रावक शिरोमणि श्रीमंत
सेठ भगवानदास जी सागर

अर्थः—आत्मा का धर्म या स्वभाव चेतना लक्षण मयी है, जिसका अनुभव सदा बुद्धिमान् जन करते हैं। ध्यान के लिए शुद्ध जल ज्ञान हैं–सो ज्ञान रूप जल से पंडित जन स्नान करते हैं।

शुभ कामनाओं सहित–

मै० भगवानदास शोभालाल जैन

निर्माता–

"बालक छाप बीड़ी"

चमेली चौक,

सागर–२ (म.प्र.)

फोन { आफिस २३४६, २०३७, २३२०, २७५४
निवास २३११, २३१६, २३८७, २२५५ तार : "बालक"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीरक जयन्ती

पर

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

प्राणिनां प्राणदा कृषि

AIB

निर्माता

कृषियंत्र

फोन
आफिस : निवास
७७

फोन
फेक्ट्री :
५६

अनिल इन्डस्ट्रीज

बीना जिला–सागर (म० प्र०)

निर्माता : ★ एम. बी. प्लाऊ, ★ कल्टीवेटर ★ लेवलर
★ थ्रेसर ★ सीडड्रिल ★ ट्रैक्टर ट्राली
★ वाटर टैंकर आदि

विक्रेता : ★ स्वराज ट्रैक्टर ★ ट्रैक्टर पार्ट ★ बैटरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय

की यशस्वी प्रगति के ७५ वें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष्य में मनाई जा रही
हीरक जयन्ती पर हमारी मंगलमय कामनाएँ

आरामदायक, सुखद, मंगलमय यात्रा के लिए

— महावीर बस सर्विस —

☎ २१ पी. पी.

मालिक—सुरेशचन्द जैन
बीना (म० प्र०)

समय--सारिणी

बीना से प्रातः ५-३० बजे सागर पहुँचना प्रातः ८ बजे
बीना से दोपहर १२ बजे सागर पहुंचना अपरान्ह ३ बजे
सागर से प्रातः ८-१५ बजे बीना पहुंचना प्रातः ११-०५ बजे
सागर से प्रातः ७-३० बजे बीना पहुंचना रात्रि ११ बजे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय

की हीरक जयन्ती के मांगलिक अवसर पर इसके
समुन्नत उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक
शुभकामना करते हैं—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं ततः सुखम् ।।

मे० विमलकुमार विनोदकुमार सराफ

चांदी जेवरात के विक्रेता
सराफा बाजार, बीना (म. प्र.)

सम्बन्धित प्रतिष्ठान:—

मे० महावीर बर्तन भण्डार

तांबा, पीतल, स्टेनलेस स्टील, कांसा
तथा एल्युमीनियम के बर्तनों के विश्वसनीय विक्रेता
बीना (म. प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय की

卐 हीरक जयन्ती 卐

पर

शुभ कामनाओं सहित

'ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।
इहि परमामृत जन्म जरा मृतु रोग निवारण ॥'
—पं० दौलतराम

पारसमल नेमीचंद
(जनरल मर्चेन्टस एण्ड कमीशन एजेन्टस)
१२–अमरतल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता–१

नेमीचंद निर्मलकुमार
८–अमरतल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता

तार—लोकहितैषी

फोन निवास—३३१७८५
फोन फर्म —३३७८२५ रात्रि ८ से १० तक
फोन फर्म —३२६६७३ दोपहर १ से ४ तक

पता निवास—६२ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता–७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'नृत्यकार'

रमणीक जैन

की ओर से शुभ कामनायें प्रेषित हैं

स्व.पं. भैयालालजी 'भजनसागर' के शिष्य उदीयमान नृत्यकार 'श्रीरमणीकजैन' को पर्व एवं विशेष धार्मिक उत्सवों पर ग्रामंत्रित कीजिये। इनके साथ कथा वाचक पं. किशनचन्दजी 'सुमन' भी रहेंगे जो धार्मिक कथाओं से आपको धार्मिक लाभ प्रदान करेंगे।

विशेषताएं—आरती नृत्य, घटनृत्य, सिर पर ७ घड़े रखकर नृत्य, १० कलश एवं १० पेट्रोमेक्सों के साथ आकर्षक तथा भव्य नृत्य तथा अन्य अनेक धार्मिक मन मोहक नृत्य।

पत्र-व्यवहार

रमणीक जैन नृत्यकार
कुवांवाली बाखर, कानूनगो वार्ड
बीना ४७०११३ म० प्र०

रमणीक जैन नृत्यकार
C/o सुन्दरलाल किशनचंद जैन
जैन मंदिर के पीछे बीना, इटावा जिला सागर
४७०११३ म. प्र.

आपकी मनोभावना,
अभिरुचि,
और
व्यक्तित्व के अनुरूप
--मुद्रण के लिए--
कृपया स्मृति में रखें

राज
प्रिंटिंग प्रेस
फोन : 242
४६, सावरकर पथ
विदिशा 464.001

हीरक जयन्ती पर
मेरी
हार्दिक मंगलकामनाऐं
एक्सरा स्क्रीनिंग और दाँतों
के इलाज के लिए

डॉ. चिरंजीलाल जैन
बी. आई. एम. एस. (लखनऊ)
मेन रोड विदिशा (म० प्र०)
फोन नं. ४७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीरक जयन्ती पर

हार्दिक शुभ कामनाएं

बुखारिया ब्रदर्स

किर्लोस्कर उत्पादनों के अधिकृत विक्रेता

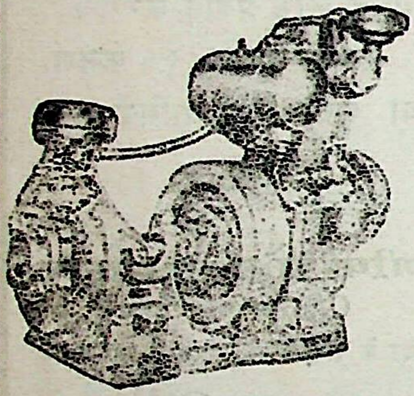

सर्वोदय चौराहा, बीना (म० प्र०)

ब्रांच-स्टेशन रोड खुरई (म० प्र०)

हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ

सुनील मेडीकल स्टोर्स

सभी प्रकार की दवाओं के अधिकृत विक्रेता

सर्वोदय चौराहा

बीना (म. प्र.)

सुदर्शन प्रेस

कलात्मक मुद्रण के लिए अवश्य पधारें

संचालक :

सेठ हीरालाल जैन

सराफा बाजार, बीना (म. प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत विद्यालय की

चतुर्मुखी उन्नति की कामना सहित

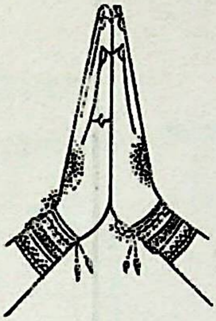

फोन : निवास १४१
दुकान ४१

मे.-कोमलचन्द कपूरचन्द बुखारिया

गल्ला, तिलहन व्यापारी

बीना (म० प्र०)

हार्दिक मंगल कामनाओं के साथ—

मोतीलाल सनतकुमार जैन

ग्रेन मर्चेन्टस

बीना (म० प्र०) 470113

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गांधीजी का सपना पूरा करने के लिए
शंकर सेप्टिक टैंक का उपयोग कीजिये

दिवाकीर्ति ट्रेडर्स

सीमेंट पूरक एवं
भवन सामग्री के विक्रेता

बीना (सागर) म. प्र.

चौधरी

आटोमोवाइल्स

ट्रेक्टर पार्टस, आइल्स, ग्रीस
आदि के विक्रेता

सर्वोदय चौराहा

बीना (म० प्र०)

हमारी हार्दिक शुभकामनायें

कन्छेदीलाल राजेन्द्रकुमार जैन

किराना, तेल, बनस्पति घी, दालें शक्कर
एवं
डाबर की आयुर्वेदिक दवाइयों व
पशु औषधियों के विक्रेता

☎ १५

बीना (म० प्र०)

फोन ७२

समैया

गुड्स ट्रांसपोर्ट कंपनी

भारत में अपना माल द्रुतगति
से प्रेषित करने के लिए हमेशा
ट्रक उपलब्ध है।

सर्वोदय चौराहा, बीना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हार्दिक शुभ-कामनाओं सहित

नायक

किराना भण्डार

मनोज गृह उद्योग ग्वालियर का उत्पादन ८० नं. साबुन, मोती व पंजा नहाने का साबुन राजघाट, गोल्डन एवं खुली चाय के विक्रेता

सर्वोदय चौराहा

बीना (म. प्र.)

हार्दिक शुभ-कामनाएं प्रेषित करते हैं

बाबूलाल विनोदकुमार जैन

रेडीमेड, हौजरी, तौलिया, कटपीस के प्रमुख विक्रेता

हनुमान मन्दिर के पीछे
अशोकनगर गुना (म० प्र०)

मंगल कामनाओं सहित

चौ० शीलचन्द जैन

(नमक वाले)

बीना (म० प्र०)

—हार्दिक शुभ कामनाएं—

वैद्य पं० उदयचंद्र जैन शास्त्री

स्थायी देशी इलाज के लिए पधारें

निष्कलंक औषधालय

कुरवाई जिला विदिशा (म.प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनंदन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय

की

हीरक जयन्ती

के

अवसर पर जन-जन के स्वास्थ्य की मंगल कामना सहित

श्री महावीर दिगम्बर जैन धर्मार्थ औषधालय

बीना (म० प्र०)

यह विगत ३४ वर्षों मे बिना किसी भेद-भाव के निस्वार्थ भाव से रोगियों की सेवा कर रहा है।

इस न्यास की प्रसूतीगृह योजना हेतु यथा शक्ति दान देकर उक्त योजना सफल बनायें।

विनीत

परमेश्वरदास हुरकट
अध्यक्ष

लक्ष्मीचन्द जैन
मंत्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हार्दिक शुभकामनाओं सहित:-

फोन : ७२ पी पी.

पारस भंडार

किराना के प्रमुख विक्रेता

खुरई रोड, बीना (म. प्र.)

ब्रांच

मे० कठरया पन्नालाल राजेन्द्रकुमार जैन

जनरल किराना मर्चेन्ट

बीना (इटावा)

अनन्त मंगल कामनाओं के साथ:-

खेतसिंह नन्हें लाल जैन

किराना, नारियल, रस्सी, गुड,

डालडा एवं देशी दवाओं के

थोक विक्रेता

बीना म. प्र.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शत् - शत् मंगलकामनाओं सहित—

डा० सन्मत कुमार

बी० ए०, एम० एस०;
डी० एच० बी०

लीवर की बीमारियों के प्रमुख विशेषज्ञ

पता :
श्री दि० जैन मंदिर के पास
इटावा-बीना (म. प्र.)
470-113

हार्दिक शुभकामनाओं सहित—

जैन बर्तन भण्डार

पीतल, तांबा, कांसा, स्टेनलेस स्टील
एवं एल्युमीनियम के बर्तनों के
प्रमुख विक्रेता

प्रो० रज्जूलाल सेतपुर
बीना - इटावा
(म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री नाभिनंदन दि. जैन संस्कृत विद्यालय बीना

की प्रमुख विशेषतायें

विद्यार्थं प्रवेश 卐 सेवार्थ निर्गम

- श्री सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी पाठयक्रमानुसार मध्यमा तक शिक्षण
- श्री माणिक. दि. जैन परीक्षालय शोलापुर पाठयक्रमानुसार विशारद तक शिक्षण
- मध्य प्रदेश शासनान्तर्गत ग्यारहवीं कक्षा तक लौकिक शिक्षण
- योग्य विज्ञ अध्यापकों द्वारा शिक्षण
- पुस्तकालय में साहित्यक, धार्मिक पर्याप्त साहित्य
- बीमार छात्रों को निशुल्क चिकित्सा
- छात्रों को निःशुल्क भोजन
- छात्रावास में निःशुल्क निवास

धर्मनिष्ठ आचारनिष्ठ व सुसंस्कृत नागरिक तैयार करने हेतु आप अपने बालकों को इसी विद्यालय में प्रवेश दिलावें।

विनीत
विमलकुमार सराफ
मन्त्री
श्री नाभिनन्दन दि. जैन संस्कृत विद्यालय बीना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक :

श्री नाभिनन्दन दि. जैन हितोपदेशिनी सभा

बीना (म. प्र.)

मुद्रक :

नरेन्द्र ताम्रकार

राज प्रिंटिंग प्रेस, विदिशा म. प्र.

फोन : २४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi